नेकी रीति सरलतासे दरशाई गइ है. जिससे
ठन मनन कर मुमुक्षु जन अपना इष्टार्थ सिद्
का उपाय जान सकेंगे.

"जयतीति जैन" जैन शब्द जिनसे हु
जिन शब्दकी धातू 'जय' है, जय शब्दका अर्थ
ना, पराजय करना या तावेमें-कावूमें करना ऐ
ता है. जीत शत्रूकी की जाती है. अपने सचे व
र जालिम शत्रू राग द्वेष को जीते व कर्मी करे,
सचे जैनी व जैन धर्मी हैं. राग द्वेष न होय ऐसे
ल धर्ममें मतभेद पडना, या क्लेश होना असंभ
क्यों कि पानीसे वस्त्र जलता नहीं है. यह जैन ध
सत्य प्रभाव फक्त दो हजारही वर्ष पहले इस आ
मीमे प्रत्यक्ष द्रष्टी आताथा; हजारों साधू, साध्विये
लाखो श्रावक, श्राविकाओं तथा असंख्य सम्यक
जीव सब एक जिनेश्वर देवकेही अनुयायी थे. इ
सके परम प्रभाव से, या रागद्वेष र
तीके प्रभाव से, यह 'जैन धर्म'
द्वितीय पदका धा
लत थे; अपार
मुक (साधू)
साधन कर सर्व

ते थ. जिसका मुख्य हेतू यह ही दिखता है, कि वो महात्मा सूत्रमें कहे मुजब ज्ञान ध्यान में विशेष काल व्यतीत करने थे. श्री उत्तराध्ययनजी सूत्रके २६ में अध्ययनमें साधूके दिन कृत्य और रात्री कृत्य का बयान है, वहां फरमाया हैकि—

पढमं पोरिसी सज्झायं, बीयं झाण झियायइ॥
तइयाए भिक्खायरि,चउत्थी भुजो विसज्झाय॥१२॥

अर्थात्—दिनके पहिले पहरमें सज्झाय (मूल सूत्रका पठन) दूसरे पहरमें ध्यान (सूत्रके अर्थका विचार) तीसरे पहरमें भिक्षाचरी (भिक्षावृतीसे निर्दोष अहार प्रमुख ग्रहणकर भोगवे)और चौथे पहरमें पुनः सज्झाय, यह दिनकृत्य. और रात्रीके पहले पहरमें सज्झाय, दूसरे में ध्यान, और "तइया निंदा मोक्खंतु" अर्थात् तीसरी पहरमें निद्रा से मुक्त होवे. और चौथे में पुनः सज्झाय करे! यों दिन रात्रीके ६ पहर ज्ञान ध्यान में व्यतीत करते थे!!

तैसेही श्रावकों के लिये भी इसी सूत्र के ५ में अध्ययन में फरमाया हैकि—

आगारी यं सामाइ यंगाइ, सड्ढी काएण फासइ॥
पोसह दूहउ पक्खं, एगराइ न हावए ॥२३॥

नेकी रीति सरलतासे दरशाई गइ है. जिससे इसे पठन मनन कर मुमुक्षु जन अपना इष्टार्थ सिद्ध करने का उपाय जान सकेंगे.

"जयतीति जैन" जैन शब्द जिनसे हुवा है, जिन शब्दकी धातू 'जय' है, जय शब्दका अर्थ जीतना, पराजय करना या तावेमें-काबूमें करना ऐसा होता है. जीत शत्रूकी की जाती है. अपने सच्चे कट्टे और जालिम शत्रू राग द्वेष को जीते व कमी करे, वोही सच्चे जैनी व जैन धर्मी हैं. राग द्वेष न होय ऐसे पवित्र धर्ममें मतभेद पडना, या क्लेश होना असंभव है, क्यों कि पानीसे वस्त्र जलता नहीं है. यह जैन धर्मका सत्य प्रभाव फक्त दो हजारही वर्ष पहले इस आर्य भूमीमे प्रत्यक्ष द्रष्टी आताथा; हजारों साधू. साध्वियों और लाखो श्रावक, श्राविकाओं तथा असंख्य सम्यक द्रष्टी जीव सब एक जिनेश्वर देवकेही अनुयायी थे. इस सम्पके परम प्रभाव से, या रागद्वेप रहित वीतरागी प्रव्रतीके प्रभाव से, यह 'जैन धर्म' सर्व धर्मों से उच्च अद्वितीय पदका धारक था, वडे सुरेन्द्र नरेन्द्र इसे मान्य करते थे; अपार ऋद्धि सिद्धीयों का त्याग कर जैन भिक्षुक (साधू) वनते थे, और वीतराग प्रव्रती से आत्मसाधन कर सर्व इष्ट कार्य सिद्ध करतेथे, मोक्ष प्राप्त कर-

ते थ. जिसका मुख्य हेतू यह ही दिखता है, कि वो महात्मा सूत्रमें कहे मुजब ज्ञान ध्यान में विशेप काल व्यतीत करने थे. श्री उत्तराध्ययनजी सूत्रके २६ में अध्ययनमें साधूके दिन कृत्य और रात्री कृत्य का बयान है, वहां फरमाया हैकि—

पढमं पोरिसी सज्झायं, बीयं झाण झियायइ॥
तइयाए भिक्खायरि,चउत्थी भुजो विसज्झाय॥१२॥

अर्थात्—दिनके पहिले पहरमें सज्झाय (मूल सूत्रका पठन) दूसरे पहरमें ध्यान (सूत्रके अर्थका विचार) तीसरे पहरमें भिक्षाचरी (भिक्षावृतीसे निर्दोष अहार प्रमुख ग्रहणकर भोगवे)और चौथे पहरमें पुनः सज्झाय, यह दिनकृत्य. और रात्रीके पहले पहरमें सज्झाय, दूसरे में ध्यान, और "तइया निंद्रा मोक्खंतु" अथात् तीसरी पहरमें निद्रा से मुक्त होवे. और चौथे में पुनः सज्झाय करे! यों दिन रात्रीके ६ पहर ज्ञान ध्यान में व्यतीत करते थे!!

तैसेही श्रावकों के लिये भी इसी सूत्र के ५ में अध्ययन में फरमाया हैकि—

आगारी यं सामाइ यंगाइ, सड्ढी काएण फासइ॥
पोसह दूहउ पक्खं, एगराइ न हावए ॥२३॥

हार आदी देने, में तथा नमस्कार सन्मान करने में सम्य क्त्व का नाश होता है! अनंत संसार की वृधी होती है!! —वगैरा उपदेश कर वाडे वान्ध लिये? देखिये बन्धूओं! राग द्वेष जीतने वाले जिन देवके अनुयायि यों का उपदेश? ऐसी २ विपरीत परूपणासे इस शुद्ध जैन मतके अनेक मतांतर होगये हैं, और एकेक की कटनी—सत्यानाशी का उपाय का विचार ध्यानमें करने में ही परम धर्म समझने लगे, जो कुयुक्तियों कर विवाद में जीते उसेही सच्चा धर्मी जान ने लगे, जो जरा संस्कृतादि भाषा बोलने लगे और कहानीयों रागणीयों कर प्रषदा को हँसादे वोही पण्डित राज कहलाये, जो तरतम योग से साधू बने वोही चौथे आरेकी बानगी बजे, जो ज्यूनी मुहपति पूजणी रक्खी या टीले टमके किये वोही श्रावकर्जी कहलाये, और विषय कषाय के पोषणेंमे ही धर्म माना! इत्यादी प्रत्यक्ष प्रवृतती हुइ इन क्षुल्लक बातों परसे ही विचारीये कि जैनी इन को कहना क्या? लाला रण जीतसिंहजीने कहाहै—

जैन धर्म शुद्ध पाय के, वरते विषय कषाय॥
यह अचंभाहो रहा, जलमें लागी लाय॥ १

उज्जैन की सिप्रा नदीके पाणीमें भैंसे(पाडे)जल

(वल) मरे? ऐसा आश्चर्य जनक बनाव बन ने का सब-
ब भैंसे की पीठ पर लदेहुवे चूनेही का था !! तैसे ही
जैन धर्म में रहे हुवे जीव नित्य हीन दिशा को प्राप्त
होते हैं, इसका सबब उनके हृदय में रहा हुवा विषय
कषाय इर्षा रूप क्षार ही है !! सखेदाश्चर्य है की जैन
धर्म जैसा सुधा सिन्धू में गोता खा कर ही, विषय
कषाय इर्ष रूप लाय (आग) शांत नहुइ !
हा इति खेद ! विषय कषाय राग द्वेष
इर्ष रूप लाय बुजणे का शांत करने का उपाय
ध्यानही है, कि जिसका प्रभाव प्राचीन कालमें प्रत्यक्ष
था उसे लुप्त जैसा हुवा देख, ध्यानका स्वरूप सरल-
ता से समझा ने वाला एक ग्रन्थ अलगही होने की
आवश्कता जान यह ध्यानकल्पतरू नामक ग्रन्थ श्री
उववाइ जी सूत्र, श्री उत्तराध्येनजी सूत्र, श्रीसुयडांग
जी सूत्र श्री आचाराङ्गजी सूत्र और ज्ञानार्णव, द्रव्यसं
ग्रह, ग्रन्थ तथा कित्लेक थोकडों के आधासे स्व—मत्या
नुसार बनाके श्री जैन धर्मानुयायी यों को समर्पण-
करता हूं और चहाताहूंकि ध्यानकल्पतरू की शीत-
ल छांव में रमण कर, अशुभ और अशुद्ध ध्यान से
निवृत शुभ और शुद्ध ध्यानमें प्रवृत न कर, सच्चे जैनी
बन जैन धर्म का पुनरोद्धार करोंगे! और इष्टितार्थ सि
द्ध करने समर्थ बनोगे—विशेषु किमधिकं.

धर्मो न्नती कांक्षी—अमोल ऋषि.

ग्रन्थ कर्ताका संक्षिप्त जीवन चरित्र वगैरा.

मालव देशके भोपाल शेहरमें ओसवाल वडे साथ कांसटीया गोत्रकेसेठ केवलचंदजी रहतेथे, उनकी पत्नी हुलासा बाइके कूंखसे संवंत १९३३ के भाद्रव वद्य ४ को पुत्र हुवा उसका 'अमोलख' नाम दिया. और एक पुत्र हुये बाद हुलासा बाइका देहान्त होगया. फिर केवलचन्दजीने सं.१९४३ के चेतमे दिक्षा धारण कर पुज्य श्री काहानजी ऋषिजी महाराजकेसम्प्रदाय के महंत मुनी श्री खूबाऋषिजी महाराजके शिष्य हुये. औरज्ञानाभ्यास कर एकउपवाससे एकीस उपवास तकलड़ बन्ध और ३०-३१-४१-५१-६१-६३-७१ ८१-८३-९१-१०१-१११-और १२१ बहुतपरयातो छाछके आगरसे, और छे महीनेतक एकांतर उपवास वगैरे बहोतर्पा करीहै तथ पुर्व, पंजाब, मालवा, गुजरात, मेवाड, मारवाड दक्षिण वगैरा बहुत देश स्पर्शे हैं.

सं०१९४४ के फागनमें महात्मा श्री तिलोका ऋषिजि महाराजके पाटवी शिष्यश्री रत्न ऋषिजी महाराजके साथ श्रीकेवल ऋषिजी. इच्छा वर (भोपाल) पधारे उसवक्त वहांसे दो कोश ग्येडी ग्राममें अमोलख चंद अपने मामाके पासथे, मुनीआगम सुन दर्शनार्थ गये

और वैरागी पिता को देख वैरागी वने. और तुर्त फा
ल्गुन वद्य २को दिक्षा धारन कर पिताके साथ हुये, पुज्य
श्री खुव ऋपिजी महाराजके पास लाये. तपस्वीजी श्री
केवल ऋपिजीने संसार सम्बन्धके कारणसे श्री अमोल
ख ऋपिजीको अपने शिष्य वनानेकी नाखुशी दरशाइ ,त
वपुज्य श्रीके जेष्ट शिष्य आर्यमुनी श्री चेना ऋपिजी महा
राजके शिष्य अमोलख ऋपिको वनाये, थोडेहीकाल वा
द श्री चेना ऋपिजी और पुज्य श्री खुवाऋपिजी का स्वर्ग
वास हुवा और फिर थोडे ही काल वाद तपस्वी जी-
श्री केवल ऋपिजी एकले विहारी हुवे. तव नजीकमें वि
चरते श्री भेरूऋपी जी के साथ श्री अमोलखऋपिवि-
चरे, उसवक्त (१९४८ फालगुनमें) औस वाल ज्ञाती
के एक पन्नालालजी ग्रस्थने १८ वर्ष की वयमे दिक्षा
धारन करश्री अमोलख ऋपिजीके शिष्य वनेथे. उनको
साथ ले जावरे आये, वहां श्री— कृपा रामजी महारा
ज के शिष्य श्री रूपचंदजी महाराज गुरू वियोग से-
दुःखी हो रहेथे उनको संतोप ने श्री अमोलख ऋपि
जी ने अपने शिष्य पन्ना ऋपिजी को समरपण किये
देखीये एक येह भी उदारता ! फिर दो वर्ष वाद दि
क्षा दाता श्री रत्न ऋपिजी महाराज का सुकाल
होते श्री अमोलख ऋपिजी उनके साथ विचरने [illegible]

इन महा पुरूपोने श्री अमोलख ऋपिजी को जैनमार्ग दीपाने लायक जान तहामनसे ज्ञानका अभ्यास कराया सूत्रों की रहस्य समझाइ, जिस प्रसाद से अमोलख ऋपिजीने गद्य पद्यमें अनेक ग्रन्थ बनाये, और बना रहे हैं, और अनेक स्वमति परमति को समझाये और-समझा रहे, हैं श्री अमोलख ऋपिजीके सवंत १९५६ के फागुन में ओसवालसंचेतीज्ञात्ती के मोती ऋपिजी नामके शिष्य हुवेथे. सं१९६०का चतुरमास श्री अमोलख ऋपिजीका घोड नदीथा (तब जैन तत्व प्रकाश नामे बडा ग्रन्थ शिर्फ ३ महीनेमें रचाथा) उसवक्त तपस्वी जी श्री केवल ऋपिजीका चतुर्मास अहमदनगरथा. चौमासे उतरे बाद समागम हुवा. तब तपस्वीजी कहने लगेकी मेरी वृद्ध अवस्था हुइहै, मुजे संयमका सहाय देना तेराकृतव्यहै. तब अमोलख ऋपिजी श्वशिष्य सहित श्री तपस्वी जी के साथ विचरने लग. सं१९६१ का चतुर्मास श्री सिंघके अग्रह से बंबइ हनुमान गली) में किया यहां जैन स्थानक वासी रत्न चिन्तामणी मित्रमंडलकी स्थापना हुइ, और इस मंडलकी तर्फसे महाराज श्रीअमोलख ऋपिजी की बनाइ हुइ "जैनामुल्य सुधा" नाम छोटासी पुस्तक प्रसिद्ध हुइ. यहां मोती ऋपिजी स्वर्गस्थ हुये. उस वक्त हमारे पिताजी श्री पन्नालालजी

कीमती कार्यार्थ बबंइ गयथे, वहां महाराज श्री जीके दर्शन कर वीनंती करी के दक्षिण हेद्रावाद में जैनीयों के घर तो वहूत हे, परन्तु मुनीराज का आगम बिलकुल नहीं है, जो आप पधारोगे तो वडा उपकार होगा. यह बात महाराज श्रीको पसंद आइ. चर्तुमास बाद बबंइ से विहार कर. इगत पुरी पधारे, चर्तुमास किया, और यहां के श्रावक मूल चंदजी टॅाटिया वगैरे ने महाराज श्री की बनाइ 'धर्म तत्व संग्रह' नामे ग्रन्थ की १५०० प्रतों छपवा के अमुल्य भेटदी. वहां से विहार कर वे जापुर(औरंगाबाद)आये यहां के श्रावक भीखम चंदजी संचेती ने "धर्म तत्व संग्रह" की गुजरातीमें १२०० प्रतो छपवाके अमुल्यभेट दी. वहां सें जालणे पधारे और आगे विहार करने लगे तब सब श्रावकों नें मना किया की इधर आगे कोइ साधु गये नहींहे, आप पधारोगे तो बडी तकलीप पावोगे. परन्तु श्री वीर परमात्मा के वीर मुनीवरो आगे के आगे बडतेही गये और क्षुधा त्रपादी अनेक आति कठिण पीरसह सहन करते, अनेको को नवे भेपने अश्चर्य उपज्याते अपुर्व धर्म का सत्य स्वरूप बताते सं. १९६३ जेष्ट सुदी १२ शनीवार को चार कमान पावन करी. लाला नेतदासजी गन्नारायणजीके दिये मकानमे चतुर्मास किया. चौमासेमें

लजी सुलतानमलजीने 'भीमसेण हरीसेणकी' ढाळकी
१००० प्रत छपवाके अमुल्य भेट दी. तेसेही हैद्रावाद
ज्ञान वृद्धिक खाताकी तर्फसे भक्तामरस्तोत्रकी १२००
प्रत छपवाके अमुल्य भेट दी. तेसेही सिकंदरावाद(है-
द्रावाद) गुलावचंदजी गणेशमलजी समदरीया तर्फसे
श्री गणेशवोधकी १००० प्रत तथारामलाल पनालाल
कीमतीजीकी तर्फसे२५० प्रत यों१२५०प्रत छपवाकेअ
मुल्य भेट दी.तेसेही जैन शिशु वोधनीकी ५०० प्रत
ज्ञान वृधिक खातेका तर्फसे. तेसेही लालजी कीमती
जी और घोड नदी (पुन) वाले कुंदन मलजी घुमर
मलजी वापणा और सिकद्रावाद के गुलावचंदजी
गणेशमलजी समदरीकी तर्फसे यह"ध्यानकल्पतरू"ग्र
न्थ की१२५०प्रतो अमुल्य भेट दीजातीहै. योंआजतक
सुम्मार छोटीवडी १२५०० पुस्तकों तो अमुल्य भेटदी
गइ हैं. और सिकद्रावादके सेठ सागर मलजी गिर-
धारीलालजी तथा सहेंसमलजी जुगराजजी की तर्फ
से "जैन तत्वप्रकाश" की दूसरी आवृती की१०००प्रत
और अन्य२ग्रन्थों की तर्फ सें १००० प्रतयों जैन त
त्व प्रकाशकी २०००प्रतो (छपरही है) और सिंकद्रा
वाद के शिवराजजी रूगनाथ मलजी की तर्फसे मदन
चरित्र ५७ खंड (१०८ ढाल) की १०००प्रते; और

श्री जिनवरेंद्राय नमः

ध्यानकल्पतरु

—※—

मङ्गलाचरणम्.

गाथा अणुत्तरं धम्म-मुईरइत्ता. अणुत्तरं झाणवरं झियाइः सु सुक्क सुक्कं अपगंड सुक्कं संखिंदु वेगं तव दात सुक्कं ॥१॥ अणुत्तरग्गं परमं महेसी. असेस कम्मं स विसोहइत्ता सिद्धि गई साइ मणंत पत्ते. नाणेण सीलेण य दंसणेणं ॥२॥

सूयगडांग

श्रमण भगवंत श्री महावीर वर्धमान स्वामी. प्रधान-श्रेष्ट धर्मके प्रकाशक. सर्वोत्तम उज्वलसे भी उज्वल. दोष-मल रहित. ध्यान को ध्याया. कैसा उज्वल ध्यान ध्याया, सो कहे यथा दृष्टांत—जैसा अर्जुन सुवर्ण उज्वल होता है. पाणी के फेन उज्वल होते हैं. शंख और चंद्रमाके सर्व उज्वल होते हैं. ऐसा शुक्ल इनसे भी अधिक उज्वल. सर्व ध्यानो-

समाप्तम्

श्री जिनवरेंद्राय नमः

ध्यानकल्पतरु

—※—

मङ्गलाचरणम्.

—

गाथा

अणुत्तरं धम्म-मुईरइत्ता. अणुत्तरं झाणवरं झियाइ: सु सुक्क सुक्कं अपगंड सुक्कं संखिंदु वेगं तव दात सुक्कं ॥१॥ अणुत्तरग्गं परमं महेसी. असेस कम्मं स विसोहइत्ता सिद्धि गइ साइ मणंत पत्ते, नाणेण सीलेण य दंसणेणं ॥२॥

[illegible]

श्रमण भगवंत श्री महावीर वर्धमान स्वामी. प्रधान-श्रेष्ट धर्मके प्रकाशक. सर्वोत्तम उज्वलसे अती उज्वल. दोषमल रहित. ध्यान को ध्याया. कैसा उज्वल ध्यान ध्याया, सो कहे यथा दृष्टांत—जैसा अर्जुन सुवर्ण उज्वल होता है. पानी के फेण उज्वल होते हैं. शंख और चंद्रमाके कांती उज्वल होते हैं. ऐसा नन्दे इनसे भी अधिक उज्वल, सर्व ध्यानो-

में श्रेष्ट, ऐसा सुकध्यान ध्याया. उस ध्यानके प्रशादसे; महा ऋपिस्वर, समस्त कर्मोका नाश-क्षय कर निर्मळे हुये, जिससे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्य, यह अनंत चतुष्टयकों प्राप्त कर: जो आदि सहित और अंतरहित, ऐसी सिद्ध गती, मोक्षगती, लोकके उपर, अग्रभागमें हैं; उसको प्रस करी. ऐसे श्रीमहावीर वृधमान स्वामी जीकों मेरा त्रिकर्ण विशुद्ध त्रिकाल नमस्कार होवो!

भूमिका.

श्लोक॥ ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं, फलं चेति चतुष्टयम.
इति सूत्र समा सेन, सविकल्पं निग्रह्यते. ॥

अर्थ—ध्याता कहीये ध्यान करनेवाले. ध्यान कहीये ध्यान अवस्था धारण कर स्थिर बेठना, ध्येय कहीये किसी प्रकारका मनमें विचार करना; और फलं कहीये, उस विचारका उस (ध्याता) कों क्या फल मिलेगा; इन चारोंही बावतोंका, यथा बुद्धि इस ग्रंथमें दर्शानेका पर्यन्त करूंगा. उसे पाठक गणों, दत्त चितसे पटके. अशुभसेंबच, शुभमें प्रवेशकर, इष्टार्थ सिद्ध करने स्मर्थ बनेंगे.

स्कन्ध.

ध्यान शब्दकी धातू "ध्यै" हैं, ध्यैका अर्थ-अंतःकरणमें विचार करना- सोचना ऐसा होताहै. ध्यानके भेद शास्त्रमें इस प्रकार किये हैं.

शाखा.

सूत्र से किंतं झाणे, झाणे चउविहे पन्नंते तंज्जहा, अट्टे झाणे, रुद्दे झाणे, धम्मे झाणे, सुक्के झाणे. उववाइ सूत्र.

अर्थ–शिष्य सविनय प्रश्न करता है, कीगुरु महाराज, ध्यानके भेद कित्ने हैं?

गुरु–हे शिष्य, ध्यानके चार भेद भगवंतने फरमाये हैं, वैसेही मैं तेरेसे अनुक्रमें कहताहूं. १ आर्त ध्यान, २ रुद्र ध्यान, ३ धर्म ध्यान; और. ४ सुक्ल ध्यान.

अंतःकरणमें विचार दो तरहका होता हैं. १ कभी अशुभ अर्थात् बुरा. और कभी शुभ अर्थात् अच्छा. अशुभ विचारको अशुभ ध्यान, और २

या शुद्ध विचारको शुभ या शुद्ध ध्यान कहतेहैं.

उपर कहे सूत्रमें अशुभ ध्यानके दो भेद कियेहैं, आर्त ध्यान और रुद्र ध्यान. तैसे शुभ ध्यानकेभी दो भेद कियेहैं– धर्म ध्यान, और सुक्ल ध्यान. इन चारोंहीका सविस्तार वर्णव. आगे अलग २ शाखाओंमें किया जायगा.

"अशुभ ध्यान."

उपर कहे चार ध्यानोंमेंसे, अव्वल अशुभध्यानका वर्णव करताहूं, क्योंकि मोक्षार्थी, अशुभ ध्यान का स्वरूप समजेंगे, तो उससे बचके, शुभमें प्रवेश करनेको प्रयत्न वंत हो सकेंगे.

प्रथम शाखा "आर्तध्यान"

इस जगत निवासी. सकर्मी जीवोंको, शुभाशुभ कर्मोंके संयोगसे, इष्ट (अच्छे) का संयोग (मिलाप), और अनिष्ट (बुरे) का वियोग (नाश) तथा अनिष्टका संयोग, और इष्टका वियोग, अनादिसे होताही आया है; उससें जो मनमें सकल्प विकल्प उत्पन्न होता है; उसेही 'आर्त ध्यान' जानना. जिनेश्वर भगवाननें, जिसके मुख्य चार प्रकार कहेहैं.

प्रथम प्रतिशाखा 'आर्त ध्यानके भेद'

सूत्र अट्टे झाणे चउ विह, पण्णंते, तंज्जहा, अमणुग संप उग संपउत्ते, तस्स विप्प उगसति, समणा एगयद्यावी भवत्ति. मणुण संपउत्ते, तस्स अवीप्प उग साति समणा गएया अभवत्ति, आयंक संप उग संपउत्ते. तस्साविप्पडंग सत्ती समणे गएया वीभवत्ति. परिझूसीया काम भोग संपउत्ते, तरस अविप्पउग साचि, सनगे एगया भवात्ति.

उववाइ सूत्र.

अर्थ—आर्त ध्यान चार प्रकारसे, भगवंतने फरमाया, सो कहतेहैं. १ अमन्योंग (खराव) शब्दादिक का संयोग होनेसे. विचार होवे की- इनका वियोग (नाश) कब होगा: इसकों अनिष्ट संयोग नामें आर्त ध्यान कहना. २ मन्योग (अच्छे) शब्दादिकका, संयोग (प्राप्ती) होनेसें, विचार होवें की— इनका वियोग कदापी न होवो: इसे इष्ट संयोग आर्त ध्यान कहना. ३ ज्वर. कुष्टादि अनेक प्रकारके रोगोंकी प्राप्ती होनेसे. विचार होवे की— इनका शिघ्र नाश होवो. इसे रोगोदय आर्तध्यान कहना. ४ इच्छित काम भोग की प्राप्ती होनेसे

अलंकृत, सुशोभित कर, मनहर रूप वणानेकी. इत्यादि तरह २ के काम भोगों भोगवने की. जो मोह कर्मके उदयसें अभिलापा होर्ताहें. तथा वरोक्त पदार्थोंकी प्राप्ती हुइ हें. उसका उप भोग लेते, जो अंतः करणमें, सुख, अहलाद उत्पन्न होता हे; की में केसे इच्छित सुखका भुक्ता हूं. या उनकी वारंम्वार अनुमोदन करनेसे, अहा! वगेरे स्वभाविक उद्गार निकलते, अंतःकरणमें आनंद का अनुभव करते, जो विचार होताहें, उसे तत्वज्ञनें आर्त ध्यानका दूसरा प्रकार कहाहें.

॥ पाठांतर ॥ कितेक आर्त ध्यानका दूसरा प्रकार "इष्ट वियोग" कहतेहें, अर्थात् कालज्ञानादी ग्रंथमें, वताये हुये, स्वरादी लक्षणोंसे; या जोतिपादी विद्याके प्रभावसे, सरीरका वियोग स्वल्प (थोडे) कालमें होता जाण, विचार उत्पन्न होय, की—हायरे अब में ये सुंदर शरीर, प्यारे कुटुंब स्नेहीयों, और कष्टसे उपार्जन की हुइ लक्ष्मीका, त्याग कर चले जाऊंगा! तथा अपने सहाय्यक स्वजन, मित्रोंके वियोग से मूर्छित होगिर पडे,

विलापात, आत्मप्रहार[१] या मृत्युका चिंतवन करे, गृह (घर) संपतका किसीने हरण किया, अग्नी से जल (वल) गया. पाणीमें वहगया.—या डूब गया, पृथ्वी गत निधान (धन) विद्रुप[२] होके निकला. राजा पंचने हरण किया. व्योपारदीमें टोटा पडगया. या नामूनके लिये मदमें छकाहुवा, लग्नादी कार्यमें अधिक व्यय करनेंसे, अशक्तता दारिद्रतादी दुःख प्राप्त होनेंसे, पश्चाताप करे; की हाय! हाय!! अब में क्या करूं वगैरे. इत्यादि अंतःकरणका विचारभी दूसरा आर्त ध्यान हें. और इन्द्रियोंकों पोषणे, अनेक वाजित्र— वारंगणा (नाटकणी)[३] पुष्प वटिका[४] अतर,—अबीरादी, षडरस भोजन, वस्त्र, भुषण, सयनाशन, वगैरे, विनाश हुये पदार्थोंका संयोग मिलाने, अनेक पापारंभ कार्यका चिंतवन करे, सोभी आर्त ध्यान.

तृतीय पत्र—“रोगोदय.”

३ “रोगोदय आर्त ध्यान सो”—(१)सब जीव

---

[१]सिर छातीयादी कूटना. [२]गडा हुवा धन कोयले पाणी वगैरे द्रष्टी आता हैं. [३]नाचनेवाली. [४]बगीचा.

आरोग्य-सुखके इच्छक हैं. परन्तु अशुभवेदनी कर्मोदयसे, जो जो रोग-असाताका उदय होता-हैं, उसे भोगवे विन छूटका नहीं. श्रीउत्तराध्ययनजी सुत्रमें फरमायेहे की "कडाण कम्मान मोख्ख अत्थी" अर्थात् कृत्य कर्मके फल भुक्ते विनछूटका नहीं.* मनुष्यके सरीरपर, साडे तीन करोड रोम गिने जाते हैं; और एकेक रोम (रूम-वाल) के स्थानमें पोणे दो दो रोग कहते हैं. तो विचारीये यह शरीर कित्ने रोगोंका घर हैं. जहांलग सातावेदनिय कर्मका जोर हैं, वहांतक सब रोग दबे (ढके) हुयेहैं. और पापोदय होतें, कुष्ट (कोड), भगंदर, जलंधर, अतीसार, श्वास, खास, ज्वरादि, अनेक उदर्वीकार स्कंधवीकार से भयंकर रोग उत्पन्न हो, पीडा (दुःख) देते हैं; तब चित आकुल व्याकुल हो, अनेक प्रकारके सकल्प वि-

---

*कृतकर्मो क्षयो नास्ती, कल्प कोटी शतैरपि।
अवश्य मेव भुक्तव्यं, कृतकर्म शुभाशुभं.

७३२००००००० इतने वर्षोका एक कल्प किया जाता है ऐसे क्रोडों कल्पमेंही किये हुये कर्मका फल भोगवे विन छूट- का नहीं होता है !!

कल्प उत्पन्न होतेहैं. सो तीसरा आर्तध्यान. (२)और उन रोगोंका निवारण करने, अनेक औषधोपचार के लिये; अनंत काय, एकेंद्रीसे लगा पचेंद्रीय तक जीवोंका, अनेक तरह, आरंभ, सभारंभ, छेदन भेदन, पचन पाचनादि, क्रिया करनेका, अंतःकरणमें विचार होवेः शिघ्रतासे उनका नाश करने चटपटी लगे; उनकी हानी वृधीसें हर्षशोक होय, हे प्रभू! स्वप्नांतरनेंभी ऐसा दुःख मत होवो. इत्यादि अभीलाषा होवे, सो तीसरा आर्त ध्यान.

चतुर्थ पत्र-"भोगिच्छा."

४ "भोगिच्छा आर्तध्यान" सो–१पांच इन्द्रि सम्वंधी काम भोग* भोगवणे की इच्छा होय अर्थात् श्रवणेंद्री (कान) से. राग रागणी, किन्नरीयोंके गायन, और वाजिन्त्रोंका मंजुल राग, सुननेसें, चक्षुरेंद्री (आँख) सेनृत्य (नाच) पोडश

*पांच इंद्रियोंमें, कान और आँख यह दो इंद्रियकामी हैं अर्थात् शब्द सुनना और रूप देखना यह दो काम देती हैं. और, घ्राण, रस, स्पर्श ये तीन भोगी हैं अर्थात्, गंध, स्वाद, और स्पर्शादिका का भोग लेतीहैं.

श्रृंगारसे विभुषित स्त्री पुरुष, वगीचे, आतसवाजी (दारु) के ख्याल, मेहल मंडपोंकी सजाइ, रोशनाइ, वगैरेकों देखनेंमें, घ्राणेंद्री (नाक) से, अतर पुष्पादी सुगंधमें, रसेंद्री (जिभ्या) सें, षट रस भोजन, अभक्ष भक्षणमें. और शयनासन, वस्त्र भुषण, स्त्रीयादिके विलास भोगमें, आनंद मानना, इनका संयोग सदा ऐसाही वनारहो. तथा में वडा भाग्यशाली हूं, के मुजे इछित सुखमय, सर्व सामग्री प्राप्त हुइहें, वगेरे खुशी माननी. सो भोगिच्छा आर्त ध्यान.(२)और भोगांतराय कर्मोदयसे, इच्छित सुख दाता सुसामग्रीयोंकी प्राप्ती नहीं हुइ; अन्य राजेश्वर्य, या इन्द्रादिकको, ऋधी सुखका भोग लेते देख, तथा शास्त्र ग्रन्थ द्वरा श्रवण कर, आपकों प्राप्त होनेकी अंतःकरण मे अभीलापा करे, की हे प्रभू! एकादा राज्य मुजे मिल जाय, या कोइ देव मेरे स्वाधीन (वस) हो जाय, तो में भी ऐसी मोज मजा भुक्त के मेरा जन्म सफल करूं. जहां तक एसे सुख मुजे न मिलें, वहां तक में अधन्य हूं. अपुन्य हूं. वगेरे विचार करे.(३)और तप, संयम, प्रत्याख्यान (पच्चखाणा) की करणी कर, नियाणा (नि-

श्रयात्मक वांछा)* करे, की मेरी करणी के फलसे मुजे राज्य और इन्द्रादिक के वैभव (सुख) की प्राप्ती होवो,(४)और अपणी करणीके प्रभावसे आशीर्वाद दे, अन्य स्वजन मित्रादि कों, धनेश्वरी सुखी करनेकी अभीलाषा करे,(५)और अपने स्वजन मित्र या पडोसी कों सुखी देख, आपके मनमें झूरणा करे, की सबके बीच मेंही एक दरिद्री कैसे रहगया! वगैरे. इत्यादी विचार अंतःकरण में प्रवृते सो आर्त ध्यानका चौथा प्रकार जाणना.
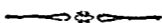
द्वितीय प्रतिशाखा. 'आर्तध्यानके लक्षण.'

सूत्र: अट्ट स्सणं झाणस्स, चत्तारि लक्खणा, पन्नंता तंजहा, कंदणया, सोयणया, तिप्पणया, विलवणया.

उववाइ सूत्र.

अस्यार्थः—"आर्त-ध्यानीके चार लक्षण" सो

*दशा श्रुतस्कंध सुत्रमें, नियाणें दो प्रकारके फरमाये हैं— १ भवनेक सो, संपूर्ण भवान्त करे ऐसा निदान करे, जैसे नारायण, वासुदेव पदके नियाणेसे होतेहैं, उनकों घन प्रत्या-

१ अक्रांद रुदन करे. २ शोक (चिंता) करे. ३ आखोंसे आंसू डाले. ४ विलापात करे.

आर्त ध्यान ध्याता कों बाह्य चिन्होंसें, पहछाननेके लिये, भगवाननें सूत्रमें, ४ लक्षण फरमाये हैं; सो अनिष्टका संयोग, इष्टका वियोग, रोगादी दुःखकी प्राप्ती, और भोगादी सुखकी अप्राप्ती; यह चार प्रकारके कारण निपजनेसे, सकर्मी जीवों कों कर्मोंकी प्रबलता से स्वभाविकही चार काम होते हैं.

प्रथम पत्र "कंदणया"

१ कंदणया=अक्रांद रुदन करे. की हायरे मेरे सुसंयोगका नाश हो, ऐसेकू संयोगकी प्राप्ती क्यों होती है? हा देव! हा प्रभू!! इत्यादि विचार उपजनेसे, अटाट शब्दसे रुदन करे.

द्वितीय पत्र "सोयणया"

२ सोयणया—सोच चिंता करे, कपालपे हाथ

ध्यान मग्न न होवे. और २ वस्तु प्राप्त भी किसी [illegible] वर्गीका वियोग करे, और दीनदीनो, [illegible] वस्तु न मिले वहां तक समाधान प्राप्त न होवे

धरे, नीची द्रष्टीकर सुन्नमुन्न हो बेठे, पृथवी खने (खोदे) त्रण तोडे, बावला जैसा बने, तथा मुर्छित हो पडा रहै.

तृतिय पत्र "तिप्पणया"

३ तिप्पणया-*आँखोंसे आश्रूपात करे, वातर में उस वस्तुका स्मरण होतेही रो देवे. उंडे निश्वास डाले.

चतुर्थ पत्र "विलवणया"

४ विलवणया-विलापात करे. अंग पछाडे. ह्हदयपे, सिरपे, प्रहार करे; वाल तोडे, हाय ओय जुल्म हुवा, गजब हुवा, वडा जबर अनर्थ हुवा, वगैरे भयंकर शब्दोचार करे, और क्लेश टंटे, झगडे, करे, तथा दीन दयामणे शब्दोचार करे. वगैरे सब आर्त ध्यानीके लक्षण जाणना.

---

*श्लेष्माश्रुवाध वैमुक्त, प्रेतोभुक्तं यतोऽवशः
अतो नरो दितव्यांहि, क्रियाः कार्याः स्वशक्तिः.

मरने वालेके पिछे उसके स्वजन न्हेरी रुदन करके, अश्रु और श्लेषम डालते हैं. उसे वो मरने वाले खाते हैं, ऐसा मिताक्षर ग्रंथमें कहा हैं.

आर्तध्यानके "पुष्प और फल"

आर्त ध्यानीकों अप्राप्त वस्तुकों प्राप्त करने की अत्यंत उत्कंठा (आशा वांच्छा) रहती हैं. अहोनिश उधरही लक्ष लगा रहता है. जिससे अन्य कामका अनेक तरहसे बीगाडा होता है, हरकत पडती हैं. धर्म करणी संयम तपादी कर केभी *कुंडरिक की तरह यथा तथ्य लाभ प्राप्त कर सक्के नहीं हैं.

*जंबू द्विपके पुर्व महाविदेहकी, पुष्कलावति विजयकी, पुंडरी राजध्यानीके, पद्मनाभ राजाके कुंडरिक कुवरने दिक्षा धारण करी. पुंडरीक कुंवरको राज प्राप्त हूवा. भइको राज्य सुख भोगवते देख कुंडरिक का मन ललचाया. और गुरुका संग छोड मेहलके पीछेकी आशोक वाडीमें गुप्त आके बेठे. माळीसे खबर मिलतेही पुंडरिक राजा तुर्त भाइके दर्शन करने आये. और मुनीका चित उदास देख पुछनेसे उनने राज वैभवकी परसंस्या करी, मुनीका मन चलित देख, राजा अपने वस्त्र भूषण उतार मुनीकों दिये और मुनीका उतारा हुवा वेष राजा धारण कर गुरुजीके दर्शन करने चले. तीन दिन उपवाससें गुरुजीको भेट, लुखखप, सुखखप शुद्ध अहार भोगवनेसे, अत्यंत पींडा (दुःख) हुवा और आयुष पूर्ण कर स्वार्थ सिद्ध विमानमें देवता हुये. पीछेसें कुंडरिक राज वेष धारण कर राज्य सुख भोगनेमे अत्यंत लुब्ध हुये. तावदवढनेके लिये माम मदिरादि अभक्षका भक्षण करनेसें, अत्यंत असाध्य वेदना उत्पन्न हुइ. तीन दिनमें. आयुष्य पूर्णकर भोग बिन भोगवेही मरके सातमी नर्क गये.

अखंड पुरे पुन्य पोंने हुये विन तो. इष्ट वस्तु की प्राप्ती होना. और स्थिर रहना होही नहीं सक्ता है: जो अप्राप्ती से. या प्राप्त हो के नाश होनेसे. उस वस्तुके लिये झुर २ के मरते हैं: उनका कुछभी कार्य न होता हैं. उलटे. न-मीराज ऋषिके फरमाये प्रमाणें "कामे पत्थ य मा-णा, अकामा जंति दुग्गई" अर्थात्—अप्राप्त हुये-अनमिले कामभोगोंकी प्रार्थना (वांच्छा) करता हुवा, कामभोग विन भोगवेइ. वो मरके दुर्गती (खराब गति नर्क तिर्यांचा दी) में जाता है. और कदी किंचित् पुन्योदयसे मनुष्य गति पाया तो दुःखी, दरिद्री, हीन, दीन होवे: और जो क-दापी, देवता हो जाय तो *अभोगीया, देव हो सदा स्वामीके हुकमाधीन रहके अनेक कष्ट भो-गते हैं. मालकको खुशी में अपनी खुशी सना नी पडती हैं. भोगांतराय कर्मोदयसें, प्राप्त हुये पदार्थोंका भी भोग न ले सक्ता हैं: अन्यके भोग

*नोकर देव भार्याके लिये विमान दगावे. या उठावे, इन्द्राके देवअश्वादि पशूका रूप बनाके स्वारी देवे सो अभोगीया देव.

सुख देख झुरना पडता है. आर्त ध्यान ऐसी प-क्की मोहब्बत करता है, की भवांतरोकी श्रेणियों (भव-भ्रमण) में साथही बना रहता है; प्रीती नहीं तोडता है,(२)और आर्त ध्यानी प्राप्त हुये भोग सुखपे अत्यंत लुब्ध (म्रर्धी) होता है. (देवादिक के सुख अनंत वक्त भुक्त के भी ऐसा समजता है) जाणें ऐसी वस्तु मुजे कहींभी न मिली थी, ऐसा जाण, उसको क्षिणमात्रभी अलग नहीं करता है. ऐसी अत्यंत अशक्तताके योगसे, इस भवमें सूल सुजाक, गर्मी, चितभ्रमादि अनेक रोगोंसे पीडित हो, औषध पथ्यादीमें संलग्न हो, प्राप्त हुये पदार्थ भोगव नहीं शक्ता है. घरमें रही हुइ सामुग्रीयोंको देख २ झुरताही रहता है. इस रोगसें कब छुटूं, और इनका भोग लेवूं. ! !

(३)औरभी आर्तध्यानीकों, जो वस्तु प्राप्त हुइ है, उससे दूसरी वस्तु अधिक श्रवण कर, या देख, उसे प्राप्त करनेकी अभीलापा होती है; यों उत्तोल वस्तुओं भोगवनेकी अभीलापही अभी-लापा में, उसका जन्म पूरा हो जाता है; वृधवस्था

प्राप्त हो जाती है, तो भी इच्छा-तृष्णा त्रप्त नहीं होती है. भर्तृहरी नें कहाहैं की–"तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा" अर्थात् वय जीर्ण [वृध] होगइ परंतु तृष्णा-वांच्छा जीर्ण न हुइ. क्यों कि इस श्रेष्टी में, एकेक सें अधिक २ पदार्थ पडे हैं, वो सब एकही जीवकों एकही वक्तमें तो प्राप्त होही नहीं शक्ते हैं. प्राप्त हुये विन, तृष्णावंतकी तृष्णा भी शांत नहीं होतीहै. और तृष्णा शांत हुये विन दुःख नहीं मिटता हैं. इस विचार सें निश्चय होता है की, आर्त ध्यान सदा एकांत दुःखही का कारण हैं. जैसा यह इस भवमें दुःख दाता है; इससेभी अधिक परभव में दुःखप्रद समजीये. क्यों कि जो प्राप्त वस्तुपे अत्यंत लुब्धता रखता है, जिससे उसके वज्र (चीकणें) कर्म बंधते हैं. वो कर्म फिर दुर्गतीयों में, ऐसे दुःख दाता होयंगे की, रोते २ भी नहीं छूटेंगे. ऐसा विचार, सम्यक द्रष्टी श्रावक साधू इस आर्तध्यानका त्याग कर, सुखी होनेका उपाय करे.

यह आर्तध्यान सकलीं जीवोंके साथ अनादी

मोंमेंही आनंद (मजा) मानते हैं. उन कुकर्मोंके आनंदसें, जो अंतःकरणमें विचार होता है, उसे तत्वज्ञ पुरुषोंने रौद्र-भयानक ध्यान फरमाया हैं. इसके मुख्य चार प्रकार करे हैं.

प्रथम पत्र--"हिंशानुबंध."

१ "हिंशानुबंध रौद्र ध्यान" सो—
संछेदनैर्दमनै ताड़न तापनैश्च,
बन्ध प्रहार दमनैश्च विकृन्तनैश्च;
यस्येह राग मुपयाति नचानु कम्पा,
ध्यानंतु रौद्र मिती तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञः १
सागर धर्मामृत.

अस्यार्थम्-छेदन, भेदन, ताडन, तापन,-करना. बन्धन बांधना, प्रहार मारना, दमन करना कुरूप करना, इत्यादि कर्मोंमें जिसका अनुराग (प्रेम) होवे, और यह कर्म देख जिसकों दया नहीं आवे, सो हिंशानुबन्धी रौद्र ध्यान.

(१) 'दुःख किसकों भी प्रिय नहीं हैं' बेचारे जीव कर्माधिनतासे, पराधीनता, निराधारता, अ-

समर्थता पाये हैं; हीन, दीन, दुःखी हुये हैं. एकें-द्रीयादी अवस्था प्राप्त हुइ हैं. अहो निश सुखके इच्छक हैं; और यथा शक्त सुख प्राप्तीका उपाय करने खपते हैं, उन बेचारे जीवोंको, अर्थे (मतलबसें) अनर्थे (विना कारन) दुःख देना, सताना, या उनको दुःखसे पीडाते हुये देख हर्ष मानना, सो रौद्र ध्यान, एकेन्द्रीयसे लगा पचेन्द्रीय जीव पर्यंत कीतीभी जीवोंको, या जीव युक्त किसीभी पदार्थोंको, स्वयं अपने हाथसें, तथा पर दूसरेके हाथसे, प्राण रहित करते देख, टुकडे २ करते देख, लोहकी श्रांखल बेडीमें बन्धनमें डालते देख, रस्सी सूत शणादिक सें बांधते देख, कोटडी भूंवारे (तल घर) करागृह (केदी खाने) में, कब्ज किये देख, करण, नाशीका, पूँछ, सींग, हाथ पांव, चमडी, नख, वगैरे किसीभी अंगोपांग का-छेदन भेदन करते देख, कत्तल खानेमें बेचारे जीवोंका, वध करते समय, उनका अक्रांद श्रवण कर, उनके अंगके टुकडे तडफडते देख, वगैरे अनेक तरह, जीवोंको दुःख देते, या वध करते देख, आ-

नंद माने, की बहुत अच्छा हुवा, यह ऐसाहीथा. इसे मारनाही चाहिये; बंधनमें डालनाही चाहिये; फांसी, सूली, देनाही चाहिये; बडा जुलमी था. वचता तो गजब कर डालता, पाप कटा, मरगया, पृथ्वीका भार हलका हुवा! वगैरे २ शब्दोचार करे, आनंद माने, सो हिंशानुबन्ध आर्त ध्यान.

(२) औरभी हाहा! यह महेल, मंदिर, बंगला, हाट–दुकान, हवेली, कोट, किल्ला, खाइ, बुरजों, तीरस्थंभ, या मृतिका पापाणादिकके खिलोणे, मूरती, भंडोपकरण (बरतन) वगैरे, बहुत अच्छे बने, अच्छा रंग, कोरणीयादि कर, सुशोभित किया; शाबास कारीगरकों पूरा शिल्पवेताथा, की जिसने ऐसी मनहर वस्तु बणाइ. ऐसेही कूप बावडी, नल, तलाब, होद, कुंड, झरणा, झार्गी, लोटा, गिलाश, कळशा, वगैरे बहुतही अच्छे मनहर बने हैं. क्या स्वादिष्ट शीतल सुगंधी पाणी हैं. कैसा उमदा फुवारा छूटता है. कैसा उमदा छिडकाव हुवा हैं. चूला, भट्टी, अंजन, मील, दीवा, पिलशोद. हंडी गिलास. झुमर. चीमनी. वगैरे

वहुतही अच्छे सुशोभित हें, क्या उमदा झगमग रोशनी होरही हें, क्या रंगी बेरंगी आतशबाजी (दारूके ख्याल) छूट रहे हें. क्या धूपकी सुगंधी मघमघा रही हें. क्या शीतल सुगंधी हवा आती हे. क्या उमदा पंखा पंखी चल रहे हें. केसा झूला घूमता हे, क्या मञ्जुल वाजित्रोंका नाद हें. क्या उंचे२ विचित्राकार वृक्षोंका समोंह सोभ रहा हे. यह झाडों काटके प्रशाद, स्थंभ, पाट, वगैरे बनाने योग्य हे, यह फल वडे मिष्ट हे, भक्षण करने योग्य हें गुण करता हें; शाख वडा स्वादिष्ट बना. क्या लीली २ हरीयाली छा रही हें, इसे देखनेसें वडा आनंद होता हे. क्या मनहर हार तुरें बनाये, औषधियां कंद मुलादिक पोष्टिक स्वादिक कैसे अच्छे हें. यह कीडे, खटमल, डंस, मच्छर, परले के जीव हें, इनकों जरूरही मारना. जलचर मच्छादि भूचर गवादि, वनचर शुकरादी, खेचर, पक्षी आदी, पचनादी कर भक्षणे योग्य हें. यह अश्व गजादी की कैसी सजाइ सजी हें. शैन्य शत्रूंका कट्टा करने जैसी हें, वहुत अच्छे चित्र विचित्र पक्षीयोंको पींजरेमें रखे हें. अजायव घरकी

अजब छटा हैं. *मुशेसे रोगोत्पती होती है. यह मारने योग्य हैं. सर्प विच्छूवादि विषारी जीवोंको अवश्य मारना, बडा पुन्य होगा, सिंहकी शिकार क्षत्रीयोंकों अवस्य करना चाहीये. केसा सूर सुभट हैं, एक पलक में हजारोंका संहार करता है. इत्यादी विचारको हिंसानुबन्ध रौद्रध्यान कहना. औरभी अश्वमेध यज्ञ, घोंडेका अग्निमें होमनेसे; गौमेधयज्ञ गौका, अजामेध बकरेका, और नरमेध मनुष्य का, अग्निमें होम करने (जलाने) से, बडा धर्म होता है, स्वर्ग मिलता है. यह विचारभी रौद्रध्यानका हैं. कित्येक पापशास्त्रके अभ्यासी कित्नेक जानवरोंके अंगोपांग मांस; रक्त, हड्डी, चर्म इत्यादी सेवनेसे रोग नास्ती मानते हैं. कित्नेक क्रिडा निमित्त कुत्तेआदी शिकारी जानवरोंसे बेचारे गरीब पशु पक्षीयोंको पकडाके मजा मानते हैं. कित्नेक बंदर रीछ आदी जीवोंके पास नृत्य गायनादीके

---

* प्लेग रोगके प्रगट होने पहिले घरोंमें मूसे (चुवे उंदिर) [illegible] [illegible] उस मूसेको उसे मारते हैं यह बडा अज्ञान दशा है.

ख्याल तमाशादेखनेमें मजा मानते हैं. कुर्कट, भेसें, मेंढे या मनुष्यादि की लडाइ देख मजा मानते हैं. सो भी हिंशानुबन्ध नामे रोद्रध्यान है.

किल्लेक जीवोंके संहार के लिये, सत्घनी, (तोप) बंदूक, धनुश्यबाण, खड्ग, कटार, छुरी, चक्र आदीका संग्रह करते हैं: या शस्त्र देख, जीवों के संहारकी इच्छा करते हैं. किलेक घट्टा, घट्टी, हल,बखर, कुदाली, पायडी ऊखल. मुशल, सरोता, दांतरडा, कातर, वगैरेका संग्रह करते हैं. तथा इन को देख संहारकी इच्छा करते हैं. हाथ में आये चलानेकी इच्छा करते हैं. खाली चलाके देखते हैं, सो भी हिंशानुबन्ध रौद्रध्यान.

औरभी किसीका वुरा चिंतवना, अपनेसे अधिक रूपवान, ऐश्वरी, गुणीजन, पुण्यप्रतापी, बहुल परवारी, सुखी देखके ईर्षा करे, उनको दुःख होनेका विचार करे, की इस के पीछे मुजे कोइ नहीं पूछता है, यह मेरे सुखमें या लाभमें हरकत कर्ता है. मुजे हरवक्त दबाता है सताता है, यह कब मरे और पाप कटे, वगैरे विचार करे सो भी

हिंशानुवन्ध रौद्रध्यान.

और पृथव्यादि छेही काय के जीवोंकी हिंशा होवे, ऐसा यज्ञ, होम, पूजा, वगैरेका उपदेश दे, या ग्रन्थ रचे, तैसेही ओषधीयों के शास्त्र रचते, दुष्ट (घातक) मंत्रका साधन करते, विभत्स कथा कादम्बरी वगैरे रचते व पढते वक्त, हिंशक, चोर, जार, दुष्ट, दुर्व्यसनीकी संगतमें रहते, और निर्दयी क्रोधी, अभीमानी, दगावाज, लोभी, नास्तिक, इनके मनमें हिंशानुवन्ध रौद्रध्यानका विशेष वास होता है.

तैसेही हिंशासे निपजती हुइ वस्तु, जैसे— १गिरनीमें पीशा आटा, २चीनी सकर, ३हड्डी या हाथी दाँत के चूडे, वगैरे, ४कचकडेकी वनी वस्तु, ५पांखोंकी टोपीयो वगैरे, ६चमडेके पूठे वगैरे,

१गिरनीके आटेकों बरोबर जमाके उपर सकर भुरभुरा देखनेमे हलते चलते वहुत जीव दिखते हैं. २चीनी सक्करमें हड्डीयोंका चूरा विशेष होता है, और गायके रक्तसे शुद्ध करते हैं. ३हाथी दातके लिये ७०००० हाथी फ्रान्स देश में दरसाल मारे जाते हैं ४काछवेको गरम पानीमें डुवाके मारके उसके चमडेकी जो वस्तु वनाते है उसे कचकडेकी कहते है. ५जीवते पक्षीयोंकी पांखो झडपसे उखाड लेते है, वो टोपी वगैरेपे लगाते हैं. ६ जीवते पशुका चमडा निकाल ते हैं किनेक स्थान चमडेके लियेही विषादी प्रयोगसे पशूको मार [illegible] पोंके पूठे, नोवत नगारे, वगैरे वनते हैं.

७अंग्रेजी दवाइयों, ८ सावन मेणवत्ती, ९रेशमी कपडे, १०खराब केशर, ११चर्वीका घृत (घी) वगैरे हिंशक वस्तुका भोगोप भोग करते मनमें जो मजा मानते हें, वोभी हिंशानुबन्ध रौद्रध्यान गिना जाता हे.

ऐसेही बोर, मूले प्रमुखकी भाजी, जुवार बाजरीके भुट्टे, खुला अनाज व ओषधी, विना देखे कोईभी सजीव वस्तु भोगवते मजा मानने-से भी, हिंशानुबन्ध रौद्रध्यान गिना जाता हें, क्यों कि इनमें त्रस जीवोंका विशेष संभव हें.

महाभारत संग्रामोंके इतीहास कथा पढते सुनते जो उसकी मनमें अनुमोदन होवे, सो भी हिंशानुबन्ध रौद्रध्यान.

७अंग्रेजी दवाइयोंमे जानवरोंके मांसका अर्क व दारूका भेल होता है काडलीवर आइल यह मच्छीका तेल होता है, ऐसी बहुतसी है. ८साबू मेणवत्तीमें चर्वीका भेल होता है ९कित्नेक केशरमें मांस के छांटे होते है. १०रेशमी कीडेको गरम पाणीसे मार रेशम लेते हैं. ११कित्नेक घी (घृत) में भी चर्वी का भेल आता है. ऐसी अखबारोंने बहुत खबरें प्रगट हुइ है, और इसे पढके वरोक्त वस्तु छोडते नहीं हैं उन्हे आश्चर्य्यसे कहना.

इत्यादि हिंशानुवन्ध रौद्रध्यानका वहुत वयान हैं, सबका मतलब इत्नाही हे की, किसीकों भी दुःख देनेका विचार होवे या दूसरे के वधसे वस्तु वनी उसकी अनुमोदना करे वोही हिंशानुवन्ध रौद्रध्यान.

द्वितीय पत्र--"मृषानुवन्ध."

२ "मृषानुवन्ध रौद्रध्यानः"—

श्लोक- असत्य चातुर्य वलेन लोकाह्वितं प्रहीष्यामि वहु प्रकारं; तथा स्वमतङ्क पुगकराणि, कन्यादि रत्नानीच वन्धुराणी ॥ १ ॥ असत्य वागवंचनाया निजानंत प्रवर्त्तय त्यत्र जनं वराकम्, सद्धर्म मार्गा दास्विवर्तेनेन मदोद्धतोयः सहि रौद्रधामा ॥ २ ॥

ज्ञानार्णव.

अर्थ—विचार करे कि मैं असत्यतासे चतुर्ता करके, मेरे कर्मोंको प्रगट न होने देते, अनेक प्रकारसें लोकोंकों ठग कर, मेरा मतलब पूरा करूं

मन कल्पित, अनेक शास्त्र दया रहित रचकर, मन माना मत चलावूं, लोकोकों वाक्य चातुरीसे मोहित कर, उनके पाससे सुन्दर, कन्या, रत्न, धन, धान्य गृह, (घर) ग्रहण करूं, और मेरा जीवन सुखे चलावूं. इत्यादि असत्य विचार, जिसके अंतःकरणमें होवे, उसे मदोद्धत मृषानुबन्ध रौद्रध्यानका मंदिर (घर) समजना चाहिये.

मृषा=नही रक्खा, अर्थात 'झूटेने, जक्तमें बुरा पदार्थ कुछ बाकी रक्खा नहीं,' सब उसनेही ग्रहण कर लिया. ऐसा खराब झूटा पना हें, और छोटे, वडे, सब झूटकों खराब समजते है, क्यों कि झूटा 'कहनेसे, सब चिडते हें;' तो भी आश्चर्य हे की फिर उसे नहीं छोडते हें, देखिये इस ध्यानकी सत्ता केसी प्रबल हें, की खराब काममेही आनंद मानाता हें. कित्नेक अपनी चातुरी बताते हें, की, हम केसे विद्वान हे. केसा परपंच रचा, की—अंग हीन, रूपहीन. इन्द्रियहीन, औरगुणहीन कन्याको भी केसे बडे स्थान दिलादी; और नगदी इस्से दिला दिये. बुढ्ढेका. रोगिष्टका, नपुंशकका के-

र्सी युक्तीसे लग्न करादिया, अब वो दोनो भलांइ तावे उम्मर रोवो. अपना तो मतलब हो गया. ऐसेही गाय अश्वादी पशूवोंकों, तोता मैनादी पक्षीकी, खेत, बाग, बावडीयादीकी, झूटी परसंस्या कर, प्रपंच रच, रूपका प्रावृत (पलटा) कर. बुरेकें अच्छे बनाकर, ज्यादा कीमत उपजावे, और खुशी होवे, तैसे पुराने वस्त्रोंको, रंगादी प्रयोगसे नवे बना, खोटे भुषणोंको सचे बना, या अच्छा माल बताके खोटा दे, हर्ष मानें, कोइ विश्वासमें अपनें स्वजन मित्रको गुप्त धन भूषण थापन रख गया होय, उसे दबा रखले मालकको न दे. ऐसेही झूटी गवाइयों खडीकर झूटे खत (रुके) बनाके गृह धनादिकका हरण कर खुशी होवें. ऐसे अनेक बेपारके कामोंमें, दगाबाजी करे, परपंच रचके दूसरेकों छलनेका विचार करे सो मृषानुबन्ध रौद्रध्यान.

अपना मन माना मिथ्या पंथ चलाने विनराग कथित शास्त्रको छोट. अनेक कल्पित (झूटे) ग्रन्थ, चरित्र, वगेरे बनाके विचार भोले जीवोंको

भस्ममें डाले, हिंशामार्ग वता; शुद्ध दया मार्ग छोडा, मनमें आनंद माने, की— मैंने इत्ले ग्रास, इत्ले मनुष्य, मेरे वनाये. ऐसेही, ज्ञानवंत, आचारवंत, शुद्ध जिनेश्वरके मार्गके परुपक, क्षमासील, ब्रम्हचारी वगैरे धर्म दीपकोंकी, महीमां सुणके इर्षा लावे; ✻और उनका अपमान करनें, उनके सिर झूटा कलंक चडावे, निंदाकरे; और अपनी झूटी वातकों दूसरे मान्य करते देख हर्ष माने. कन्यादान, ऋतुदान, ठेहराके कुलीन स्त्रीयोंको भृष्ट करे. धर्म निमित हिंशामें दोष नहीं ऐसा ठहरावे. ब्रम्हचारी नाम धरा, विभचार सेवन करे, और महातमा वगैरे नामसे वोलाते आनंद माने, सो भी मृषानुवन्ध रौद्रध्यान.

✻मनहरः—सजनकों देखकर दुर्जन करत कोप, ब्रम्हचारी देखकामी कोप करे मनमें. निशके जगैया ताकों देख कोप करे चोर, धर्मवंत देख पापी झाल उठे तनमें; सुरवीर देखकर, कायरकरत कोप; कवीयें।को देख मुढ हांसी करे जनमें. धनके धनीकों देख निर्धन कोप करे, विनाही निमित खाक डारेतिहू पनमें:—

वधीर (बेरे) अन्धे, लंगडे, आदी अपंगको: कुष्टादी रोगिको, निर्बुधी, इत्यादिकी हांसी करे, इन्हे चिडावे, चिडते देखमजा माने. जुवा-तास (पत्ते). शतरंज, वगैरे ख्यालोंमें, सहजही झूट बोलाना हैं. निकम्मे विवादमें, प्रवादीयोंको दगासे छलनेमें, झूटे पेंच रचनेमें, हस्त चालाकीसे,या इन्द्र-जालमें, अनेक कौतुक बतानेमें, मंत्र जंत्रादीका आडंबर बडा. आपनी प्रतिष्टा (महिमा) सुण खुश होवे. शास्त्रार्थ करते (वाख्यान देते) अपने मरम (हर्ज) की बातकों छिपावे, अर्थको फिरावे, अनर्थ करे. झूटे गप्पसें प्रपदाकों रींजाके, आनंद माने. दया, सत्य, शीलादी गुण रहित शास्त्र हैं, जिनमें फक्त संग्राम झगडे, या लीला, कितुहल, स्त्री कथा होवें, उन्हे श्रवण कर आनंद मानें. इत्यादि सर्व मृषानुबन्ध रौद्रध्यान समजना.

मृषानुबन्धका अर्थ तो बहुतही होता हैं; परंतु मारांश इतनाही हे की झूटे काममें अनंद माने उसहीका नाम मृषानुबन्ध रौद्रध्यान जाणना.

---

* म कानशाली.

तृतीय पत्र-"तस्करानुबन्ध".

३ "तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान" सो—

श्लोक—यच्चौर्याय शरीरिणा महरहश्चिन्ता समुत्पद्यते,
कृत्वा चौर्यमपिप्रमोद मतुलं कुर्वन्तियत्संततम्;
चौर्येणापि हृतेपरैः परधने यज्जायते संभ्रम-
स्तच्चौर्यप्रभवंवदन्ति निपुणा रौद्रंसुनिन्दास्पदम्

ज्ञानार्णव.

अर्थ—चोरी करनेकी सदा चिन्ता रहे; चोरी करके अति हर्ष माने; अन्यके पास चोरी करा, लाभकी प्राप्ती हुइ देख, खुशी होवे; चोरी कर्ममें, कला कौशल्यता बतानेवालेकी प्रसंस्या करे; इत्यादि विचार करे सो तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान अति निंदनिय है.

जीव तृष्णा रूप विकाल जालमें फसे हुये, सर्व जगतकी अन्न, धन्न, लक्ष्मी, कुटंब की ऐश्वर्यता (मालकी) किये चहाते हैं, परंतु इत्ने पुंन्य करके नहीं लाये की, सर्वाधीपती बने? और प्रमादी (आलसी) ओंसे मेहनत करके, द्रव्योपारजन करना तो बने नहीं, तब सीधा द्रव्य मिलाके इच्छा त्रप्त करने, पापोदय से उनकों चोरी सिवाय, दूसरा उपायही कौनसा दिखे, इस हेतुसे, वो चोरीयानुबन्ध रौद्र ध्यानमें चडते हैं.

विचार करते हैं की घटासे अच्छादित अभ्रयुक्त अन्धारी रात्रीमें, कृष्ण वस्त्र धारण कर, गुप्तपने जा, क्षात्रदे, द्रव्य लावूंगा. क्या मगदूरहे कोइ सामने आय, में शस्त्र कलामें ऐसा प्रवीन हूं की-एक झटकेमें, वहुतोंके वटके (टुकडे). ऐसा सटकु की किसकी माने दूध पिलाया हैं, जो मुजे पकडे. में अनेक विद्याका जानहूं, सवको निद्रा ग्रस्त कर सक्ता हूं. वडे २ जंजीर और तालोंको एक कंकरीसे तोड सक्ता हूं. शैन्यको स्थंभन कर सक्ता हूं. अंजन सिद्धिसे पाताल का निध्यान, गुप्तद्रव्य, और अंधकारमें प्रकाश तुल्य देख सक्ताहूं- इत्यादि अनेक कलाका धरनहार में हूं. क्या मगदूर कोइ मेरी वरोवरी कर सके. हजारों सुभट मेरे हुकममें हैं, वो भी मेरे जैसे कलामें पूर, और सूर वीर हैं. मेने वडे २ नरेंद्रोको धुजादीये हैं. अव मे थोडेही कालमें, इश्वरो (मालकों) का संहार कर, सर्व ऋधिसिद्धि का श्वामी वन, निश्चित मजा भोगवुंगा. अमुक स्त्री महा रुपवंत हैं, उसकाभी हरण करूं. अमुक भूषण, वस्त्र, पात्र, पशु, मनुष्य, इन सर्व उत्तम पदार्थोंको, मेरे स्वाधीन कर, उनके उपभोगसें मेरी आत्मा त्रप्त करूं, ——ि विचार अंतःकरणमें होवे सो तस्कग्नुवन्ध

रौद्रध्यान.

ऐसेही किलेक नामधारी साहुकार, लोकोकों सेठाइ वताने, उत्तम २ वस्त्र, भूषण, तिलक—छापे, माला, कंठी, से शरीर विभुषित कर, माला फिराते, वडे धर्मात्मा वन, ऊंची २ गादी तकीयोंके टेके, दुकान पे विराजमान होते हैं. शीकार आइ के माला हलाते, भगवानका नाम उच्चार ते, मीठे २ वोल. उस भोलेकों, पान वीडी आदी के लालच से भरमा के, ऐसी हुस्यारी से ठगाइ चलाते हैं, की क्या मगदूर कोइ समझतो जाय, मोलमें, वोलमें, तोलमें, मापमें, छापमें, जवावमें ठगाइ चला, वस पहोंचे वहां तक उसे लूटनेमें कसर नहीं रखते हैं. और विश्वास उपजानें गायकी, वच्चेकी तथा भगवानकी, दमडी २ के वास्ते कसम (सोगन) खाजाते हैं, इच्छित लाभ हुये वडे खुशी होतें हैं. अच्छा माल वता खोटा देतें हैं, अच्छा वुरा भेला कर देतें हैं, हिसावमें, व्याजमें, उनका घर डूवो देतें हैं. ऐसे २ अनेक चोरी कर्म भर वजार में कर साहुकार कहलातें हैं. अपनें चालाकीको हुस्यारी समज वडा हर्ष मानते हैं, सोभी चोरीयानुवन्ध रौद्रध्यान.

ऐसेही कितनेक साधूॐओंका, शरीर दुर्बल देख कोइ पूछे महाराज आप तपस्वी हो, तब तपस्वी न होने परही कहे की हां! साधू तो सदा तपस्वी होतेंहैं, सो तपका चोर. ऐसेही शुद्धाचारविन, मलीन, वस्त्रादी धारण कर, आचार वंत बजे, श्वेत वाल होनेसे स्थैवर (वृध) बजे, रूपवंत हो राजऋधी त्यागनेंवाला बजे, कर प्रणामी होके, दांभिक पणेसे, वैरागी बजे वगैरे धर्म ठगाइ कर, आनंद माने सोभी तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान.

किसीके मकान, बगीचा, धर्मशाला, वस्त्र, भूषण, बरतन, भोजन, पाणी, अन्न, फल पुष्पादी, त्रण कंकर जैसा निर्माल्य पदार्थ भी उसके मालककी आज्ञा विन, देखके, स्पर्शके, या भोगवके, आनंद माने सोभी चौर्यानुबन्ध रौद्रध्यान.

जो जो अन्यके पदार्थ सुणने में, देखनेमें, व जाणनें में आवे, उनको ग्रहण करनेंकी, अपनें तावें करनें-

ॐ तव तेणे वय तेणे, रूवे तेणेय जे नरा;
आयार भाव तेणेय, कुव देवेंद किंविसा १
तप आचारका, वृधका, रूपका, तपका, भाव का चोर, मरके, किल्विषी (देवमें चंडाल जैसे) देव होते हैं.

की भोगवर्णे की अभीलाषा होवे, वोही तस्करानुवन्ध तीसरा रौद्रध्यान.

चोर चोरी करके वस्तु लाया, उसको सस्ते भावमें लेके मजा माने, चोर को साहाय देवे. खान पान वस्त्रादी से साता उपजा, उनके पास चोरी करावे, और माल आप लेके आनंद माने. राजका दाण (हांसल) चोरा के खुशी होवे, जिस वस्तु वेंचनें की, अपनें राज में राजानें मनाकी होय, उसे गुप्त लाके वेंचे, और खुश होवे, इत्यादी तस्करानुवन्ध रौद्रध्यान के, अनेक भेद हे. सबका मतलब इलाही हे के मालककी रजा(आज्ञा) विन, या उसके मन विन, जब्बर दस्तीकर जो वस्तू पे अपनी मालकी जमाके आनंद माने; सोही तस्करानुवन्ध रौद्रध्यान.

चतुर्थ पत्र "संरक्षण"

१ "विषय संरक्षण रौद्रध्यान—इस जगत्में सब जीव पापीही पापी हे, ऐसाभी नही समजना; तथा सब पुन्यात्मा हें, ऐसा भी नही समजना. सर्व संसारी जीवोंके पुण्य ओर पाप दोनों आनादी सें लगे हें. पापकी वृधी होनेसे, दुःख की विशेषता, और पुण्यकी वृधी होनेसे, सुखकी विशेषता होती हें: ज्यादा होता

हैं सोही दृष्टी आता हैं; तो भी उसका प्रतिपक्षी गुप्त वनाही रहता हैं.

जिनके पुण्यकी अधिकता होतीहे, उनको सुख दाइ मनयोग, साम्ग्रीयोंका संयोग मिलता हे; वों उसका वियोग कदापी नहीं चहातें हे. (यह वर्णव आर्त ध्यानके दूसरे भेदमें हो गया हैं) परंतु वस्तुका स्वभावही "अध्रुव असा सयंमी" अर्थात् अध्रुव, अशाश्वतः क्षिण-भांगूर हैं. "समय ३ अनंत हानी" भगवंतने फरमाइ, सो सत्य हैं. वस्तुका स्वभाव क्षिण २ में पलटता २, किसी वक्त वो सर्व वस्तु नष्ट होजाती हैं; उसे नष्ट न होने देने—अर्थात् बचानेके जो उपाय कियाजाय, उसीका नाम विपय संरक्षण रौद्रध्यान हैं.

राज लक्ष्मी प्राप्त होनेसे, विचार होयकी रखे मेरे राज्यको, कोइ परचक्रीयादी हरण करे. इस लिये अव्वलही बंदोवस्त करे, चतुरगणी शैन्य (हाथी, घोडे, रथ, पायदल) उमदा २ प्राक्रमीयोंका संग्रह करूं, धोकेके स्थान छावणी डालू, उद्धतोंके संहारका उपाय चिंतवे, शत्रूके राजमें मनुष्य रख खबर लेता रहूं. उमरावादी को इनाम इकरामसें संतुष्ट रखूं की वक्तमें जान झोंकदे. पुक्त, पुस्ती, डंडी, खाई, शस्यनीयादी

स्त्र युक्त उंच बुरजो, पक्का किल्ला बनावूं. धनुष्य बाण
चक्रादी, अनेक शस्त्र, वक्तरोंका, संग्रह कर रखूं, धनु-
र्वेदादी शिक्षा ग्रहण कर, शंग्राम विद्यामें प्रवीन बनूं.
कसरत, और औषधीयादीके सेवनसे, सरीरको पुष्ट
महनती रखूं की, वक्तपे हारूं नही. इत्यादि उपायोंसे
राज्य रक्षणकी चिंतवणा करे, सो भी विषय संरक्षण
रौद्रध्यान.

द्रव्यको जर्मनीयादीकी तीजोरीयोंमे रक्खू, जिस्से
अग्नी, चोरादिकका उपद्रव न पहोंचे. मेला गेहला रहूं,
की जिससे कुटंब चोरादी धन हरने पीछे न लगे, कि-
सीके साथ मोहब्बत न करुं की, वक्तपें किसीकी प्रा-
र्थनाका भंग करना नही पडे, संकोचसे थोडेही खरचमें
गुजरान चलावूं. हलकी वस्तु वापरुं, इत्यादि उपायसे
द्रव्यका रक्षण करुं, और स्त्रीयोंको पडदेमें रखूं, खो
जाओंका प्रहरा, खान पान वस्त्र भुषणकी मर्याद
क्मी भाषण, और अपनी तर्फसे उन्हे संतोष उपज
रखू. की-जिससे वो अन्यकी इच्छा न करे, स्वजन
लोंको खान, पान, वस्त्र, भुषण, स्थान, सन्मानसे
तोषूं की, जिससे वो वक्तपें पूरा काम देवे, मक
सुधराइ सफाइसे रखूं. की पडे नहीं. इत्यादी

रसे संपती संततीके रक्षणका विचार करे, सो भी विषय संरक्षण रौद्रध्यान.

ऐसेही येह मेरा सरीर, रत्नोंके करंडीये से भी अधिक प्रियकारी हे, इसको. शीत उष्ण वर्षाऋतुमें. यथा योग्य वस्त्र, आहार, पाणी, मकान, से सुख देवूं, दंश, मच्छर, वगैरे क्षुद्र प्राणियोंके भक्षणसे बचावूं शत्रओंसे रक्षण करने, शस्त्र सुभटोका बंदोबस्त करूं क्षुधाको इच्छित भोजनसे, त्रषाको शीतोदकसे, वात, पितादी रोगको औषधोपचारसे, मंत्रादीसे- बिलादीके उपसर्गसे रक्षण कर, इस सरिरको अखंड सुखी रखू. ऐसा विचार करे. तथा अपना गौरवर्ण-स्तेज (दमकदार) पुष्ट शरीर देख, खुशी होवे; और अभक्षादीसे पोषण करनेकी इच्छा करे. ओर शरीरके, स्वजन संम्बन्धीयोंके संपतीके नाश करनेवाले जो हें, उनपे दुष्ट प्रणाम लावे, उन्हे-देख क्रोधातूर हो जावें, उनके नाशके लिये अनेक उपायोंकी योजना (विचारना) करे. और अपना शरीर धन वगैरे दूसरेके तावेमें होय, उनको स्वतंत्र-करने अनेक कूयुक्तीयोंका जो विचार होवे. ये सब, विषय संरक्षण नामे रौद्रध्यान समजना.

ऐसे इस ध्यानके अनेक भेद हें. परंतु सबका

तात्पर्य यह है की इस ध्यानमें विशेप कर. अपणा स्व-रक्षण और अन्यको परिताप उपजानेका विचार बना-रहै. इसलिये इसे रौद्र (भयंकर) ध्यान कहा हैं.

द्वितीय प्रतिशाखा-"रौद्रध्यानीके लक्षण"
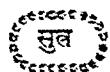
सुत्र रोद्दस्सणं झाणस्स चत्तारि लरकणा पन्नं-ता तंज्जहा, उसणदोसे, बहुलदोसे, अ-णाणदोसे, अमरणांतदोसे.

अर्थम्-रौद्रध्यानीके ४ लक्षण. १हिंशादी पा-पोंका विचार करे. २विशेप (अखंड) विचार करे. ३अज्ञा-नीयोंके शास्त्रका अभ्यास करे. ४मृत्यू होवे वहां लग पापका पश्चाताप करे नहीं.

रौद्र=भयंकरही जिस ध्यानका नाम, उसका विचार, कृतव्य, और स्वरुप भयंकर होवे, यह तो स्व-भाविक हैं. विचार मगजमें रमण कर अकृती धारण कर, उसही कार्यमें प्रवृतने शरीरको प्रेरना करताहैं.

रौद्र ध्यान (विचार) होनेसे, रौद्र कार्यके वि-पयमें जो प्रवृती होती हैं. उसके मुख्य चार भेद भगवानने फरमाये हैं.

प्रथम पत्र--"उपण दोष."

१उपण दोष, सो हिंशा, झूट, चोरी, और विषय संरक्षण, इन ४हीकी पोषणताके लिये, जो जो काम करे सो उपण दोष. जैसें-हिंशाकी पोषणता (वृधी) करने. अनेक, पावडे, कोदली, खुरपे, वगैरे पृथवीको खोदने फोडनेके शास्त्रका संयोग मिलावे. अधूरे होय तो हाथालगा, धार सुधरा पूरे करावें, और पृथ्वी छेदन भेदनके आरंभमें उन्हे लगावे. एही पाणीके आरंभकी वृधीके लिये चडस, रेंहट, मशक या घडा, कलशा, वगैरे वृतनो. कूवा,वावडी,तलाव,नल,फुवारे,होद, आदी स्थान बणवाके पाणीका आरंभ करे करावे, अग्नीके लिये चूले, भट्टी, दीवे, चिलमो, आतसवाजी, वगैरे करावे औरको उस काममें लगावे. हवाके आरंभके लिये, पंखी, पंखा, वार्जित्र, वगैरे. हरीके आरंभकेलिये वाग, वगीचे, वाडी, इत्यादि लगावे. या पत्र पुष्प फल, त्रणादीका छेदन, भेदन, पचन, पाचन. भक्षण, करे करावे, त्रसके आरंभकेलिये धूम्रादिक प्रयोगसे मच्छर डांस,पटमल आदीकोमारे जाल फासामे जलचर,वनचर, खेचर आदीको कब्जे करे. तरवार भालादी शस्त्रसे छेदन भेदन ताडन तर्जन करे. मनुष्य पस्पूको कठिण

(घाव पडजाय) ऐसे बंधनसे बांधे, कठोर प्रहार करे. अहार पाणीकी अंतराय देवे. अंगोपांग छेदन भेदन करे. सत्ता उप्रांत काम लेवे. मेहनत करावे. सदा निर्दय होके, अयत्नासे एकांत स्वार्थ साधने, या विना, कारण अन्यकों संताप उपजाने. वरोक्तादी जो जो कृतव्य करे, उसे रौद्र ध्यानी समजणा-

ऐसेही—झूटका पोषण करने अनेक पाप शास्त्र काम शास्त्र, कादम्बरी. पठन करे: झूटे झगडे जीत अनेक चालाकोंकी संगत. व कायदे-कानूनोंका अभ्या करे, झूटे ख्याल कविता बनावे, चकार, मकार गालीका उच्चार करे: विभत्स (अयोग्य) शब्द निडर, निर्लज होके प्रवृते. ऐसेही चोरीकी पु लिये, चोरोंके शस्त्र: कोश. कुदाल. गुती. वगैरे संभ चोरी कलाका अभ्यास करे. गोआदि जानव चोरोंकी संगतमें रहे. धाडापाडे. चालाकीसे माल हरण करे, और विषय संरक्षणके पोष श्रोतेंद्रीके पोषणके लिये मृदंगादी वणाने औ वोंका चर्म (चमडा) निकलावे. तारंगीय गवादीकी आंतो (नशो) तोडावे. वस्तु इं के श्रृंगार, खुश्बी, खजाने, सुवर्ण र

आगरों (खदानो) मोतीयोंके लिये, वेंद्री सीपोंको चिराने, सण, कापासादी, पिलाने, कताये, गिरनीयादी द्वारा वस्त्रादी बनवाने, अनेक श्रृंगारसजे, या स्त्रीयादी को श्रृंगारके उनके नाटक ख्यालादी देखे. बगीचादी लगावे. घणेंद्रिके पोषणे,यंत्रादी प्रयोगसे अत्रादी निकला वे पुष्पादी सुगंधी द्रव्यका सेवन करे, गुलवटिकादी धनाके उपभोगलेवे, रसेंद्री पोषणे, मंदिरा, मांस, भोगों. कंद, मूल, आदी अभक्ष खावे, पौष्टिक उन्मादिक वस्तुका सेवन करे, रसायन भस्मादी सेवन करे, चंद्रोदय गुटिकादी सेवन कर महा कामी बने, स्पर्शादी के पोषणे, अनेक पुष्पादी सेजका सयन, उत्तम वस्त्र भुषणोंसे श्रृंगार सज, हार, तुरें, अंतर, पुष्पादीसे शरीर सज, चूंनृं करनी पगरखीयों पहर, अकड मकड चल, वेस्यादी नृत्यमें अगवानी भागले, गान तानोंमें गुलतान बन मान तोड. मशगुल बन जावे, कामके चौगनी अमनोंकी नम रीरों का वारंवार अवलोकन करे, इत्यादि तरह पचेंद्रीके पोषणके लिये जो उपायोंकी योजना करे, उसे उमन दोष नामें रौद्रध्यानी समजना.

द्वितीय पत्र-"बहुल दोष."

"बहुल दोष" सो. प्रसंग इन्ही कामोंको

विशेप करे अर्थात ज्यों ज्यों करे त्यों त्यों ज्यादा २ इच्छा
वडती जाय. और इच्छा को त्रस करन अधिक २ कर्ता-
जाय, परंतु त्रर्ती आय ही नहीं, उसे बऊल दोप कहना.

तृतीय पत्र-"अज्ञान दोप."

३ "अणाण दोप" सो– रौद्रध्यानका स्वभा-
वही है, के वो उत्पन्न होता तुर्त सज्ञानका नाशकर,
जीवको अज्ञानी मुढबना देता हैं. सूकार्यसे प्रिती उ-
तार, कुकार्यमें संलग्न कर (जोड) देता हैं. सत्साम्न
श्रवण, सत्संगमें अप्रिती अरुची होती है, और २९ पाप
सूत्रोंके* अभ्यासमें प्रिती होवें. विपयमें प्रवृति करावे,
ऐसी कवीता, कल्पित ग्रंथो, कोकशास्त्र, वगैरे पढे सुणे,
और कूशास्त्रकी, जिसमें हिंशा झूट, चोरी, मैथुन, वगैरे
पाप सेवनमें निर्दोपता बताइ होय; उनका तथा वसी-
करण,उचाटन,अकर्षण,स्थंभनादी वियाका अभ्यास करे
गालीयों गावे, ठट्टा, मस्करी करे. पुरुपोंको स्त्रीयोंके वस्त्र
भुपण पेहरायके,नृत्य,गान,कुचेष्टा करावे; दयामय उत्तम

* २९ पापसूत्र—१भूमीकंप. २उत्पात. ३स्वपन, ४अंगफरूक-
नेका, ५उल्का पातका. ६पक्षीयोंके स्वरका [कोक] ७व्यंजन
तिलमसका, ८लक्षणासामुद्रिक, इन ८ के अर्थ-पाठ, और कथा-
यों ८÷३=२४ और २५ कामकथा, २६ विद्या रोहणीयादी
२७मंत्र, २८तंत्र, २९अन्यमतोंके आचारके.

विचारही मनमें रमण करता हैं, जिससे वज्र कर्मोंका बंध सदा होताही रहता हैं. इसकी आतमासें धर्म कर्म बिलकुल नहीं बनता हे. जो देखा देख किया भी तो, क्रूर प्रकृतीके सबबसे उसका अच्छा फल नष्ट होजाता हैं. हाथमें कुछ नहीं आता हैं, अर्थात् इसके विचारसे कुछ होता नहीं हैं. होण हार होतब तो हुवाही रहता हे. परंतु उसके मलीन प्रणामसे उसके कर्मोंका बन्ध अवस्य पडताहे. और उन कनिष्ट कर्मोंका बदला देने, रोद्रध्यानीकी नर्क गती होती हैं. वहां यहांके किये हुये कर्मोंके फल भुक्तता हैं! परमाधामी (यम) देव, हिंशा करनेवालेकों, जैसी तरह उसने हिंशा करी होय, वैसेही वो मारते हैं. अर्थात् काटनेवाले को काटते हैं. छेदनेवालेका छेदन भेदन करते हैं. सीकारीका तीरोसे सरीर भेदते हैं. सिंह सर्प, विच्छू, कीडे, मच्छर वगेर क्षुद्र जीवोंके घातकका, क्षुद्र जीवोंके जैसा रुप धारण कर, उसे चीर फाड खाते हैं. मांस भक्षीको उसका मांस तोडके खिलाते हैं. मदिरा पानीको, उकलता २ सीसा, तरूवा, तांबा पिलाते हैं. विषय लुब्धीको, अग्न मय लोह पुतलीके साथ संभोग कराते हे. रागीणीयोंके रसीयेके कान, रुप लुब्धकी आंख गंध विलासीका नाक जिभ्याके लोलपी की जीभ्याका

छेदन भेदन करते हैं. ताते खारे पाणीसें भरी हुइ 'वे-तरणी' नदींमे न्हलाते हैं. तरवारकी धारसेभी अती तिक्षण पत्र वाले सामली वृक्ष, तले वेठाके हवा चलावे हैं. कुंभी पाकमें पचाते हैं. कसाइयोंकी तरह सरीरके तिल २ जित्ले टूकडे करते हैं. इत्यादि कर्म उदय आते हे. तव सागरो वंध तक रो २ के दुःख भोगवते हैं. छूटने मुशकल होजाते हे. ऐसा ये रोद्रध्यान दोनो भवमें रौद्र (भयंकर) दुःख दाता जाणना.

रौद्रध्यनीके वऊदा कृष्ण लेस्या मय प्रणाम रहते हे. ये हिंशा, झूट, चोरी; मैथुन, परिग्रह ये पंच आश्रव. तथा मिथ्यात्व, अवृत, प्रमाद, कपाय, असुभ जोग ये पंच अश्रव, का सेवने वाला, ज्यूंने कर्मके फल भोगवता अशुद्ध प्रणामके योग्य सें पीछा वैसेही कर्मोका वंध करता हे. यों भवांतरकी श्रेणीमें परिभ्रमण कियाही करता हे. रोद्रध्यानीका संसारसे छुटका होना वहुतही मुशकिल हे. अनंत संसार रूलता हें. इस लिये ये रौद्रध्यान 'हेय,' त्यागने योग्य हें.

---

* चार कोसका उंडा और चौरस कुमप. देव कुरक्षेत्रके जुगलीयोंके वाल अखंड डालनही खटके एंस. वारीक कतरके ठसो ठस भरे और सौमा वर्षमे एकेक रज निकालते वो माफ खाली होजावे. उसे वर्षका एक पल्योपम होता है. और दशकोडा कोडीकुवे खाली होवे. उसे वर्षका एक सागरोपम होता हैं,

अच्छा मालम पडे उसेही अङ्गीकार करे, स्विकारे.

अशुभ ध्यानमें प्रवृती तो विना प्रयास स्वमाविक रीतसेही होती हैं. क्यों कि उसका अनादी सम्बंध है. परंतु शुभध्यानमें प्रवृती होनी बहुतही मुशकिल हैं. क्यों कि कोइभी शुभ कार्य सहजमें नहीं बनता हैं, शुभ ध्यानके लिये अव्वल सम्यक्त्वकी जरूर है, क्यों कि सम्यक्त्वी ही शुभ ध्यानमें प्रवेश करने स्मर्थ होते हैं. इस लिये अव्वल यां सम्क्त्वकी दुर्लभता बतातें हैं.

सम्यग दर्शन उपजता हैं सो, अनादी बासादी मिथ्यात्वीके उपयता है. परन्तु सन्नी-पर्यासा-मंदकषाइ भव्य-गुण दोपके विचारयुक्त सकार उपयागी (ज्ञानी) और जग्रत अवस्था वाला; इन गुणयुक्तको सम्यक दर्शनकी प्रासी होती हैं; परं इनसे उल्टा, असन्नी अप्रर्यासा तीव्रकषायी अभव्य दर्शना उपीयोगी, मोह निद्रासे अचेत और समुर्छिम, इनकों नहीं उपजता हैं; और पंचमी करण लब्धी भी जो उत्कृष्ट करण लब्धी अनिवृती करण, उसके अंत समयमें प्रथम उपशम सम्यक्त्व प्रगट होता हैं,

"पंचलब्धी"

१क्षयोपशमलब्धी, २ विशुद्धलब्धी, ३ देशना लब्धी, ४प्रयोग लब्धी, और ५मी करण लब्धी, इन पंच लब्धीयोंकी यथाक्रम प्राप्ती होणेंसेही, सम्यक दर्शन-की प्राप्ती होती हैं. चार लब्धी तो कदाचित भव्य तथा अभव्य के भी होती हैं. परन्तु करण लब्धी तो जो सम्यक्त्व और चारित्र कों अवस्य प्राप्त होनें वालें हैं उन्हेही होवेंगा.

अब "पंचलब्धीका स्वरूप" बतातें हैं

१ जिस वक्त ऐसा जोग बनें की, जो ज्ञानावर्णि-यादिक अष्ट कर्मकी सर्व अप्रसस्त प्रकृतीकी शक्तीका जो अनुभाग, सो समय २ प्रते अनंत गुण कमी हो-ता, अनुक्रमें उदय आवे; तब क्षयोपशम लब्धीकी प्रा-प्ती होवे. २क्षयोपशम लब्धीके प्रभाव से जीवके साता वेदनिय आदी, शुभ-प्रकृतीके बन्धका कारण, धर्मानुराग रूप, शुभ प्रणामकी प्राप्ती होय, सो दूस-री विशुद्ध लब्धी.* ३ छे द्रव्य नव पदार्थका स्वरूप, आचार्यादिकके उपदेश से पेछाणें, सो देशना लब्धी.+

---

* अशुभ कर्मोका रसोदय घटनेसें क्लेश प्रणाम की हानी होवे. तब विशुद्ध प्रणाम की वृद्धी स्वभावेंही होती हैं.

\+ नर्कादी स्थानमें उपदेशक नहीं हैं वहां. पूर्व जन्मके धारे तत्वके संस्कार से [illegible]

यह तीन लब्धी कर संयुक्त जीव, समय २ विशुद्धता की वृधी कर, आयु विन सात कर्मकी, अंतः कोटा कोटी सागर मात्र स्थिती रहे; उस वक्त जो पूर्व स्थिती थी, उसे एक कांडक घात (छेद) करे उस कांडके द्रव्यकी, शेप रही हुइ स्थिती, विशेप निक्षेपण करे, और घातिक कर्मका, अनुभाग (रस) सो काष्ट तथा लता रूप रहे, परं शैल (प्रवत) स्थिती रूप नहीं. और अघाती कर्मका अनुभाग, नींव या काँजी रूप रहे. परं हलाहल विप रूप नहीं. पूर्वे जो अनुभाग था उसे अनंत का भाग दे, वहुत भाग अनुभागका छेद, शेप रहा अनुभाग विपय प्राप्ती करे हैं. उस कार्य करनेकी योग्यताकी प्राप्ती, सो "प्रयोगता लब्धी"* और भी संक्लेश प्रणाम. सज्ञी पचेन्द्रि पर्याप्ताके जो संभवे, ऐसे उत्कृष्ट स्थिती बन्ध, और उत्कृष्ट स्थिती अनुभाग का सत्व होतें, जीव के प्रथम उपसम सम्यक्त्व नहीं ग्रहण होवे हैं. तथा विशुद्ध क्षपक श्रेणी विपे संभवते, ऐसा जघन्य स्थिती बन्ध, और जघन्य स्थिती अनुभाग प्रदेशका सत्व होतें भी सम्यक्त्व की प्राप्ती नहीं होवें, प्रथम उपशम सम्यक्त्व के सन्मुख हुवा जो

* यह प्रयोगता लब्धी भव्य अभव्यके सामान्य होवे है.

मिथ्या द्रष्टी, सो विशुद्धताकी वृधी कर, वधता हुवा प्रयोग लब्धीके प्रथम समयसें लगाके, पूर्व स्थिती के संख्यातवे भाग, मात्र, अंतः (एक) कोटा कोटी सागर प्रमाण, आयुष्य विन सात कर्मका स्थिती वन्ध करे है; उस अंतः कोटा कोटी सागर स्थिती वन्धके, पल्य के संख्यात वा भाग मात्र कमी होता, स्थिती वन्ध अंतर्मुहूर्त प्रयंत सामान्यता केलिये करे हैं; ऐसे क्रमसे संख्यात स्थिती बंध श्रेणि करप्रथक (७०० तथा ८००) सागर कम होवें हैं. तव दूसरा प्रकृती वन्धाय श्रेणिस्थान होवें, ऐसेही क्रमसें इत्ता स्थिती वन्ध कमी करतें, एकेक स्थान होए. यों वन्धके ३४ * श्रेणी स्थान होतें हैं. इससे लगाके प्रथम उपशम सम्यक्त्व तक बंध नहीं होवें, (यांतक चौथी लब्धी) ५ पांचमी करणलब्धी सो भव्य जीवकेही होती हैं, इसके ३ भेद-१ अधःकरण, २अपूर्व करण, ३अ निवृती करण*. इनमें अल्प अंतर महुर्त प्रमाणे काल तो, अनिवृतीकरणका हें, इससें संख्यात गुणाकाल. अपूर्व करणका; ओंर इससे संख्यात गुणाकाल, अधःप्रवृती करणका होता है,

* इसका विशेष खुलासा लब्धी सार ग्रन्थमें है.

* बरग कपाय की मंदता को कहते हैं.

सो भी अंतर महुर्त प्रमाणें ही हैं.* और भी इस अ-
धः प्रवृती करण कालके विषय, अतीतादी त्रिकाल
वृती अनेक जीव समंधी, इस करणकी विशुद्धता रूप
प्रणाम असंख्यात लोक प्रमाणें हैं, वो प्रणाम अधः
प्रवृती करणके, जितने समय हैं. उत्तेमें सामान वृधी
लिये, समय २ में वृधी होतें हैं, इससे इस करणके
नीचेके समयके प्रणामकी संख्या और विशुद्धता, उप
र के समय वर्ती किसी जीवके प्रणाम सें मिलें हैं, इ-
ससे इसका नाम अधःप्रवृतीक हैं. इस अधः प्रवृति
करण के चार आवश्यक-१समय २ प्रते अनंतगुण वि-
शुद्धता की वृधी. २ स्थिती बंध श्रेणी, अर्थात् पहले
जितने प्रमाण लिये कर्मका स्थिती बन्ध होताथा, उ-
से घटाय २ स्थिती बंध करे. ३ साता वेद निय आ-
दी दे प्रसस्त कर्म प्रकृतीका समय २ अनंतगुण वृद्धी
पाते: गुड, सकर, मिश्री और अमृत, समान चतुस्था-
न लिये अनुभाग बन्ध हे. ५ असाता वेदनीआदी अ-
प्रसस्त कर्म प्रकृती, समय २ अनंतगुण कमी होती नीं
ब, कांजी, समान द्वि स्थान लिये, अनुभाग बंध हो-
ना हे, परन्तु हलाहल जैसा नहीं. यह ४ आवश्यक
जाणने.

* अंतर महुर्त के भेद असंख्य हैं.

२ अधः प्रवृत्ती करणका अंतर मुहूर्त काल व्य-तीत भये. दूसरा अपूर्व करण होता हैं. अधः करणके प्रणाम सें. अपूर्व करणके परिणाम असंख्यात लोक गुणें हैं. सो बहुत जीवोंकी अपेक्षा सें: परन्तु एक जीव की अपेक्षासें तो एक समय में एकही परिणाम होते हैं: और एक जीवकी अपेक्षासें तो. जितने अंतर महुर्त के समय हे, उतनेही होते हैं. ऐसेही अधः करण के भी एक समय में एक परिणाम होवें हे. और बहोत जीवकी अपेक्षासें असंख्य परिणाम जाणनें. अपूर्वकरणकेभी परिणाम समय २सदृश कर वृधमान होते हैं. इस अपूर्व करणके परिणाममें नीचेके समयके परिणाम तुल्य, उपरके समयके प्रणाम नहीं हैं. प्रथम समयकी उत्कृष्ट शुद्धतासें, द्वितीय समयकी जघन्य शुद्धता अनंत गुणी हैं. ऐसे परिणामका अपुर्व पणा हैं. इसलिये इसका अपूर्व करण नाम है.

अपूर्व करणके पहले समय सें लगाके अंतःसमय तक अपनें जघन्यसे अपना उत्कृष्ट; और पूर्व समयके उत्कृष्टसें उत्तर समय के जघन्य. यों कर्मके परिणाम अनंतगुणी विशुद्ध लिये, सर्पकी चालवत् जाणना. ह्यां अनुकृष्टी नहीं हैं. अपूर्व करणके पहले समयसे लगाके जावत् सम्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी, --

पूर्ण काल जो जिस कालमें गुण संक्रमण कर, मिथ्यात्व को सम्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी, रूप प्रगमावें, उस कालके अंत समय पर्यंत. १गुणश्रेणी, २गुणसंक्रमण, ३स्थिती खंड, ४ और अनुभाग खंडन, यह चार आवश्यक होवें. और भी स्थिती बंध श्रेणी है सो अधः करण के प्रथम समय सें लगा. गुण संक्रमण पूर्ण होनेके कालपर्यंत होवें हैं. यद्यपी प्रयोग लब्धीसे ही स्थिती बन्धाके श्रेणी होती है, तथापी प्रयोग लब्धीसे सम्यक्त्व होनेका अनवस्थित पना है, यह नियम नहीं: इसलिये ग्रहण नहीं किया. और भी स्थिती बन्ध श्रेणीका काल, और स्थिती कांड-कान्डोत्करणका काल यह दोनों सामान अंतर मुहुर्त मात्र हैं. वहां पूर्व बंधाथा ऐसा सत्तामें कर्म परमाणु रूप द्रव्य उसमेंसें निकाले, जो द्रव्य गुण श्रेणीमें दीये, उस गुण श्रेणीके कालमें समय २ में असंख्यात गुणा अनुक्रम लिये पंक्ती बंध जो निर्जरा का होना, सो गुण श्रेणी निर्जरा हैं. २और भी समय २ प्रते गुणाकारका अनुक्रम ते विविक्षित प्रकृती के प्रमाणु पलट कर,अन्य प्रकृती रूप होके प्रणमें सो गुण संक्रमण. ३पूर्व बन्धीथी वो सत्ता में रही कर्म प्रकृतीकी स्थितीका घटाना सो स्थिती खन्ड हैं. ४और पूर्व बन्धे थे, ऐसे सत्तामें रहा

हुवा अशुभ प्रकृतीका अनुभाग घटाना, सो अनुभाग खन्डन. ऐसे चार कार्य अपूर्व करणमें अवश्य होतेहैं.

अपूर्व करणके प्रथम समय सम्बन्धी, प्रसस्त अप्रसस्त प्रकृतीका जो अनुभाग सत्व हैं. उससे उसके अंत समय विषे. प्रसस्त प्रकृतीका अनंतगुण वृधी होता, और अप्रसस्त प्रकृतीका अनंतगुण कमी होता, अनुभाग सत्व होते हैं: सो समय २ प्रती अनंतगुण विशुद्धता होनेसे, प्रसस्त प्रकृतीका अनंत गुणा अनुभाग कान्डका महातम कर, अप्रसस्त प्रकृतीके अनंतमें भाग अंत समयमें संभवता है.*

ऐसे अपूर्व कर्ण विषय कहे. जो स्थिती कान्डादी कार्य, सो विशेष तो तीसरे अनिवृती करण विषय जाणना. विशेष इत्ना. यहां समान समय वर्ती अनेक जीवके सदृस प्रणामही है. इस लिये जित्ने अनिवृती करणके अंतर महुर्तके समय हैं, उत्नेही अनिवृती करणके प्रणाम हैं. इनसे समय २ प्रते. एकेकही प्रणाम हैं. और जो यहां स्थिती खन्डन, अनुभाग खन्डादिकका प्रारंभ औरही प्रमाणे लिया होता है. सो अपूर्व करण सम्बंधी जो स्थिती खंडादिक उ-

* इन स्थिती खन्डादी होनेका विशेष अर्थ शास्त्रों है परन्तु यहां ग्रन्थ गौरवके लिये नहीं लिखा.

सके अंतः समयही समाप्त पना हुवा.*

यहां यह प्रयोजन है की जो अनिवृती क-रणके अंत समय विषे, दर्शन मोहनी और अन्तान वन्धी चतुष्क, इनकी प्रकृती स्थिती, प्रदेश, अनुभाग, का समस्त पने उदय होनेंकी. अयोग्यता रुप उपसम होनेसे, तत्वार्थकी श्रधान रुप सम्यक्त्व होता है वोही उपशमिक सम्यक्त्व है.

यह भाव चोथे गुणस्थान वर्ति जीवके जाणना, यों आगे अप्रत्याख्यानी चतुष्कका उपशम होनेसे, इच्छा निरुंधन, अल्पारंभ, अल्प परिग्रह, शुद्धवृती, संवेगी, कल्प उग्रह विहारी, उदासीनतादी गुणोंकी अधिकता होती हैं, आगे प्रत्याख्यानीके चतुष्कका उपशम होनेसे, साधुत्व, संयमत्व, तपस्वी, समिती गुप्ती, परम वैराग्यतादी गुणोंकी वृधी होने, शुभ ध्यान करनेकी योग्यताको प्राप्त होना हैं.

अन्तान वन्धीके उपशमसे अप्रत्याख्यानीवाले, अप्रत्याख्यानीके उपशमसे प्रत्याख्यानीवाले, प्रत्याख्यानीके उपशमसे संज्वल कषायके चतुष्क उपशमवाले. और इस अकराइ्यानके मार्गमें अधिक २ विशुद्धता गच्छता, प्राप्त करने आगे बढे हैं.

* यह अंश दसम विरक्त गुणाना कर्ता सार ग्रंथमें भन्या ?

यह सम्यक्त्वी, देशवृती, और सर्ववृती, कर्मो के उपशम क्षयोपशम, व क्षायकताके योग्यसे निश्चय में प्रवृती करसक्ते हैं. और इन सिवाय ज्ञानारणव ग्रन्थमें ध्यानीके ८ लक्षण कहे हैं—

श्लोक — मुमुक्षुर्जन्म निर्विण्णः शान्तचितोवशीस्थिरः;
जिताक्ष संवृतोधीरो, ध्याता शास्त्रेप्रशस्यते.

अर्थ १ मुमुक्षु आर्थत् मोक्ष जाने की जिसे अभीलाषा होवेंगा वोही ध्यानका कष्ट सहेगा; आत्म निग्रह करेगा. २ विरक्त-जिनका पुग्दल प्रणित सुखोंसे वृती निर्वृती है. उन्हींके प्रणाम ध्यानमें स्थिरता करेंगे, ३ शांतवृती-जो परिसह उपसर्ग उपनेशांत प्रणाम रखेंगे, वोही ध्यानका यथातथ्य फल प्राप्त कर सकेंगे, ४ स्थिरस्वभावी जो मनादी योगोका कुमार्ग से निग्रह कर, ध्यानमें वृतीको स्थिर करेंगे, वोही ध्यानी हो सकेंगे, ५ स्थिरासनी जिसस्थान ध्यानस्थ हो, वहांसे चल विचल न करे; व ध्यानके कालतक आसन बदलें नहीं; वोही सिद्धासनी कहे जाते है. जितेंद्रिय श्रोतादी पंच इंद्रिययोंको, शब्दादी पंचविपयसें, रागद्वेषकी निर्वृती कर, धर्म मार्गमें संलग्न करेंगे, वोही ध्यान सिद्धीको प्राप्त होवेंगे ७ संवृतातमा जिन्हने अपणी अंतर आत्मको संवृत कर, हिंशादी पंचाश्रा-

पसे निर्धारी, अहिंसादी पंचमहाव्रत स्विकार किये. तथा अनादी प्रणति रूप संसर्ग कर. जो अंतःकरणकी वृतीकों विकार मार्गमें प्रावृती कराती हैं, उन वृतीयोंको अंतरिक ज्ञान, आत्माकी प्रबल प्रेरणा कर निर्धुताइ, स्वान पानकी० लोलुपता त्यागी, वोही ध्यान सिद्धी कर सकेंगे. ८ धीर होय—अर्थात् ध्यानस्त हुये फिर, कैसाभी कठिण परिसह उपसर्ग आनेसे, बिलकुल प्रणामोंको चल विचल नहीं करे. क्यों की ध्यानमें परवेश करते पहले "अप्पाणं वोसी रामी" अर्थात् में इस सरीरकों वोसिराता हूं. इसकी ममत्व छोडता हूं. यह सरीर मेरा नहीं, मैं इसका नहीं, ऐसा कहके बेठते हैं; तो जब यह सरीर अपनाही नहीं, तो फिर इसका भक्षण करो, दहन करो, या छेदन भेदन करो, कुछभी करो, अपनको क्या फिकर. ऐसा निश्चय होय, तबही ध्यानकी सिद्धीको प्राप्त हो सका

* एकदम स्वुल्ल पडनी मुशकिल है. इस लिये थोडी थोडी खुल्ला पडनेका सदा अभ्यास रखना चाहीये, जैसे पट वस्तु नहीं छोडता थया थाट वस्त्र नहीं पहरा तो थया पर काम अकारजे तो मुशकिल लगता परंतु फिर सहज हो जाता यों सर्व वस्तु उपरसे खुल्ला पडनेही यह बहुत सहजकी रीती है. यों करनेसे कोइ वक्त निर्दमादपनाको प्राप्त होसक्ते है.

हे. ध्यान किया सो कर्मका क्षय करने किया, और कर्मका क्षयतो विना उपसर्ग, विना दुःख देखे नहीं होता हे. जो परिसह उपसर्ग पडेहे, वो, कर्मका क्षय करनेही पडे हे. ऐसे कर्ज चुकाती वक्त, पीछा नहींजहटना. ऐसा द्रढ निश्चयसें धैर्य धारणसेही ध्यान सिद्ध होता हें. इन आठगुणोंके धारण हारही ध्यान सिद्धीको प्राप्त होतें हें, एसा जाण शुभध्यान करनेवाले मुमुक्षु जनोंकों पहले अष्टगुण क्रमसे अभ्याससे प्राप्त करने चाहीये.

द्वितीय उपशाखा-"शुभध्यान विधी."

क्षेत्र द्रव्य काल भाव यह. शुभाशुभ यवनु जान; अशुभ तजी शुभ आदरी, ध्या ध्याना धर्म ध्यान.

१ क्षेत्र. २ द्रव्य. ३ काल. और ४ भाव. यह ४ शुभ अच्छे: और ४ अशुद्ध. खोटे. यों ८ भेद होते हें. जिनमेंसे ४ अशुद्धको त्याग कर. शुद्धका जोग मिलाके. हें! ध्यान ध्याताओं शुद्ध-धर्मध्यान ध्यावो.

कोइभी काम यथाविधी करनेसे इष्टितार्थ की-

म सिद्ध करता हैं. इस लिये द्यां मोक्ष प्राप्त रूप कार्यकी सिद्धी करनेवाला ध्यान हैं. उसके करनेकी विधीका वर्णव करते हैं.

ध्यानमें मनको स्थिर करने क्षेत्र. द्रव्य. काल. भावकी शुद्धीकी बहुतही जरूर हैं. अव्वल क्षेत्रकी शुद्धाशुद्धी बताते हैं.

प्रथम पत्र "क्षेत्र"

१ 'अशुद्ध क्षेत्र'–दुष्टराजाकी मालकीका क्षेत्र, अधर्मी, पखंडी, म्लेछ, कुलिंगी रहते होये; ऐसे क्षेत्रमें रहनेंसे उपसर्ग उपजनेका संभव हैं. जहां पुष्प, फल, पत्र, धूप, दीप. या मदिरा, मांस, ऐसे स्थानमें मन चंचल होनेका संभव हैं. जहां विभचारी स्त्री पुरुष क्रिडा करें, चित्राम किये होवें. काम क्रिडाके शास्त्रों का पठन होता होय. नृत्य, गायन, होते होय. वाजित्र वजते होय. ऐसे स्थानमें, वीकार उत्पन्न होनेका संभव हैं. जहां युद्ध–मल कुस्तीयां लडाइ झगडे होतें होय. झगडेके शास्त्र पडते होय. पंचायती करतें होय, वहां विखवाद होनेका संभव हैं. जहां अन्यके प्रवेश करनेकी मालिकादिकने मना करी होय, वहां रहनेंसे चोरी, क्लेश, और मध्यमें निकालनेका संभवहे. जहां

जुवा खेलते होय, कैदी रहते होय, मद्य मांस (दारू) विकता होय, पारधी रहता होय, लिल्पिक (कारीगर चमार, सोनार, लोहार, रंगारे, इत्यादी) रहते होय. वहां चित्तविग्रह होनेका संभव है. जहां नपुशक. पशू (तिर्यंच) कुलंछनी. भांड. नट. खट. इत्यादि अयोग्य रहते होय. वहां. अप्रतीत होनेका संभव हैं. इत्यादि अयोग्य स्थान वर्जके ध्यान करे.

२ 'शुभ क्षेत्र'=निर्जन स्थान-जहां विशेष मनुष्यादीकी वस्तीया. आवा गमन न होय. समुद्रके, तथा नदीके तट (किनारे) पर. वृक्षोके समोहमें,* वेलीके मंडपेमें. प्रवतोकी गुफामें. स्मशाणोंकी छत्रीयोंमें, सूखे झाडकी कोचरमें, शुन्य ग्राम या शुन्य गृह (घर) में. वरोक्त (जो अशुद्ध क्षेत्रमें कही उन) वावतोंसे वर्जित, देवालयमें. इत्यादि स्थान फ्रासुक (निर्जीव) होय, वहां ध्यान करने योग्य स्थान हैं. चित्तमें समाधी (शांती) रहती हैं.

द्वितीय पत्र-"द्रव्य."

३ 'अशुभ द्रव्य'-जहां अस्थि, मांस, रक्त, चर्म

---

* अकोव मंडवंनि झायइ झोवियासवे-उत्तराध्ययन१८ अर्थ-अफाव (नागरवेल) के मंडपमें ध्यान करते हैं. आश्रवको रुपाक.

मेंद, चरबी, और मृत्यूक जानवरोंके कलेवर, खान, पान, पक्कान, तंबोल, औषधीयों, अतरादी तेल, शेय्या (प. लंगादी),आसन,स्त्री पुरुषके शृंगारके वस्त्र, भुषण. कामासन, स्त्रीयादीके चित्र, इत्यादी द्रव्य होय, वहां ध्यानीयोंका चित्त स्थिर रहना. मनका निग्रह (वस) होना मुशकिल हैं.

४'शुभद्रव्य-शुद्ध' निर्जिव पृथवी-शिलापटपे. काष्टासन=पाट बजोट (चौकी) पें. पारलके आसनपे उन, सूत, आदी शुद्ध वस्त्रपें ध्यानस्त होनेसे प्रणाम स्थिर रहनेका संभव है. ध्यान इच्छककों अहार थोडाकर सो भी हलका [तांदुलादी] विशेष घृत मासालेसे वनार्जित, शीतादी कालमें, प्रकृतीयोंको अनुकूल [सुखदाता] वक्तके, और वजनके, प्रमाणयूक्त; निर्जिव, और निर्दोष, शुद्ध, करनेसें चितको स्थिर रख शक्ते हैं.

ध्यान इच्छककों-आसन; मुख्यतां पद्मासन [पालखी घाल दोनो सायलेंपें दोनों पग चडा दोनों हाथ एकस्थान पिकमे कमलके समकर, पेटके पास नीचे रखके स्थिर होय] पर्यांकासन [पालखी घाल बेठे] दंडासन [खडेरहे] ये तीन हैं. और तो वीरासन, खगडासन, अम्बखुजासन, गोदूआसन, वगैरेसे इस व-

तीन अंगलीयों [तर्जनी, मध्यमा, अनासिक*] के नव वेड़े (सन्धरेखा) कों चारे वक्त गिणनेसे १२÷९=१०८ एकसो आठ होते हैं. सोही उत्तम हैं.‡ और माला तो-मध्यम तथा कनिष्ट गिनते हैं. ध्यानीकों ध्यानमें स्थिर होते, नशाग्रद्रष्टी मेखोन मेख स्थिर कर. चित्रकी मूर्तीके जैसा स्थिर हों, निश्चल हो. मुख फाडको ढीली छोड, चितको सर्व व्याधी सर्व विकल्पसे मुक्त करवेटनेसे, ध्यानकी सिद्धी शुल्लभतासे होनेका संभव हैं.

तृतिय पत्र-"काल"

५ 'अशुभ काल'-† पहला, दूसर', और तीसरा आरा, माठेरा, (कुछकमी) तथा छट्टा आरा, इन में धर्मीजनोंके अभावसें ध्यान होनेका कम संभव हैं. और भी अती उष्ण काल, अती शीत काल. अती जीवोत्पतीका काल. दुकाल. विग्रह काल. रोगग्रस्त काल, इत्यादी काल ध्यानमें विग्रह करनेवाले गिणे जाते हैं.

६ 'शुभ काल'-ध्यानके लिये सर्वोत्तम काल

* कानष्टा (छोटी अंगुली) और अंगुष्ट छोडके.

‡ इसेही नोकरवाली कहते हैं. नकी सूतादीकी.

† ये तीन आरा ध्यान साधनेके लिये ही अशुद्ध है, और तरह नहीं समजना.

तो चौथा आरा गिणा जाता है. क्यों की उसमें वज्र ऋषभनाराचादी संघन और ध्यान करनेके अनुकुल जो गवाइयोंकी विशेषता थी. जिससें महान (मरणांतिक) संकट सहन करती, अडोल (स्थिर) रहतेथे. इस पंचम कालमें संघणादिककी न्युनतासें, उस मुजब ध्यान हो नहीं सकता है. तो भी सर्वथा नास्ती नहीं समजना, क्यों कि गुण कारक वस्तु तो हमेशा गुणही करती है: चौथे आरेमे सक्करमें ज्यादा मिठास होगा, और अभी काल प्रभावसे कमी पडगया होगा. तो भी सक्कर तो मीठीही लगेगी. ऐसेही इस कालमें भी यथा विधी किया हुवा ध्यान, गुणकर्ताही होगा. और भी ध्यान कर्ता पुरुष शीत उष्णादी कालमें अपनी प्रकृतीके अनुकुल समय विचारे. श्री उत्तराध्येयजी सूत्रमें तो "बीये ध्यान धीया इह" ऐसा फरमाया है, अर्थात् दिनकी और रात्रीकी दूसरी पौरसी (प्रहर) में ध्यान धरे, और कितनेक ग्रन्थोंमें पिछली रात्री (रात्री.का चौथा प्रहर.) ध्यानके लिये उत्तम किया है.

यह द्रव्य क्षेत्र और कालके विधी विवक्षा अर्थात् शुभ शुभका विचार, वगैरः, अपूर्ण ज्ञानी और अस्थिर चित्तवालोंके लिये है. पूर्ण ज्ञानी और अडोल [illegible] वालेको तिनहि दिन निर्धाकारी होगया है:

उन्हे तो सर्व क्षेत्र-द्रव्य-काल अनुकूलही होता हैं.

चतुर्थ पत्र–"भाव"

७ 'अशुद्ध-भाव' अशुभ या अशुद्ध भावका वरणव, आर्त और रौद्रध्यानमें बताया वोही समजना विषय, कषाय, आश्रव, अशुभयोग, असमाधी, चपलता, विकलता, अधैर्यता, नास्तिकता, कठोरता, राग द्वेष रूप प्रणाति. वगैरे सर्व अशुभ जोग गिणे गये हैं. इन से भावोंकी मलीनता होती हैं.

८ शुभ, भाव, ४ प्रकारके हैं. सो—

मैत्री प्रमोद्कारुण्य, मध्यस्थानि नियोजयेत्
धर्मध्याने मुपरकर्तुं, ताद्धितस्यरसायनं १

अर्थ–१ 'मैत्री भाव' २ प्रमोद्भाव, ३ करुणा भाव, ४ और मध्यस्तभाव, इन चारोंही भाव संयुक्त होनेसें, धर्म ध्यानकी रासायन (हूवहू–स्वाद) पैदा होती हैं.

१ मैत्री भाव–"मितिमें सव्व भूएसु, वेर मझं न केणइ" अर्थात्–सर्व जीव मेरे मित्र (दोस्त) हैं,

---

सूत्र—मैत्री करूणा मुदिता पेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विपयाणां भावना तश्चित प्रसादनम. ३३ योगदर्शन.

अर्थ–सुखी प्राणीयोंसे मित्रता, दुःखीमे दया, धर्मात्मोंपे हर्ष, और पापीयोंपे मध्यस्त वृती. इस तरै वृतनेसे चित प्रसन्न रहता हैं.

इस लिये मेरा किसीके साथ भी किंचित मात्र वैर विरोध नहीं हैं. इस जगत् वासी सब जीवोंके साथ अपने जीवने, माता-पिता-स्त्री-पुत्र-बन्धू-भगीयादि जितने सम्बंध हैं. वो सब एकेक जीवके साथ अनंत २ वक्त कर आया है. श्री भगवतीजी तथा जंबूद्विप प्रज्ञप्तीमे, फरमाया है-की- "अनंत खुत्तो" अर्थात संसारमें इस जीवने, अनंत जन्म रमण कर, सर्व जगत् फरसा है. इस अनुसारसे, जगत् वासी सब जीव अपणे मित्र हैं; इस लिये जैसे इस भवके कुटुम्बपे प्रेम रहता हैं, वैसाही सब जीवोंके साथ रखे. सुक्ष्म (द्रष्टी न आवे सो) बादर (दिखे सो) त्रस (हले चले सो) स्थावर (स्थिर रहे सो) इन सब प्रकारके जीवोंको अपणी आत्मा समान जाणे.* सबको सुखी चहावे सो मैत्री भाव.

२ प्रमोद भाव इस जगतमें अनेक सत्पुरुष अनेक २ गुणके धरने वाले हैं. कितनेक ज्ञानके सागर हैं. बहोत सूत्रोंके पाठी (पढे हुये) महादेशनी कर, जिनागम की रेच श्रोता गणोंके हृदयमें

* यथा आत्मान प्रियप्राण, तथा तस्यापी देहीनां

इति मत्वन कृतव्यं, घोर प्राणी वधो बुदः

अर्थ—जैसे अपने प्राण अपनको प्रिय है वेसेही सारी ही प्राणके प्रिय सो जाणिको वध नहीं करें वोही बुद्धीवान.

ठसानें वाले, सिधान्तकी सन्धी मिलाने वाले, तर्क वितर्क कर गहन विषयको सरल कर, बताने वाले, नय निक्षेपे प्रमाणादी न्यायके पारगामी, कुतर्कीयोंका शांतपणें समाधान करनें वाले. असर कारक सद्बोधसे, धर्मकी उन्नतीके कर्ता, चमत्कारिक कवीत्व शक्ती, व वक्तृत्व शक्तीके धारक, ऐसे २ अनेक ज्ञान गुणके धारक हैं. कित्नेक, शांत, दांत, स्वभावी; आत्मध्यानी, गुणग्राही, अल्पभाषी, स्थिरासनी, गुणानुरागी, सदा धर्म रूप आराम (बाग) में, अपणी आत्माके रमाने वाले हैं; कित्नेक महान तपस्वी, मासक्षमनादी जब्बर २ तपके करनेवाले, उपवास आयंबिलादी करनेवाले, षट्रसके, विगयके, त्यागी, एक दो द्रव्यपेही निर्वाह करनेवाले. शीत, ताप, लोच, आदीकाया क्लेस तपके करनेवाले हैं. कित्नेककी ज्ञानाभ्यास की और तपश्चर्या करनेकी शक्ती नहीं हैं तो, स्वधर्मीयोंकी भक्ती करते हैं. अहार, वस्त्र, शैयासन, आदी प्रतीलाभ साता उपजाते हैं. कित्नेक ग्रस्थ तन मन धनसे चारही तीर्थकी भक्तीके करनेवाले. धर्मकी उन्नतीके करने वाले. प्राप्त हुये पदार्थ को लेखे लगानेवाले है. ऐसे२उत्तमोत्तम अनेक गुणज्ञोके दर्शन कर, परसंस्या श्रवण कर खुशी होवे. धन्यभाग्य हैं. की हमारे धर्ममें ऐसे

नर रत्न उत्पन्न हो धर्मदीपाते हैं. यह महा पुरूषों सदा जयवंत रहो. ऐसा विचार, उन्का सत्कार सन्मान करे. साता उपजावें. दूसरे को उनकी भक्ती करते देख, हर्ष पावे; सो प्रमोद भावना.

३ 'करूणा भाव'- जगतूवासी जीव कर्माधीन हो अनेक कष्ट पाते हैं. किल्नेक अंतराय कर्मकी प्रबलतासे, हीन, दीन, दुःखी होरहें हैं. खान, पान, वस्त्र, गृह, करके रहित हो रहे हैं, किल्नेक वेदनी कर्मकी वृधी होनेसे, कुष्टादि अनेक रोगों करके पिडित हो रहे हैं. किल्नेक काष्ट-खोडा बेंडी आदी बंधनमें पडे हैं, किल्नेके शत्रूओंके तावेमें पडे हैं, किल्नेक शीत, ताप, क्षुद्या. तृषादी अनेक विपति भोगवते हैं. किल्नेक अन्धे, लूले, लंगडे,वधीर, मुके, गुंगे, आदी अंगोपांग रहित हो रहे हैं, किल्नेक पशू, पक्षी, जलचर, बनचर, हो प्राधीनता भोगवते हैं: वध, बंधन, ताडन, तर्जना सहन करते हैं, हिंशकोंके हाथ कटते हैं. इत्यादि अनेक जीव, अनेक तरहकी विपति (दुःख) भोगवते हुये; सुखके लिये तरसते हैं. हमें कोइ सुखी करो! जीवत्व दान देवो! दुःख, संकटसे उगारो! वगैरे दीन दयामणी प्रार्थना करते हैं. उन्हेदेख दुःखीहोय. करुणा लावे और उनको उस दुःखसे छोडाने, यथा शक्त, यथा

योग्य प्रयत्न उपाय करे, उन्हे सुखी करे तो करुणा भावना.

४ 'मध्यस्त भाव'-इस विश्वमें कितनेक भारी कर्मी पापिष्ट जीव सद्गुण, सद्कर्मको त्याग, खोटेको स्विकार करते हैं. सदा क्रोधमें संतप्त, मानमें अकडे हुये, मायासे भरे हुये, लोभमें तत्पर रहते हैं. निर्दयतासे. अनाथ प्राणियोंका कष्टा करते हैं. मदिरा, मांस कंदमूलआदी अभक्षका भक्षण करते हैं. असत्य, चोरी, मैथुनमें पटुता (चतुरता) वताते हैं. विषय लंपट वैश्या, पर स्त्री गमनमें आनंद मानें, जुगारा (जुवा) दी दुर्व्यसनमें लुब्ध अष्टादश पापोमें अनुरक्त, देव, गुरु, धर्मके, निमित्त हिंसा करने वाले, हिंसामें धर्म माननेवाले, कूदेव, कूगुरु, कूधर्मकी प्रतिष्टा वडाने वाले, अच्छेकी निंदा करनेवाले, अपनी २ परशंस्यामें मग्न. इत्यादी पापी जीवोंको देख, राग द्वेष रहित, मध्यस्त प्रणामसे विचार करे की, आहा! देखो इन बेचारे जीवोंकी कैसी विषम कर्म गती हैं: अत्यंत कष्ट चार गती रूप संसारमें भ्रमन करते २, अनंत कष्टसे मुक्त (छुटका) करनेवाली अनंतानंत पुन्योदयसे, मनुष्य जन्मादी उत्तमोत्तम सामग्रीयों प्राप्त हुइ हैं. इसे. व्यर्थ गमाते हैं? कुमार्गमें लगाते हैं! सुखकी इच्छासे दु

र्जन करते हैं. कंकरकी खरीदमें चिंतामणी रत्न, और विषकी खरीदमें अमृत देते हैं, सुधार्के स्थान बीगाडा करते हैं, हे प्रभु ? इन बेचारे अनाथ पामर जीवोंकी इन कुकृतव्यके फल भोगवते, क्या दिशा होयगी? कैसी वींटंवणा पायंगे! तब कैसे पश्चाताप करेंगे? परन्तु इन बेचारे जीवोंका क्या दोष हैं, यह तो सब काम अच्छेके लियेही करते हैं, सुखके लियेही खपते हैं, परन्तु इनके अशुभ कर्म इनको सद्बुद्धी उपजनें नहीं देते है. जैसा २ जिनका भव्य तव्य (होनहार) होय, वैसा २ही बनाव बनारहता है. इत्यादी विचार मध्यस्त पणे उपेक्षा=उदासीनतासें करे सो मध्यस्त भावना.

इन चारही भावनाकों भावते(विचारते) हुये ओर इसमें कहे मुजब प्रवृतते हुये जीव, राग, द्वेष, विषय, कषाय, क्लेश, मोहादी शत्रओंका नाश करने सामर्थ (शक्तवंत) होते हैं. यह भावना भावनेवालेके हृदयमें, उक्त शत्रुकों प्रवेश करनेका अवकाश (फुरसत) हीं नहीं मिलशक्ता है*

---

* योग दर्शन ग्रन्थमें पतन्जली ऋषिने योगके ८ अंग कहे हैं. ' यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयो ऽष्टावङ्गानि " १ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारण. ७ ध्यान, और ८ समाधी.

शुभध्यानस्य "फलं."

इस विधीसें किया हुवा ध्यान इस जीवोंको मोक्ष पंथ लगानें वाला है, हृदयके ज्ञान दीपकको प्रदिप्त करने वाला हैं, अतिंद्रीय-मोक्षके सुखको प्राप्त करने वाला हैं. यों ध्यानमें प्रवेश करनेसे ही, अध्यात्म-

---

१ "अहिंसा सत्यास्तेय ब्रम्हचर्या परिग्रहा यमाः

अर्थ—यम के ५ प्रकार किये हैं. १ अहिंसा=सर्व प्राणीयोंके साथ वैर (शत्रूता) और वध (घात) से निवृते जिससे सर्वकेसाथ मैत्रीता होवे. (२) 'सत्य'=मन और इन्द्रियोंसे जैसा जाननें में आवे वैसा बोले. परंतु दुःखदाई न बोले. जिससे वचन सिद्ध होवें. (३) 'अस्तेय'=दूसरेकी वस्तु बिन आज्ञा अनुचित रीतसे गुप्त ग्रहन न करे जिससे सर्व इच्छित मिले. (४) 'ब्रह्मचर्य'=कामका उदय न होवें ऐसा आचरण रखे जिससे शरीरका और बुद्धीका बल बढे. (५) 'अपरिग्रह'=किसीभी वस्तुमें राग (प्रेम) द्वेष न करे. जिससे जन्मांतरका शीघ्रलका ज्ञान प्राप्त हो.

२ "शौच संतोष तपस्स्वाध्यायेश्वर प्रणि धनानि नियमाः"

अर्थ—नियमकेभी ५ प्रकार हैं (१) शौच'=बाह्यमें तो मात

---

* श्लोक—सत्य शौचं तप शौच शौचं इन्द्री निग्रह,
सर्व भूत दया शौचं जल, शौचंतु पंचमः॥
अर्थ—सत्य बोलनेसे, तप करनेसे, इन्द्री निग्रहसे, प्राणीयोंकी दया से और जल (पानी) से शुची होती है.

दिशा शांतीकी प्राप्ती होती है. इन्द्रीयोंके विषय उसके चितकों अकर्पण कर सक्ते नहीं है. मोह निद्रा स्वभाव से समय २ नष्ट होती, सर्व क्षय जाती है. और ध्यान निद्रा (समाधी)की प्राप्ती होती है. इस तरेसे

दुर्गंधी व अशुची से निवृते, और अभ्यंतरे* छे रिपुको अलग रखे, जिससे संसर्गी को घृणा न होवे और अभ्यंतर शुचीसे मन निर्मल होवे (२) संतोष=प्राण रक्षण के लिये अन्न वस्त्रादी जो आवश्यक है उनसे अधिक इच्छा न करे. जिससे निर्दोष सुखी होवे. (३) 'तप'=क्षुधा तृषा, शीत, उष्णादी सहे धर्माचरण सद्गुण आचरण करे, जिससे ऋद्धी सिद्धीकी प्राप्ती होवे (४) 'स्वाध्याय'=शास्त्र पठन या प्रणव (ॐ) का जप करे, जिससे इष्ट देव प्रसन्न हो इच्छित कार्य करें (५) 'प्रणिधान'=इश्वरमें सब भाव समर्पण कर जिससे समाधी भावको प्राप्त होवे.

(३) 'स्थिर सुख मासनम्'=जिस आसनसे सुख हो व शरीर और मन स्थिर रहे वोही आसन श्रेष्ट है, जिससे चितकी एकाग्रता हो. (४) 'तस्मिन्सति श्वास प्रश्वास योर्गति विच्छेदः प्राणायाम'=श्वास और उश्वास को रोकना सो प्राणायाम; इससे आयुष्यकी वृधी होती है ज्ञानका आवरण दूर हो, आतम जोती

श्लोक–अशुची करुणा हीनं, अशुची नित मैथुन,
अशुची पद्रव्यो पू अशुची परनिंदा मतेत्.
अर्थ–दया रहित, नित्य मैथुन सेवने वाले, चोरी करने वाले,
और निंदक सदा अशुद्ध अशुची है.

* काम क्रोध मद मोह लोभ मत्सर, इनको हृदयमें प्रवेश नहीं करने दे

शुद्ध ध्यानमें प्रवृतते जीवको महा प्राक्रम प्रगटता है. वितराग दिशाको प्राप्त होता है. उसवक्त ध्याताको सुखी सुखका अनुभव यांही (इस लोकमें) होने लगता है. ऐसी प्रबल शक्तिके धारन करनें वाला ये विर्षी युक्त ध्यान हैं.

यह क्षेत्रादी ८ प्रकारके शुद्धाशुद्ध ध्यान साधनोंमेंसे अशुद्धको त्याग शुद्धको ग्रहनें वाले ध्यान ध्यानेकी योग्यताको प्राप्त हो सकेंगे.

[illegible] होती है. (५) 'स्वविषया ऽसंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः' = इन्द्रियें शब्दादी विषयों जो साधारन चित्तको खेंचता है. उनका निरोधन कर ध्येय पदार्थमें स्थिर करे सो प्रत्याहार, इससे मन स्वाधीन स्वतंत्र हो जाता है. (६) 'देशबंधश्चित्तस्य धारणा' = फिरते हुवे चित्त (मन) को रोक रहके एकाग्रता करे सो धारणा. (७) 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानं' = धारणा के पश्चात ध्यान होता है. जिसकी धारणा करी उसमें अखंड-अविच्छिन्न रहे सो ध्यान. (८) 'तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शून्य मिव समाधिः' = ध्यान पीछे समाधी होती है. समाधि में भान भूल जाते है [illegible] [illegible] [illegible] होती है.

---

* [illegible]

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्र-
दायके बालब्रम्हचारी मुनी श्री अमोलख ऋषि
जी रचित ध्यानकल्पतरू की शुभध्यान
नामे उपशाखा समाप्तं.

तृतीयशाखा-"धर्मध्यान"

धम्मे झाणे चउव्विहे
चउप्पडयागे पन्नंत तंजहा.

अर्थ—धर्म ध्यानके चार पाये, चार लक्षण. चार आलंबन, और चार अनुप्रेक्षा. यों १६ भेद श्री भगवंतनें फरमाये हैं. सो जैसे हैं वैसे ह्यां कहते हैं.

जैसे पहले अशुभ ध्यानके दो भेद (आर्तध्यान और रौद्रध्यान) किये, तैसे शुभध्यान के भी दोही भेद जाणना. १ धर्मध्यान और २ शुक्लध्यान, इनका वर्णन अब आगे चलेगा.

पहले उपशाखामें शुभध्यान करने की विधी बताइ. अब ह्यां ध्यानस्त हुवे पीछे, अच्छा जो विचार करना सो कहते हैं. अच्छे विचार दो तरह से होते हैं. १ एकांत कर्मोंकी निर्जरा कर, सर्व कर्मोंको नष्ट कर, मोक्ष रूप फलका देने वाला, उसे शुक्लध्यान कहते हैं.

इसका बयान आगे किया जायगा. और २ जो विशेष अशूभ कर्मका नाश करने वाला. तथा किंचित शुभ कर्म का भी नाश करने वाला. निर्जरा और पुन्य प्रकृतीका उपराजन करे सो धर्म ध्यान, इसका वरणन यहां करता हूं.

प्रथम प्रतिशाखा-धर्मध्यानके 'पाये'

सूत्र—आणा विजय, आवाय वीजय,
विवाग वीजय, संठाण वीजय.

अर्थ—धर्म ध्यान के चार पाये, १ आज्ञा विचय, २ अपाय विचय. ३ विपाक विचय, और ४ संठाण विचय.

जैसे तरु (वृक्ष) की चिरस्थाइ के लिये. पाया (जड) की मजबुताइ की जरुर हैं. तैसे ही ध्यानको स्थिर करने के लिये, चार प्रकारके विचार करते हैं. १ श्री भगवंत ने इस जीवके उद्धारके लिये, हेय (छोडने योग्य) ज्ञेय (जाणने योग्य) और उपादेय (आदरने योग्य) क्या क्या हुकम फरमाया; उसका विचार करे सो आज्ञा विचय धर्मध्यान. २ यह जीव अनंत कालसें क्यों दुःखी है, यह दुःख दूर कायसे होते हैं? ऐसा विचार करना, सो अपाय विचय धर्म-

ध्यान. ३ कर्म क्या हैं कैसे उत्पन्न होते हैं और क्या क्या फल देते हैं? यह विचार करेसो विपाक विचय धर्म ध्यान. और ४जिस जगत् में. इस जीवको परिभ्रमण करते अनंत काल वितिक्रंत होगया. उस जगत का कैसा आकार है. यह विचार करेसो संठाण विचय धर्म ध्यान,

इन चारहीका विस्तार से वर्णन आगे कहते है.

प्रथम पत्र 'आज्ञा विचय'

"आज्ञा विचय" धर्म ध्यानके ध्याता ऐसा ध्येय (विचार) करेकी, इस विश्वमें रहे हुये, बहोतसें जीव आत्म कल्याण की इच्छा करते हैं. वो आत्म कल्याण एक श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञामें, प्रवृत ने (चलने) से ही होता हैं. श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञामेंही रहके साधू श्रावक जो करणी करतें है, वो करणी ही आत्म कल्याणकि करने वाली हैं. आज्ञासें ज्यादा, कमी, और विप्रित श्रधान करे, वोही मिथ्यात्व की गिनतीमें हैं. इस लिये श्री जिनेश्वर भगवान की आज्ञा क्या है? उसका अव्वल विचार करनेकी, वहुत अवश्यकता (जरूर) है, श्री जिनेश्वर भगवान, सर्व ज्ञाता (केवल ज्ञान) को प्राप्त हो, अधो (नीचा)

मध्य (विचला) उर्ध (उंचा) तीनही लोकमें. भुत(गया) भविष्य (होनेवाला) और वृतमान (वर्ते सो) इन तीनही कालमें, जीव और पुद्गलकी अनंतानंत पर्यायों.का, जो परावृतन (पलटा) हो रहा है, उनका प्रकाश किया. नवही अपन उनके हुकमसें जगत् के चराचर (चल स्थिर) पदार्थोंके कोविद (जाण) हुये हैं. और अगोचर (विन देखे) पदार्थोंके गुण और पर्याय इले सुक्ष्म-अग्राही है की अपन तो क्या, परन्तु बड़े२ चार ज्ञानके धारी, द्वादशांग के पाठी, महा मुनिवरों केही अन्दाज (लक्ष) में आने मुशकिल होते है. जो पदार्थ अपने समजमें नहीं आते है, तो भी उन्हे अपन शास्त्रोंमें पढके सत्य मानते हैं. यह निश्चय अपनको श्री तीर्थेश्वर भगवानकी आज्ञाके माननेसेही हुवा है; क्यों कि अपन निश्चयसे समजते हैं कि श्री वितराग देव राग द्वेष रहित हैं. उन्हे किसीकाभी पक्ष नहीं है, की वो कभी अन्यथा (झुट) बोले. श्री सर्वज्ञ प्रभूने केवल्य ज्ञानमें जैसा देखा वैसा फरमाया, वो सर्व सत्य है.

श्री जिनेश्वर भगवानने जो जो फरमाया है उसमेंका कुछ आश्चर्यकारि ज्ञान यहां स्थोक करके कहते हैं—
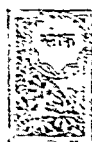
सुत्रार्थ मार्गणा महाव्रत भावनाच,
पञ्चेन्द्रियोप शमता ति दयाद्र भावः;
वन्ध प्रमोक्ष गमना गति हेतु चिन्ता,
ध्यानतु धर्म्य मिति तत्प्रवदान्ति तज्ज्ञः.

सागर धर्मामृत.

अत्यार्थ—सुत्रोंका अर्थ, जीवोंकी मार्गणा, महावृत, भावना, पांच इन्द्रियों दमनका विचार, दयाद्र भाव, कर्मसे बन्धनका, और छुटनेके उपाय—का विचार, चार गति और ५७ हेतुकी चिंतवना, इत्यादि विचार करे उसे धर्म ध्यानका ध्याता श्री तत्वज्ञ प्रभूनें फरमाया हैं.

ध्यान कर्ताको श्रुतज्ञानकी अव्वल आवश्यकता हैः इस लिये पहले यां श्रुतज्ञान वरणव करते हैं.

" सुत्रार्थ "

गाथा — सुदकेवलं च णाणं, दोणी वि सरिसाणि होति वोहादो. सुदणाणं तुपरोक्खं, पच्चक्खं केवल णाणं.

देवसेनाचार्य
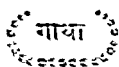
अर्थ—श्रुत ज्ञान और केवलज्ञान दोनों बरोवर हैं. फरक इत्नाही की श्रुत ज्ञान तो परोक्ष हैं और केवल ज्ञान प्रतक्ष हैं. क्यों कि केवली भगवानने जो जो भाव केवल ज्ञानमें जाणे हैं, वो

में अच्छी स्थिरता रहनेका संभव है. इसलिये यहां मार्गणा कहते हैं.

१ "गति" गति उसे कहते हैं की जिसमें गतागत (आवागमन) करे. वह गती ४ है. (१) 'नर्क गति' जो अधो (नीचे) लोकमें ७ दुःखमय स्थान है. (२) 'तिर्यंच गति' जो एकेंद्री सूक्ष्म तो सर्व लोक व्यापी है और बादर एकेंद्री तथा वेन्द्रीसे पचेन्द्रीय प्रयंत पशू (जानवर) जीव है. (३) 'मनुष्य गति' जो तिरछे लोकमें कर्म भूमी अकर्म भूमी मनुष्य जीव है. (४) 'और देव गति' जो पातल (नीचे) लोकवासी भवन पति, वाणव्यंतर, देव, तिरछे लोकमें चंद्र सूर्यादी जोतषी देव, और उर्द्ध (उचे) लोकवासी, कल्पवासी, १२ स्वर्ग (देवलोक) में रहे वह, कल्पातीत सो ९ ग्रीवेग और ५ अनुत्तर विमान वासीदेव. यह चार गति. और पंचमी मोक्षको भी गति कहते हैं परंतु वहां गये पीछे पुनरावृत्ती (आना) नहीं है.

२ "इंद्रिय" इन्द्रिय उसे कहते हैं. जिससे जीवकी जातीकी समज होए. वह इन्द्रिय ५ है (१) 'एकेंद्रीय' जो पृथव्यादिक एक स्पर्श इन्द्रियवाले जीव. (२) 'बेंद्रिय' जो किटकादिक स्पर्श और रस इन्द्रियवाले जीव. (३) 'तेंद्रिय' जो युका (ज्यूं)

दिक स्पर्श रस और घ्राण इन्द्रिय वाले जीव. (३) 'चौरिंद्रि' जो मक्षिकादिक स्पर्श, रस, घ्राण, और चक्षू इन्द्रिय वाले जीव. (४) और 'पचेंद्रिय' जो मच्छादि जलचर, (पाणीमें रहे) पशू (पृथवीपे रहे) गायादी स्थलचर, हंसादी पक्षी खेचर. (आकाशमें उडे) तथा नरक मनुष्य और देवता स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु और श्रोतेंद्रीवाले जीव. इन सिवाय *अनेंद्री जीव केवली भगवानको और सिद्ध भगवानको कहते हैं.

३ "काए" काया, शरिरको कहते हैं, वह जीवयुक्त काया ६ हैं- (१) 'पृथ्वी काय' (मट्टी) (२) 'अपकाय' (पाणी) (३) 'तेउकाय' (अग्नी) 'वाउकाय' (वायू-हवा) (५) 'वनास्पति' (सबजी-लीलोत्री) [यह पांच एकेंद्री हैं] और (६) 'त्रसकाय' (हलते चलते बेंद्रीय से लगा पचेंद्रिय पर्यंतके जीव).

४ "जोए" जोग-दूसरेसें सम्बन्ध करे वह जोग ३ हैं. (१) 'मन योग' (अंतःकरणका विचार) (२) 'वचन योग' (शब्दउच्चार) (३) 'कायायोग' (प्रतक्षशरीर)

५ "वेए" वेद विकारका उदय वह वेद ३

---

* केवल ज्ञानीने अनंत कालके सब्दादी विषयको पहलेही जान रखे हैं इस लिये उनके कर्णादी अव्यय रहे हैं. उनके विषयसें उन्हें कुछ प्रयोजन नहीं हैं.

(१) स्त्री, (२) पुरुष, (३) नपूंसक.

६ "कसाय" कषाय संसारका कस्स[रस] आके आत्माके प्रदेशपे जमे वह कषाय ४ [१] क्रोध, [गुस्सा] [२] 'मान' [अभीमान] [३] 'माया' [कपट] [४] 'लोभ' [तृष्णा] .

७ "नाणे" ज्ञान—जिससें पदार्थको जाणे वह ज्ञान ८ हैं. [१] 'मति ज्ञान' [बुद्धी] [२] 'श्रुती ज्ञान [शास्त्रसंबंधी] [३] 'अवधी ज्ञान' [रुपी सर्व पदार्थ जाणे] [४] 'मन पर्यव ज्ञान' [मनकी बात जाणे] [५] 'केवलज्ञान' [सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव जाणे] [यह ५ ज्ञान—सम्यक द्रष्टीकों होते हैं.]

[६] 'मति अज्ञान' [कुबुद्धी] २ 'श्रुती अज्ञान' कुशास्त्राभ्यास ३ 'विभंग ज्ञान' [उलटा जाणे] [यह ३ अज्ञान मित्यात्व द्रष्टीको होते हैं.]

८ "संजम" संयम—कूकर्मोसे आत्मा का निग्रह करना रोकना वह संमय ७ हैं. १ 'अव्रुति' (जिस सम्यक द्रष्टी ने मिथ्यात्वसे आत्माको बचाइ) २ देशव्रुति श्रावक ३ सामाइक देशसें 'श्रावकका और जाव जीव साधूकी) ४ छेदोपस्थापनिय (दोषसें निवारनेवाला) ५ परिहार 'विशुद्धी' 'शुद्ध चरित्र' ६ 'सुक्ष्मसंपराय' 'थोडा लोभविकार सब दोष रहित' ७यथा-

ख्यात (सर्वथा दोषरहित)

९ "दंसण" दर्शन–देखे या दरशे सो दर्शन ४ हैं. १ चक्षु दर्शन, (आखोंसे देखे) २ अचक्षुदर्शन आंखविना चार इन्द्रिसे और मनसे दरशे) ३ अवधी दर्शन. (रुपीपदार्थ दुरके देखे) और ५ केवल दर्शन (सर्व द्रव्य. क्षेत्र, काल भाव देखे दर्शे)

१० "लेसा" कर्मसे जीवको लेशे (लेप चडावे-वह लेशा ६ हैं. १ 'कृष्ण लेशा' महा पापी २ नील लेशा' अधर्मी ३ 'कापूलेशा' वक्रस्वभावी, धीठ ४'तेजूलेशा न्यायवंत ५ 'पद्मलेशा' धर्मात्मा ६ 'सुक्लेशा मोक्षार्थी और अलेशी अयोगी केवली व सिद्ध भगवत'

११ "भव" संसारमें जीव दो तरहके हैं; १ भव्य वह मोक्षगामी. और २'अभव्य' वह कदापि मोक्ष न जाय. (नो भव्याभव्य सिद्ध भगवंत.)

१२ "सन्नि" संसारमें जीव दो तरहके १ 'सन्नि वह ज्ञान व मन युक्तः मातापिताके संयोगसे उत्पन्न होवे सो, मनुष्य तिर्यंच और देवता ओं तथा नेरिये. और २ 'असन्नी' वह पांच स्थावर, तीन विकलेंद्री और समुछिम माता पिता विन हुये मनुष्य, तिर्यंच, पचेंद्री. (नो सन्ना सन्नी सिद्ध भगवंत)

१३ 'सम्मे' यथार्थ पदार्थ की श्रद्धा वह सम्य-

क्त्व ७ हैं. १'मिथ्यात्व' बाह्या श्वरूप मिथ्यात्वका. और अन्दर समकित पावे सो. २ 'सास्वादानीय'=लें. श मात्र धर्म श्रधके, पडजायसो. ३ 'मिश्र'=श्रधाकी गडवड. ४ 'क्षयोपशमिक'=मोह कर्मकी प्रकृती, कुछ क्षयकरी और कुछ उपशमाइ ढांकी) ५ 'ओपशमिक मोहकी प्रकृती उपशमाइ. ६ 'वेदिक' प्रकृती वेदे (यह क्षायिकके पेलह क्षण मात्र होती है) ७ क्षायिक मोहकी प्रकृतियों क्षय करे.

१४ "आहारे" आहार करे वह आरिक, और मार्ग वहता (एक सरीर छोड दूसरे सरीरमें जाता) तथा मोक्षादिकके जीव अन-आहारिक.

यह १४ ही मार्गणा तो अर्थकी सागार हैं, परन्तु ग्रन्थ गौरव के लिये ह्यां संक्षेपमें चेताया हैं. ध्यानी इने विस्तारसें चिंतवन करेंगें.

"महावृत्त"

महावृत=वडे वृत, जेसे तालावके नाले रोकनेंसे, तलावमें पाणी आना वंद हो जाताहै. वेसेही वृत-प्रत्याख्यान (पच्चखाण) करनेसे जगतका पाप वंद हो जात्ता हैं.

श्रावकके वृतकी अपेक्षासे वडेसो साधूजीके

पंचमहा-वृत,

ध्यानी जन बहुत करके महावृती होते हैं. इस लिये उन्हे अपने वृतोंमें ध्यान देनेकी बहुतही जरूरहै.

१ "सव्वं पाणाइ वायाउ वेरमणं"=अर्थात त्रस, स्थावर, सुक्षम, बादर, सर्व जीवोंकी हिंशासें त्रिविध २* सर्वथा निवृते. (सर्वथा हिंशा त्यागे).

२ "सव्वं मुसं वायाउ वेरमणं"=अर्थात् क्रोधसे, लोभसे, हंसिसे, और भयसे, सर्वथा त्रिविधे २ मृषा (झूट) बोलनेसे निवृते.

३ "सव्वं अदिन्नं दाणाउ वेरमणं"=अर्थात थोडी, बहुत, हलकी, भारी, सचित (सजीव) और अचित (निर्जीव) इनकी सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ चोरीसे निवृते.

४ "सव्वं मेहूणाउ वेरमणं"=अर्थात देवांगना की मनुष्यणी. और तिर्यचणी, इत्यादी मैथुन सेवनेसे सर्वथा प्रकारे त्रिविधे २ निवृते.

५ "सव्वं परिग्गाहाउ वेरमणं" थोडा, बहुत, हलका, भारी. सचित, और अचित, इत्यादि परिग्रह सें सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ निवृते.

---

* करे नहीं मनसे वचनसे कायासे. करावे नहीं मनसे वचनसे कायासे. अच्छा जाने नहीं मनसे, वचनसे, कायासे ये ९ कोटी

[छट्टा, सव्वं राइ भोयणं वेरमणं" अन्न, पाणी, मेवा मिठाइ, और मुखवान (तंबोलादी) इत्यादी अहार रात्रीको सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ नहीं भोगवें] ध्यानी इन महाव्रुतोंको इनकी भावना भांगे तर्णाय सहित चिंतवन करनेमे अपने कृतव्य प्रायण होंगे.

१२ "भावना."

१ "अनित्य भावना"- द्रव्यार्थिक नयसें, अविन्याशी स्वभावका धारक जो आत्मद्रव्य हैं. उससे भिन्न (अलग) रागादी विभाव रूप कर्म हैं. उनके स्वभावने ग्रहण किये हुवे. स्त्री पुत्रादी सचेतनद्रव्य, सुवर्णादी अचेतन द्रव्य, और इन दोनोंसे मिले हुये मिश्र द्रव्य, जो हैं सो सर्व अनित्य, अध्रव, विनाशिक हैं. ऐसी भावना जिनके ह्रदयमें रमती हैं, उनका सर्व अन्यद्रव्योंपरसे ममत्वका अभाव होजाता हैं (जैसे वमन किये हुवे पे से ममत्व कभी होता है.) वो महात्मा अक्षय. अनंत, सुखका स्थान, जो मोक्ष उसे पाते हैं.

२ "अशरण भावना"—इस आत्माको, ज्ञान दर्शन, चारित्र, तथा अरिहंतादी पंच प्रमेष्टी छोड, अन्य देविंद्र, नरिंद्र, स्वजन, सेन्या. घर, धन, या मंत्र. जंत्र

तंत्रादि कोइभी. सरण–आश्रय देनेवाले नहीं है. यथा द्रष्टांत–(१) जैसे हिरणके बच्चेको सिंहने ग्रहण किया. उसे छोडानेसामर्थ दूसरा हिरण नहीं होताहै. (२) तथा समुद्रमें झाजसेंसे पडे हुये मनुष्यको कोइ आश्रयभूत नहीं होता हैं; तैसे. ऐसा जाननेवाले परद्रव्यसे ममत्व उतार, एके निजस्वभाव–निजगुणकाही आलंबन करेगे: वोही निजात्म स्वरूप–सिद्ध अवस्था कों प्राप्त होंगे.

३ "संसार भावना"–इस संसारमें, जित्ने द्रव्य हैं, उन सबको. ज्ञानावरणियादी अष्ट कर्मके योगसेः तथा शरीर पोषणेके लिये. अहार पाणी यादीसे तथा श्रोतादी इन्द्रियोंसे, अपने जीवने अनंतवार ग्रहण किये और छोडे, इसे द्रव्य संसार कहना. तथा (२) असंख्य प्रदेशसें व्याप्त यह लोक हैं, उनमेंसें एकेक प्रदेशपे. यह जीव अनंत वक्त जन्मा और मरा, यह क्षेत्र संसार हैं. (३) तथा सर्पणी और उत्सर्पणी काल २० कोटा-कोटी सागरका हैं, उसके एकेक समयमें इस जीवने जन्म मरण किये, यह काल संसार. (४)और क्रोधादी ४ कषायके मनादी त्रियोगके जो प्रकृत्यादी बन्धके भाव हैं, उन्हे अनंत वक्त ग्रहण करर के छोडदिये, यह भाव संसार, ऐसे ४ प्रकारके संसारमें

यह जीव अनादि कालसे परिभ्रमण करता थका
नहीं. अब इस भ्रमणसें निवृत्त संसारकी घृणा ला-
वेगा, वोही मोक्ष पावेगा.
४ "एकत्व भावना"– इस जीवको सहजानंद (स्व-
भावसे होता) सुखकी सामुग्री देनेवाला, अनंत
गुणका धारक केवल्य ज्ञान है. वोही आत्माका स
हज शरीर है; वोही अ[illegible] है.
और इन सजनादी कोईभी किसकी नहीं हैं.
क्यों कि अन्यपदार्थ, मतलबी विकल्प उपजाते हैं,
और अनेक प्रकारका दुःख देते हैं. एसा जान सर्व
बाह्यवस्तुओंसे ममत्व उतार, एक आत्मापेही जो
दृष्टी जमावेगा. वोही आत्म तत्वकी खोज कर
निजानंद–सहजानंद सुखको प्राप्त होगा.

५ "अन्यत्व–भावना" जगतमें रहे हुये कि-
तनेक सचित पदार्थोंको कुटुम्ब समजते हैं. और
कितनेक अचितको सहायक मानते हैं. परन्तु यो
सर्व कर्माधीन और कर्ममय हैं. यो बेचारे आपही
सुखी होने सामर्थ नहीं हैं; तो अपनेको क्या सु-
ख देंगे. यो आपहीको विनाशसे बचा नहीं सक्ते हैं,
तो अपनेको क्या बचावेंगे. इतने काल जो इस
जीवने संसारमें दुःख पाया, यो सब इन्हींका प्रसाद

है. ऐसा निश्चय करके हे जीव! अन्य सर्व पदार्थ अलग हैं. और मैं शुद्ध चैतन्य अलग हुं. यह मेरे नहीं मैं इनका नहीं. ऐसा विचारता सर्व द्रव्यसे अलग हो, अपने निज स्वरूपको प्राप्त कर सुखी होवे.

६ "अशुची-भावना." इस सरीरको शुची करने, किस्लेक असंख्य अपकाय(पाणी)के जीवोंका वध करतेहैं, सो भिष्टाके घटको शुची करने जैसा करते हैं. देखीये यह सरीर रक्त और शुक्रके संयोगसे तो उत्पन्न हुवा है. दुग्ध. और भिष्टाके क्षातसे उत्पन्न हुये पदार्थोंके भक्षणसे वृधी पाया, और जिन पदार्थोंकी इस सरीमें वृधी हुइ वोभी अशूची हैं. इस सरीके संयोगसे सुची पदार्थ अशूची होतें हैं. सुर्भिगंधी दुर्गधी होते हैं. परशंसनिय, निंदनिय होतें हैं. मनहर दुगंछनिय होते हैं. बहुत कालसे सेप्रेन संग्रह करके रखे हुये पदार्थ इस सरीरका सम्बध होतेही, उकरडीपे डालने जैसे बन जाते हैं!! और इस सरीरमेंसे निकलते हूये सर्व पदार्थ, घ्रणाको उत्पन्न करते हैं. ऐसे इससरीरसें प्रेम उत्पन्न करने जैसा कोनसा पदार्थ हैं? परन्तु मोहमधमें छके हुये जीव अशुचीकोंही प्राण प्यारे बनातें हैं. इससे और ज्यादा अज्ञान दिशा कोनसी? उनकेही सरीरके, उनको प्यारे लगते पदार्थ, सरीरसे अलग कर

ो पाणीके उपरही रहनेका होता हैं: परन्तु उसपे को
ृ मट्टीके और सनके ८ लेप लगाके, सुकाके, पाणीमें
डाले तो तुर्त पातलमें बेठ जाताहै: फिर पाणीके सं-
योगसे उसके लेप गलने से वो उपर आताहै, तैसेही
जीव रुप तुम्बा, अष्ट कर्म रुपये लेपकर, संसारमेंडूब-
रहाहै: उन लेपोंको गलाने, मुमुक्षुजन द्वादश (१२)
प्रकार की तपस्या कर, कर्म लेपको गाल, संसारके
अग्र भागमें जो अनंत अक्षय सुख मय मोक्ष स्थानहै,
उसे प्राप्त करतेहै.

१० "लोकभावना" अनंतानंत आकाश रुप
अलोकके मध्य भागमें, ३४३ घनाकार राजू* जित्ने क्षेत्र
में लोक हैं, लोकके मध्यमें १४ राजू लम्बी और १ राजू
चोडी त्रस नाल हैं. उसमें त्रस और स्थावर जीव भरे
हैं, और बाकीका सर्व लोक एक स्थावर जीवहीसे भरा
हैं. लोक के उपर अग्र भागमें सिद्ध स्थान हैं. जो जीव
कर्म से मुक्त होते (छूटते) हैं: वो सिद्ध स्थान में
विराजमान होते हैं. फिर वहां से कदापी चलाय

*३,८१,२७,९७० मण लोहेके एक गोलेको एक भार कहते हैं. ऐसे हजार गोलेका एक गोला बना कोइ देवता बहुत उपरसे छोडे, वो ६ महीने, ६ प्रहर, ६ दिन, ६ घडीमें जितना क्षेत्र उल्लंघे सो एक राजू क्षेत्र.

क्षेत्रके २००० देशमें फक्त २५॥ देश आर्य हैं. ऐसे अन्य क्षेत्रोंमे भी आर्य भूमीकी नुन्यता है. और १५ क्षेत्रमें से फक्त ५ महा विदेह क्षेत्रमें तो सदा धर्म करणी का जोग रहता हैं. और भरत ऐरावत १० क्षेत्रोंमें दश क्रोडाक्रोडी सागर सरपणी कालमें फक्त १ क्रोडाक्रोडी सागरही धर्म करणीका होता हैं. सो प्राप्त होना बहुत मुशकिक हैं. ये भी मिलगया तो आर्य-क्षेत्र. उत्तम-कुल. दीर्घ आयुष्य. पूर्ण-इन्द्रीय. निरोगी-सरीर. सुखे उपजीविक. सद्गुरु दर्शन. शास्त्र श्रवण-मनन-निध्यासन. होके भी भव्य पणा. सम्यक द्रष्टिपणा. सुक्षबोधी. हलूकर्मी. स्वल्प संसारीपणा वगैरे जोग मिले. तब धर्मपर रुची जगे; और बोध बीज सम्यक्त्वकी प्राप्ती होवे. देखा! कित्ना दुलभ बोध बीज मिलता हैं सो. हे भव्य जनो!! अत्यंत पुन्योदयसे अपन बहोत उंचे आये हैं. बोध बीज हाथ लगा हैं (तो अब इसे व्यर्थ न गमाते) आत्म क्षेत्रमें इस बीजको रख, ज्ञान जल (पाणी) से सींचन करो, की जिससे धर्मवृक्षलगे जो मोक्ष फल देवें.

१२ "धर्म भावना"—"धारयेति धर्म्म" पडते जीवको धर (पकड) रखे सो धर्म. "संसारंमी दुःख पउरए" संसार सागर महा दुःखसे भरा हैं. इसमें पडते

जीवको रोकके, मोक्ष स्थानमें पहोंचावे सो धर्म कहा जाता हैं. मोक्षार्थीको धर्मकी बहुत अवश्यकता हैं,वो धर्म कोनसा ? जैन कहे– "धम्मो मंगल मुक्किठं, अहिंसा संजमोतवो" अर्थात मंगलकाकर्ता, सर्वसें उत्कृष्ट धर्म वोही है की जो- अहिंसा (दया) संयम (इन्द्रिय दमन) और तप करके संयुक्त होए. वेद कहते है- "अहिंसा परमोधर्मः" अर्थात् परमोत्कृष्ट धर्म वोही है की जहां अहिंसा (दया) ने मनोंग निवास किया हैं. पुराण कहते हैं- "अहिंसा लक्षणो धर्मः अधर्मः प्राणी नां वधः" अर्थात अहिंसा (दया) है सो धर्मका लक्षण और हिंसा है सो अधर्म हैं. कुरान कहते हैं. "फला तजअल्कुबनुं कुम मकाबरूलहुन वनात" अर्थात तुं पशू पक्षीकी कबर तेरे पेटमें मतकर. बाइबल कहते हैं– "दाउ शाल्ट नोट कील"(Thou shalt not kill)अर्थात् तुं हिंसा कर मत. इत्यादि सर्व शास्त्रोंमें धर्मका मूल 'दया' ही फरमाया है. दयाके दो भेद, १ परदया तो छे काय जीवकी रक्षा करना, और २ स्वदया सो अपनी आत्माको अनार्दाग (दुकर्मों) में बचाना, की जिनसे अपनी आत्मा, आगमिक कालमें, सर्व दुःखसे छुट मोक्षके अनन्त अक्षय सुखकी प्राप्ति करे.

यह १२ मी भावना. मुमुक्षु प्राणीयोंको मोक्ष

गमन करते हुये पर्गीय निलरणी रुप हें.

"पञ्चेन्द्री योपशमता"

१ 'श्रोतेंद्री='कानका स्वभव जीव, अजीव, और मिश्रके शब्द ग्रहण करनेका हैं. इनके वशमें पड मृगपशु मारा जाता हैं. २ 'चक्षु इन्द्री'=आँखका स्वभाव काला-हरा-लाल- पीला और श्वेत, रुपको ग्रहण करनेका हें, इसके वशमें पडके पतंग मारा जाता हें. ३ 'घ्रणेंन्द्री'=नाकका स्वभाव सुभिगंध और दुर्भिगंध को ग्रहण करनेका हैं. इसके वशमें पड भ्रमरपक्षी मारा जाता हें. ४ 'रसेंन्द्री'=जिव्हाका स्वभाव-खट्टा-मीठा-तीखा-कडु-कषायला, रसको ग्रहण करनेका हें. इसके वशमें पड मच्छी मारी जाती हें. ५ 'स्परशेंद्री'=कायाका स्वभाव हलका-भारी-ठन्डा-उन्हा-लुक्खा-चिकना-कोमल-खरदरा स्पर्शोको ग्रहण करनेका हें. इसके वशमें पडके हाथी माराजाता हें. अब जरा सोचाए, एकेक इन्द्रिके वशमें पडे, उनकी अकाल मृत्यू हुइ; तो जो पांचही इन्द्रिके वशमें पडे हें. उनका क्या हाल होगा? कृतकर्मका बदला दुर्गतिमें जाके अवश्यही भोगवेंगे.

अज्ञानसें जीव दुःखरूप इन्द्रियोंके विषयमें सुख मा

नते है. यह अश्चर्य (तमाशा) भी तो जरा देखीये! [१] जो शब्द सुननेंसे सुखही होयतो गाली सुन संतप्त क्यों होते हैं, क्योंकि उत्पती और ग्रहण करनेका स्थान तो एकही है, और जो गालीयोंको दुःख रुप मानते है वो स्नेही स्त्रीयोंकी गाली सुन खुशी क्यों होते है. [२] रूप देखके प्रसन्न होते हैं तो अशुची देख क्यों घ्रणा (दुगंच्छा) करते हैं. क्योंकि वोभी कोइ वक्त में चित को हरण करने वाला पदार्थ था! तथा आगामिक कालमें रूपान्त्र पाके मजा देनेवाला होजाता है. और मर्चीाही अशुचीसे नाखुष होवे तो स्त्री सम्बन्ध अशुची के मथनमे क्यों मजा मानतें है. [३] दुगंध आनेमे नाक क्यों फिराना, क्योंकि वोभी एक तरहकी गंध हैं. रुपांत्र हो मनहर हो जाती हैं. और जो सघेही दुगंध से नाराज होते हो तो मृत्यु लोककी ५०० जोजन उपर दुगंध जातीहै, उसमें क्यों राचे है. [४] मन्योग-मधुर रस सेही जो सुख पाते है वो तो फिर हकीमसे क्यों कहे के शक्कर म्वाइ जिससे बुखार आगया, और घृत खाया जिससे खांसी होगट. जो घृत शक्कर जैसे पदार्थ ही दुःख दाता हैं. तो फिर अन्यका क्या कहे. वैद्यक कहता है. "रस्साणी ते रोगाणी" अर्थात रसका

भोग रोगकाही कारण हैं. फिर इसमें सुख कैसे मा-
ने? ५ चित मुनीने ब्रह्मदत्त चक्रवृतसे कहा है-"सव्व
आभरण भारा, सव्व काम दुहा वहा" अर्थात सर्व
भूषण (गहणें) भार भूत हैं, और सर्व भोग दुःख दा
ता हैं, सो सच्चही हैं. जैसे सुवर्ण धातू हैं वैसा लोहा
भी धातू हैं. राजाकी तर्फसें सुवर्णकी वेडीकी वक्षीस
हुइ तो खुश होवे; हमें पांवमें पेहरने सोना मिला. औ
र लोहेकी वेडीकी वक्षीस होनेसें रुदन करते हैं. इस
विचारसे जाना जाता है, की भूषणमें सुख दुःख न-
हीं, माननेमेंही है! ऐसेही सर्व काम भोग दुःख दाता
है, उनका नामही विषय भोग है; अर्थात जेहर खाना
परन्तुः जैसे विष (जेहर) और विशेष 'य' प्रत्यय हैतो
यह जेहरसेभी अधिक घाती है. भगवंतने फरमाया है
कि "कामभोगाणुरत्तणं अनंत संसार" वढणं, अर्थात्-
काम भोगमें रक्त रहनेसे, अनंत संसार वढता है. म-
तलबकी-विषतो एकही भवमें मारता है; और विषय
भोग अनंत भवतक मारतें हैं, वडे २ विद्वानोंको और
महा ऋषियोंको वावला वनादेता है. ऐसा दुरुधर जे-
हर है. विषय सुखकी इच्छा कर, भोगवते है, परन्तु
क्या २ हानी होती है सो देखो, शक्ती, वुद्दी, तेज,
स्तव,इनको नष्ट कर, अत्यंत दुःखताले, सुजाक आदी

डिसंवेदेमि: इच्चेवं जाण सव्वेजीवा, सव्वेसभूता, सव्वे पाणा, सव्वेसत्ता. दंडेनवा जाव कवालेणवा आउटि-ज्जमाणावा. हम्ममाणावा. तज्जिज्जमाणावा, ताडिज्ज-माणावा, परियाविज्जमाणावा. किलविज्जमाणावा. उद्द विज्जमाणावा. जाव लोमुक्खणणमायमवि; हिंशाका रगं दुक्खंभयं पड़िसंवेदेति. एवं नच्चा सव्वेपाणा जाव सत्ता णहंतव्वा. ण अज्जावेयव्वा. ण परिघेतव्वा; ण परित्तावे यव्वा; ण उद्दवेयव्वा; ॥श्री॥ से वेमी जेय अतिता. जे-य पडुपन्ना. जेय आगमिस्सामि. अरिहंता भगवंता. स व्वेते एव माइक्खंति. एवं भासंति. एवंपरुवेंति सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता ण हंतव्वा ण अज्जावेयव्वा. ण परिघेतव्वा; ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा. एसे धम्मे धुवे, णीतिए, सासए. समिच्चलोगं खेयन्नेहिं पवे देति.

अर्थ,—द्वादश जातकी प्रपदामें भगवंत श्री तिर्थंकर देवने, निश्चयकेसाथ फारमाया हेकी; छे जीव-कायोंकी हिंशा—कर्मवन्धका कारण हैं. वो छ जीवका याके नाम कहतेहै, पृथवी. पाणी, अग्नी, वायू, विन-स्पति, और त्रस, इनको दुःख देते, जेसा दुःख होताहै वो यहां द्रष्टांत करके वतातें है. "जैसे * मुजे असाता-

* खुद श्री महावीर परमात्मा आपनेहीको वताके फरमाते हैं।

देव दंडसे. हड्डीसे, मुष्टीसे. पत्थरसे. कंकरसे. मुजे मारते. तर्जना-ताडना करते. परिताप उपजाते. दुःख देते. उद्वेग उपजाते. या जीव काया रहित करते, जावत् सरीरपेका रोम (बाल) मात्रभी उखाडते. इन हिंशाके कारणोंसे जैसा दुःख और डर मेरेको होता है, ऐसाही जाणो-सव (पचेंद्रीयों) को. सर्व भूत (विनास्पति) को. सर्व प्राणी (बेन्द्री तेन्द्री चोरिन्द्री) को और सर्व सत्व(पृथवी.पाणी, अग्नी. वायु)कों दंडसे मारतें जावत् कंकरसे मारते, अक्रोश. ताडन. तर्जन करते. परिताप उपजाते. किलामणा (दुःख) देते- उद्वेग उपजाते. जावत् जीवकाया रहित करते रोम मात्र उखेडतेभी. इन हिंशाके कारणोंसे वो जीव दुःख और डर मेरे जैसाही मानते हे-अनुभवते हे. ऐसा जाणके सव प्राण भूत. जीव. सत्वको मारना नहीं. दंडसे ताडना नहीं. वलत्कार जब्बर दस्तीकर पकडना नहीं. या किसी काममें लगाना नहीं. सरीरी. मानसीक दुःख उपजाके परिताप देना नहीं. किंचितही उपद्रव करना नहीं; और जीव काया रहितभी. करना नहीं. ऐसा उपदेश गयेकालमें जो अनंत तिर्थंकर हुये वृतमानकालमें जो विद्यमान हे. और आवते कालमें अ-

नंत तिर्थंकर होयंगे उन सबहीनें ऐसाही फरमाया है, संदेह रहि कहाहे ऐसा परुपा है, ऐसा उपदेश दिया है, की—"सर्व प्राण भूत जीव सत्त्वको, मारन ताडन, तरजन परिताप, करना नहीं, बंधनसें डलना नहीं, सरीरी मानसी दुःख उपजाना नहीं, जावत् जीव काया रहित करना नहीं, येही धर्म दया मय निश्चल है. नित्य है. शाश्वता (सनातन) हें. इन वचनको विचारनाकी सब जीव बेचारे कर्मोंके वशमें हो दुःख सागरमें पडे है, उनके दुःखको जाणनेवाले खेदज्ञ. ऐसें श्री तिर्थंकर भगवानने फरमाया हें. की सबकी दया पालो! रक्षा करो!!

गाथा—कल्लाण कोडिजणणी, दुरंत दुरियारिवग्गठवणी.
संसार भवजलतारणी, एगंत होइजिवदया-

अर्थ—क्रोडो कल्याणकों जन्म देने वाली. दुरदंत दुरित (पाप) के नाशकी करनेवाली, संत पुरुषोंके स्थान रूप. संसार महा सागर कों तारने नाव स

☞ दीर्घदृष्टीने महा दयाल श्री तिर्थंकर भगवानके वचनोंके तर्फ लक्ष दीजीये! खुद भगवानही फरमाते हैंकी, छ कायकी हिंसा करनेसे उन्हे मेरेही जैसा दुःख होताहै! ऐसे दयाल प्रभूको छही काया की हिंसा कर खुशी करना चहाते हैं यह कितनी जब्बर भारी हिंसा !!

मान. इत्यादि अनेक सूकार्योकी करनेवाली श्री जीव दयाही हैं.

'दयाही धर्मका मूल हे,' सर्व मत मतांतर एक दयाकेही सारेसें चलरहे हैं. दया-अनुकम्पाही सम्यक्त्वीयो (धर्मात्माओं) का लक्षण हे. ऐसी पवित्र दयाको धर्म-ध्यानी आपणी आत्मामें सदा निवास देते है, अर्थात सदा दयाद्र भाव रखते हैं.*

दयाल अन्य जीवोंको दुःखीदेख करुणा लाते है. त्रस स्थावर जीवोंको सरीरिक (रोगादिक) और मानसिक (चिंता)से पीडित देख, करुणा लावे. जैसे अव्वी कोइ दयवंत किसी बधीर (बेरे) कों देख, विचारते हैं की, इस बेचारेके कैसा पापका उदय हे, की यह सुण नहीं शक्ता हे. बधीर और अन्धा दोनो दुःखसे पिडित देखनेसे विशेष दया आती हे. वैसेही किसीको अंगोपांग व अन्न वस्त्र हीन देख, रोग सो-

* श्रेणीक राजारेसुत, हाथी भवदया पाली; मेदराय दयकाज, मासदीयो मरणो, धर्मरुचीदयाधार, करगयाखेवापार; श्रेणिक पडहवजायो, सूयमें निरणो; नेमजीने दया पाली, छोडदी राज लनारी; मेतारजदयापाल मेठ दियोमरणों; तेवीसमां जिनराय, तापसके पासजाय, जीवने बचायदीयो—नवकारकोसरणो; सवैयोंसवायो कीधो घद्दाशीनामदीयो; जीवदया धर्मपालो, जो ये धारो निरणो. १ कुशालमजी महाराज.

गले पीडाते देख, बहुत दया आती है, तैसेही बेचारे तिर्यंच (पशु) अन्न वस्त्र गृह रहित निराधार है, पराधीनतासे क्षुधा-त्रषा-शीत-तापआदी अनेक दुःख भोगवते है, तिर्यंच पचेंद्रीसे चौरिंद्रीकों दुःख ज्यादा है क्यों कि वो एक इन्द्रि रहित है. चौरिंद्रीसें तेंद्रीसें, तेंद्रीसे, बेंद्री. बेंद्रीसे एकेंद्रीसें ओर एकेंद्रीसे निगोद (कंदमूलआदी)में दुःख अधिक है. क्यों कि ये एक सरीरमें अनंत जीव एकत्र रहते है.

एक महोर्त (४८ मिनट) में ६५५३६ जन्म मरण करते है. इत्नी बे बसी है की, दुःखसे छूटनेका उपाय करनेकी शक्ती दूर रही, परन्तु अपना दुःख दूसरेको दरसाभी नही शक्ते हैं! बेचारे कृतकर्मके फल भुक्तते है. और उनकी घात करनेवाले वैसेही नवे कर्मोका बंध करते है; वो भोगवते उनके भी ऐसेही हाल होते है. ऐसा ज्ञानसे जाणनेवाले, फक्त एक श्रीजिनेश्वरके अनुयायीयोंजहै. वोही सब जीवोंको अभय देते है,* नहीं तो सब स्थान यमशाण मच

☞ * एकेंद्रीकी हिंसासें बेंद्रीकी हिंसामें पाप ज्यादा, बेंद्रीसे तेंद्रीकीमें. तेंद्रीसे चोरिंद्रीकीमें, और चोरिंद्रीसे पचेंद्रीकी हिंसामें पाप ज्यादा. इसका मतलब यह है की, जो उच्च स्थिती को प्राप्त हुवे है वो अनंतानंत पुन्यकी वृधी होनेसे; जैसे गरीबको गले

रहा हैं. मेरे जब्बर पुन्य हैं, की थी जैन धर्मका ज्ञान मुजे प्राप्त हुवा. सुयगडायंग सूत्रमें फरमाया हे की "एयं खु णाणीणो सारं, जन हिंसइ किंचणं" अर्थात् निश्चय से ज्ञान प्राप्त करनेका सार येही है की, किंचित मात्र जीवकी हिंसा नहींज करना! इस लिये अब मे, सब जीवोको त्रिजोगकी विशुद्धी से अभय दानका दाता बनू. सबके वैर विरोधसे निवृतूं के फिर मुजे मोक्षमे जाते कोइभी किसी प्रकार की हरकत करनें समर्थ न होय. ययाही मोक्ष का सच्चा हेतू हैं.

"बन्ध"

कर्म बन्धनसे छूटनेनेही जीव को मोक्ष मिलता हैं, इस लिये मुमुक्षू को बन्धका स्वरूप जाणने की आवश्यकता हैं वह बन्ध के कारण सुत्रमें ४ बताये हैं. सो–"पयड़'ठिइ'रस'पएसा" अर्थात् १ प्रकृती बन्ध, २ स्थिती बन्ध, ३ अनुभाग बन्ध, ४ प्रदेश बन्ध,

देनेसे कोइ गिनतीमें नहीं लाता है, और बडेको गाली देनेसे बड संकटमें पड जाता है, तैसे. तथा जितने उच स्थिती का प्राप्त हुवे है, उतनेही आत्म कल्याण के नजीक आये. उनको मारनेसे उन के आत्म कल्याण का जब्बर नुकशान करना है, तथा एकेंद्रीकी घात विन त्रस्य घातनहीं चलता है

यह ४ वन्धका का स्वरूप मोदक (लड्) के द्रष्टांत से कहते हैं.

(१) 'प्रकृतीबन्ध' का स्वभाव-जैसें सूठादिक से निपजें मौदकका स्वभाव होता है की; वायुनासें रोगका नाश करना; तैसे ज्ञानावरणी कर्मका स्वभाव है की; ज्ञानकूं ढकना. २ दर्शनावरणी कर्मका दर्शनको ढकना, ३वेदनीसे निराबाध—सुखकी हानी, ४मोहणीसे सम्यक्त्वकी हानी, ५ आयुष्यसे अजरा मर पदकी हानी. ६ नाम कर्मसे अरूपी पदकी हानी, ७ गोत्रकर्मसें अखोडकी हानी, और ८ अंतराय कर्मसें अनंत शक्तीकी हानी होती है.

(२) 'स्थिती बंध'का स्वभाव, जैसे वो मोदक महीनादी काल तक टिकतें हैं. तैसे ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनी, अंतराय, यह उत्कृष्ट ३० क्रोडाक्रोड सागर. मोहक ७० क्रोडाक्रोडी सागर आयुष्यकी ३३ सागर और नाम तथा गोत्र कर्मकी उत्कृष्ट तिथी२० क्रोडाक्रोड सागरकी हैं. (३) 'अनुभाग वन्ध' का स्वभाव, जैसे उन मोदकमें कोइ कडूवा होवे, कोइ मीठा होवे. तैसें ज्ञानावरणी, सूर्यको वद्दल ढके जैसा. दर्शनावरणी-आँखका पट्टा वन्धे जैसा. वेदनी-मद्य(सहत) भरी तरवार चाटे जैसा, मोहनी-मदिरा

के नशेके जैसा. आयुष्यखोडे जैसा. नाम-कुम्भार जैसा गौत्र-चित्रकार जैसा; और अंतराय पहरायत जैसा है. (४) 'प्रदेशवन्ध'का स्वभाव, जैसे वह मोदक कोइ दुगणी, और कोइ निगुणी सक्करके होते हैं, तैसे कित्लेक कर्मका वन्ध स्थिल (ढीला) और कित्लेका निवड (मजबूत) होता है, कोइ न्हश थोडी स्थितीवाले, और कोइ दीर्घ (लाम्बी) स्थितीवाले. होते हैं.

इन चार वन्धमेंसे, प्रकृती और प्रदेश बंधतो योगोंसे होता है. तथा स्थिती और अनुभाग वन्ध कषायोंसे होता हैं. इन वन्धनसे जीव आनादीसे वन्धा है. किसीको तिव्ररसोदय, और किसीको मंद रसोदय हुवा है. ऐसे जगतवासी जीवोंके देखते हैं की कोइ क्रूर प्रकृती वाले, और कोइ शांत प्रकृतीवाले, कोइ दीर्घायुपी तो कोइ अल्पायुपी, कोइ सूसंयोगी तो कोइ दूसंयोगी, और कोइ सूवर्ण सूसंस्थानी तो कोइ दुवर्ण दुसंस्थानी. इत्यादीके प्रसंगसे अच्छेपे राग और बुरेपे द्वेश नहीं करना, क्यों कि वो वेचारे क्या करें, जेसा २ जिनकें वन्धोदय हुवा है. वैसा वैसा संयोग वना हे, इसे पलटानेकी उनमें सत्ता हैं. जो अपन उनको खोडीले कहे! इत्यादि विचारसे, स्वसम्वन्धी, श्रेष्ट, नष्ट, संयोग, वियोग, को देख, धर्म ध्यानी

समभाव रक्खे; जिससे सदा परमानंदी, परम सुखी बनें रहें.

"मोक्षगमन"

पहले जो बन्धका वर्णन किया. उस बंधसे मुक्त होवें (छूटे) उसेही मोक्ष कहते हैं. जैसे बन्धनके योगसे तुम्बा पाणीमें डूबा रहता है और वह बन्धन टूटतेही उस तुम्बेका पाणी उपर आके ठेहरनेका स्वभाव हैं. तैसेही जीव कर्म बन्धनसे छूटतेही, मोक्षस्थानमें जा ठेहरनेका स्वभाव हैं.* वह मोक्ष स्थान, लोकके मध्यभागमें जो त्रस नाल १४ राजू लम्बी है उसके उपर अग्रभागमें. एक सिद्ध शिला, ४५ लक्ष योजनकी लम्बीचोडी (गोलपताने जैसी) मध्यमें ८ जोजन जाडी, कम-होती २ किनारेपे अत्यंत पतली है. श्वेत सुवर्णकी हैं. उसपे एकही जोजन लोक हैं. उस जोजनके उपरके छटे विभागमें सिद्ध स्थान मोक्षस्थान हैं. वहां मोक्ष प्राप्त हुये जीवके विशुद्ध निजात्म प्रदेश संस्थित (रहे) हैं. अलोकको लगे हैं. वो सिद्ध भगवंत कैसे हैं.

---

* जैसे [illegible] तुम्बा आगे [illegible] धर्मास्तिकाय [illegible] सिद्ध जीव [illegible] होनेसे [illegible] नहीं है.

श्लोक—आत्मो पादानसिद्धं स्वयं मतिशय व द्वीत बाधं विशालं वृद्धीऱ्हाम व्यापेतं विषयाविराहितं निष्प्रति द्वन्द्व भावम्. अन्यद्रव्या न पेक्षं निरुपं मामितं शाश्वतं सर्वकाल मुत्कृष्ठा नन्तसारं परम,सुख मतस्तस्य सिद्धस्य जातम् १

अस्यार्थ—श्री सिद्धप्रमात्मा, निजात्म स्वरूप संस्थित. स्वय अतिशय युक्त, अव्वबाध (सर्व व्याधा निर्मुक्त) हानी वृद्धी रहित. प्रतिपक्षिकता वर्जित. अनोपम=किसीभी द्रव्यकी ओपमारहित. ज्ञानादीकी अपेक्षा अपार. नित्य, सर्व काल उत्तम. परम सा रयुक्त इत्यादी अनंन सुख सिद्ध परमात्मा विलसतें हैं.

औरभी सिद्ध परमात्मा अतिन्द्रिय सुखके भुक्ते हैं. क्यों कि इन्द्रि जनित सुखतो फक्त कहने रुपही हैं. परिणाम उनका दुःख रुप इन्द्री के विषय कों पोषणमें दुःखही होता है, सो पहीले बताइ दिया. इस लिये सिद्ध भगवंत अनंत सुख के भुक्ता हैं.

सिद्ध परमात्मा ज्ञाना वर्णिय कर्मके नष्ट होनेसे, अनंत केवल ज्ञानवंत हुये, दर्शावर्णियके नाश होनेसे अनंत केवल दर्शनवंत हुये. वेदनिय कर्मके नाशसें निराबाध सुखके भुक्ता हुये, मोहनिय

कर्मके क्षयसे शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्वी हुये. आयुप्य कर्मके नष्ट होनेसे अजरामर हुये. नाम कर्मके नाशसे, अरूपी हुये, गौत्र कर्मके नाशसे खोड (अप लक्षण) रहित हुये. और अंत्राय कर्मके क्षयसे, अनंत दानलब्धी, लाभलब्धी, भोग लब्धी, उपभोग लब्धी और अनंत बलविर्य लब्धी, के धरन हार हुये. ऐसे अनंत गुण सिद्ध भगवंतके हैं. उनका ध्यान ध्यानी करें.

"गति गमना"

पांच गतिमे गमन करनेके २० कारण– १ महारंभ=सदा त्रस स्थावर जीवोंका आरंभ (घमशाण) हो, ऐसा कारखाना चलावे. २ महा परिग्रह=महा अनर्थ सें द्रव्योपारजन करता अचके नहीं. और "चमडी जावो पण दमडी मत जावो" ऐसा लालची. ३ "कुणिमाहारी" मांस मदिरादी अभक्षका भक्षक ४ पंचेंद्रिय वधक=मनुष्य पशुका घातिक. इन चार कर्मोसे नर्कमें जाय. ५ माया=दगाबाज. ६ निवड़ माया=मीठा ठग, धुर्त. ७ मच्छरी=गुणीका द्वेषी. ८ कुड माणे–खोटे तोले मापे रक्खे. इन ४ कर्मोसे तिर्यंच (पशु) गतिमे जाय. ९ भद्रिक–सरल

रहित.) १० विनीत—नम्र कोमल स्वभावी मिलापु ११ दयाल—दुःखी देख करुणा करे, यथा शक्त सुख देवे. १२ 'अमच्छरी'—गुणानुरागी शुभउन्नती इच्छक. इन ४ कर्मोसे मनुष्य गति पावे. १३ 'सराग संयमी' शरीर शिष्य, उपग्रहणपे ममत्व रखने वाले साधू. १४ 'संयमा संयम' श्रावक. १५ 'बालतपस्वी' हिंशा युक्त तप करने वाले (कंद भक्षावी) १६ 'अकाम निर्जरा' परवशम दुःख सहके मरने वाले, इन ४ कामो से देवता होय. १७ ज्ञान—जीवादी ९ पदार्थ जाणे. १८ दर्शन—यथार्थ श्रद्धावंत. १९ चारित्र—शुद्ध संयमी [साधू] और २० तप—ज्ञान युक्त तपश्चर्या करने वाले. इन चार कामोंसे मोक्ष में जावे. इन २० कामों में से धर्म ध्यानी ४ गति के १६ कामोंको छोड मोक्ष गमन जाने के ४ कामोंका साधन करे.

"हेतू"

संसार के हेतू ५७ हैं—२५ कषाय. १५ योग १२ अव्रत. ५ मिथ्यात्व. यह ५७ हुये. इनका विस्तार २५ कषाय— १ अनंतान बन्धी क्रोध: पत्थर की दरार जैसा. (कभी मिले नहीं) २ अनंतान बन्धी मान—पत्थर के स्थंभ जैसा (कभी नहीं नमे) ३ अनं:

तान वन्धी माया= वांशकी जड जेसी (गांठमें गांठ) ४ अनूतानवन्धी लोभ= किरमजी रंग जैसा (जले तो भी न जाय) [ये मिथ्यात्वी नर्क में जाय] ५ अप्रत्याख्यानी क्रोध= धरती की तराड (वर्षाद सें मिळे) ६ अप्रत्याख्यानी मान=काष्ट स्थंभ (मेहनत से नमें) ७ अप्रत्याख्यानी माया=मींढाका शृंग (आंटे दिखे) ८अप्रत्या ख्यानी लोभ=*खंजरका रंग (क्षार से निकले) ९ [ये देशवृत घाती. तिर्यंच में जाय] प्रत्या ख्यानी क्रोध= रेती की लकीर, हवा से मिले. १० प्रत्याख्यानी मान=वेंत स्थंभ (नमाये नमें) ११ प्रत्याख्यानी माया—चलते वेले का मुत्र (वांक साफ दिखे) प्रत्याख्यानी लोभ— कादवका रंग (सूखनें से अलग हो) [यह सर्व वृत घातिक मनुप्य होय.]१३ संज्वलका कोध—पाणी की लकीर. १४ 'संज्वलकामान—तृणस्थंभ १५ संज्वलकी माया=वांशकी छूती. १६'सज्वलका लोभ—पंतगका रंग (यह केवल ज्ञानका घातीक, देवता होय) १७'हांस'— हँसे, १८'रती' खुशी, १९ 'अरती'—उदासी. १० 'भय'—डर. २१'शोक' चिन्ता, २२ दुगंच्छा. २३स्त्रीवेद. २४ पुरुष वेद. २५ नपुंशक वेद, यह पचीसही कपाय कर्मके रसको आ-

*१ गाडीके पईका ओंगन.

त्मापे जमाती हैं.

१५ जोग—१ सत्यमन, २ असत्यमन, ३ मिश्र मन, [साचा झूटा भेला] ४ व्यवहार मन, ५ सत्य (साचाभी नहीं झूटाभी नहीं :) भाषा ६ असत्य भाषा, ७ मिश्र भाषा, ८ व्यवहार भाषा. ९ उदारिक–सात धातु मय, मनुष्य, तिर्यंच, का सरीर, १० उदारिक मिश्र–उदारिक उत्पन्न होते, या वेक्रय करते वक्त मिश्रता रहे. ११ वेक्रय–शुभाशुभ पुद्गलोंसें बना, नर्क, देव, का सरीर १२ वेक्रयमिश्र वेक्रय उपजे तब, या उत्तर वेक्रय करे तब मिश्रता रहे, १३ अहारिक–पूर्वधारी मुनी संशय निवारने आत्म प्रदेशका पूतला निकाले सो. १४ आरिक मिश्र–पूतला निकालते व समावते वक्त मिश्रता रहे. १५ कारमाण जोग प्रथम सरीरको छोड दूसरे सरीरमे जावे वक्त चलावू रूप साथ रहे सो. यह १५ योग कर्मोका अकर्षण करते हैं.

१२ "अवृत" (१-६) पृथवी, पाणी, अग्नी, वायू वनस्पति और त्रस. [इन छे कायका जिव्हा आरंभ] (७-१२) श्रुत, चक्षु, घ्राण, रस, स्पर्श और मन [इन

: जैसे मुनका भी नेच वर्षा और कोई दीवा जले मान
जाते हैं और कोई प्राण जाया.

छे इंद्रियोंके पोषणे लिये जक्तमें होता है. उन) की अव्रत समय २ अपच्चखाणकि अती है. और कर्मका ब न्ध करतीहै. देखीये इंद्रीयों पोषणे अनेक पचेंद्रीय-का कट्टा कर चमडा लाते है. और वाजिंत्र मंडाते है. धातु गलाके कशाल. भंमा प्रमुख बनाते है. अनेक मनहर स्थान वस्त्र. भुषण. भोजनादी सामुगृही अनेक आरंभ कर निपजाते हैं. मद्य, मांस अभक्षका अहार, परस्त्री वेश्यागमन. इत्यादी एकेक कर्म के पाप के सामे जो दीर्घद्रष्टी से विचारते हैं तो वेचारे पृथ-वीयादी जीवोंका घमशाण द्रष्टी पडता हैं. (१) एक वस्त्र निपजाणे. पृथवी का पेट हलसें चीरना. और खेती में खात न्हाख उसमें असंख्य त्रसस्थावर कट्टा. निदाणी प्रमुख अनेक खेती के पाप से झाड होवे. कपास लगे उसे चूंट भेलाकरे. फिर गिरनी पे लोडावे, जावत वस्त्र तैयार होवें वहां तक असंख्य त्रस स्थावरों का घमशाण हो जाय. फिर रंगण कर्म वगेरे होवे वहां का पाप विचारीये. ऐसे महा अनर्थ से एक वस्त्र नि-पजता हैं. तैसेही भुषण को देखीये. धातूर वादी धातू से मट्टी अलग कर, सोनार उसे गला घाट घड उज्व लादी क्रियामें किला आरंभ होता है. ऐसे भोजन म कान वगेरे संसारके अनेक कार्योंको, अलग २ उत्पत्ती

न्हे सत्देव माने, और इन१८ दोप रहित अरिहंत देव हैं उन्हे कुदेव माने. ऐसेही हिंशा, झूट, चोरी, मैथुन, परिग्रह, पचेंद्रीके विपय भोगी चार कपायमें उनमत्त इन दुर्गुण युक्त ज्ञान दर्शक चारित्र तप विर्य[पचाचार] इर्या, भाषा, एपणा अदान निक्षेपना, परिठावणिया (यह सुमती) मन, वचन, काय, की गुती इन सद्गु- णो रहित उनको गुरु माने. हिंशा, झूट, चोरी, मैथुन, परिग्रह कोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेप, क्लेश, चु- गली निंदा हर्ष; शोक रात्री भोजन मिथ्यात् यह अठा रह कामोंमें धर्म माने, और इससे सुलट जो हैं उसे अ धर्म जाने. ऐसे तीनही कुतत्वका पक्का कदाग्रह धार- ण किया पूछे से कहे हमारी पीडीयों से यह धर्म च- ला आता है. इसे हम कदापि नहीं छोडेंगे. ऐसा हट ग्राही होवे सो अभिग्रह मिथ्यात्वी.

२ "अनाभिग्रह मिथ्यात्व"=सूदेव. कुदेव सु- गुरु कुगुरु, सुधर्म, कुधर्म सबको एकसा (सरीखा) स- मजे के वंदे पूजे सत्यासत्य का निर्णय नहीं करे, कोइ समजावे तो कहेकी अपनको इस झगडेसे क्या मत- लब, सब महजबमें बडे २ विद्वान गुणवान बैठे हैं. तो किसे झूटा कहे सब अच्छे हैं.

३ "अभिनिवेशिक मिथ्यात्व"=कुदेव, गुरु, धर्म

और शास्त्रका किसी सत्संग करके यथार्थ समज जाय की यह खोटा है परंतु लोकोंकी कुलगुरुओंकी शरम. मे पड उन्हे छोड नहीः विचार की जो मैं इसे छोड देवुंगा तो मेरे गुरु और मित्रों स्वजनो मुजे ठपका देंगे, निंदा करेगे, और इस महजब के तो यहां बहुत लोक हैं. मुजे अगेवानी कर रखा है. सबमेरे हुकम में चलते हैं. मेरा मान महात्म सब बडा है. जो मै इसे छोड, देवूं तो सब बदलके निंदा अपमान करेंगे. इत्यादि विचार से खोटे को खोटा जाणता हुवा ही छोडे नहीं. अपना जन्म कार्टी धार डुब रहा है. उसका उसे बिलकुल फिकर नहीं ऐसे भारी कर्मी जीवको अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी कहना.

४ "संशय मिथ्यात्व" = कितनेक अज्ञान जीव तथा अज्ञानी किसी पुण्य योगसे जैन धर्म तो पागये, जैन के शास्त्र सुणे. क्रिया करे परन्तु कितनेक गहन बातो नहीं जचनेसे शंका करे की सुइके अग्र भाग जितने जगामे अनंत जीव पाणीकी बुंदमे असंख्याते जीव, पुर्व पल्योपम और सागरोपम का आयुष्य, हजारो, लाखो धनुष्यकी अवगहना नगरीयोंका प्रमाण और चक्रवर्तीकी ऋद्धि और प्राक्रम लब्धीया भुगोल खगोल का हिसाब तथा अरूपी जीवरूपी सुक्ष्म जीवो.

और मोक्षके सुख तथा आस्तित्व वगैरे २ बातोंमे वेम लावे, के यह असंभव बातों सच्ची कैसें मानी जाय. परंतु यों नहीं विचारे की यह अनंत ज्ञानीके समुद्र जैसे वचन मेरी लोटे जैसी बुद्धीमें कैसे समावे. वितराग पुरुष मिथ्यालाप कदापि न करनेके, केवल ज्ञानमें जैसा द्रष्टी आया वैसा फरमाया. और सच्च है अब्बी १ जो क्रोड औषधी के चूर्ण का राइ जित्ने विभागमें भी क्रोड औषधी का अंश समजते है,यह तो करतबी है, तो कुदरती कंदमूलके टुकडेमें अनंत जीव होवे उसमें क्या अश्चर्य? २ अब्बी भी हाथीका वडा और कुंथवेका छोटा सरीर होता हैं. वैसे ही गत कालमें मनुष्यादी की ज्यादा अवघेणा और ज्यादा आयुष्य होवे उसमें क्या आश्चर्य? ३ तथा हाथी बहुत दूरसे दिखता है और कूंथवा नजिककाही मुशीबत से दिखता है. उससेभी ज्यादा सुक्षम पृथव्या दिकके जीव होवे और वो द्रष्टी न आवे इसमें क्या आश्चर्य? ४ अब्बी भी अन्यस्थानोंमे वडे २ शेहर हैं तो प्राचीन कालमें १२ योजनके नगर शेहर होवे उसमे क्या आश्चर्य? ५ क्षेत्र फलावट से कोटी घर और मनुष्योंकी वस्तीसें शंका लाते हैं; परंतु कोटी शब्दका अर्थ एक क्रोडही होय ऐसा न समजीये अब्बी भी क

हीं ६ को और कहीं २० को क्रोडी कहते हैं. ऐसे ही उस वक्तभी किसी वडी संख्याकों क्रोडी कहते होंगे. ६ अब्बी भी एकेक मिनिटमें हजारो का व्याज आवे, ऐसे श्रीमंत बेठे हैं. तो उस वक्त इभपतिआदी होवे उसमें क्या हरकत? ७ अब्बी भी लोहेकी शांकल तोडने वाले मनुष्य हैं, तो गत कालमें अनंत वली होवे उसमे क्या अश्चर्य? ८ और पृथ्वी का अंतः किसे देखा है, जो केवलीके वचनको उत्थापके अमुक संख्यामें ही द्वीप समुद्र बतातें हैं; और जो द्विप समुद्र असंख्य हैं. तो उन्हमें प्रकाश करने वाले चन्द्र सूर्य भी असंख्य हुये चाहीये. ९ आँखसे विन देखे शब्द गन्ध आदी से महीं वस्तुकों कबूल करे, तो फिर अरूपी पदार्थ कों विन देखे क्यों नहीं माने. १० घृत भोगव करके भी उसका स्वाद नहीं कह सक्ते हो, तो मोक्षके सुखका वर्णन मुखसे कैसे हो सके, भोगवे सोही जाने. इत्यादि स्थुल विचारोंसे कितनेक स्थुल वातोंका निर्णय हो सके, और कितनेक अग्रह्य वातोका निर्णय नहीं भी हो सके तो भी सम्यक्त्व द्रष्टी वितरागके वचनोंपे आस्ता रखते हैं. जैसे जवेरीके कहनेसे लाख रुपेके हीरे को लाखहीका मानते हैं. और मिथ्यात्वी संशय में

पड सम्यक्त्व गमा देते है. सो संशयिक मिथ्यात्वी.

५ "अनाभोग मिथ्यात्व"=ऐकांत जड मुढ, न कुछ समजे और न कुछ करे. धर्माधर्म के नामकों भी नहीं पहचाने, जैसे एकेंद्रीयादी जीव अव्यक्तव्य (अजाण) पण से है. सो अनाभोग मिथ्यात्वी.

मिथ्याका अर्थ झूटा होता है. अर्थात् सत्यको असत्य. और असत्यको सत्य श्रधे, सोही मिथ्यात्व है इसे बुद्धिको भ्रष्ट वना के आत्म हितका नाश करने वाला जानके ध्यानी त्यागते हे.

यह धर्म ध्यानका आज्ञा विचय नामे प्रथम पायेका फक्त एकही गाथा का सविस्तर अर्थ यत्किंचित वरणव किया. इसमें से ज्ञेय (जाणने योग्य) को जाणें. हेय (छोडने योग्य को) छोडे. उपादेय (आदरने योग्यकों) आदरे अंङ्गीकार करें.

औरभी भगवानकी आज्ञाका चिंतवन करेकी वहुतसे शास्त्रमें साधुओंके लिये फरमाया है. "संयमेणं तवसा अप्पाणं भाव माणे विहरइ" अर्थात् पांच स्थावर तीन विकेंद्री; पचेंद्री, और अजीव(वस्त्र पात्र) इनकी यत्ना करे. मनादी त्रीयोग वसमें करे, सवके साथ प्रिती (मैत्री भाव) रक्खे सदा उपयोग युक्त प्रवृते दिनको द्रष्टीसे और रात्री को रजूहरणसें पूंज(झाडे)

के हरेक वस्तु काममें ले. अयोग्य वस्तु यत्नासें एकांत परिठावे (डालदे) यह १७ प्रकारके संयम और असण दो घडी, या जाव जीव अहार त्यागे. २ उणोदरी= उपाधी और कषाय कमी करे. ३ भिक्षाचारीसे उपजीवे. ४ रस (विगय) का परित्याग करे. ५ कायाको लोचादी क्लेश दे. ६ प्रतिसंलिनता=इन्द्रीयों कषाय योग, को प्रवृती घटावें ७ लगे पापका प्रायछित ले शुद्ध होवे ८-१२ विनय वयवच्च, सज्झाय, ध्यान, का उत्सर्ग करें, यह १२ प्रकारका तप ज्ञान युक्त करके अपणी आत्माको भावते (आत्मामें रमण करते) हुवे विचरे प्रवृतें.

और भी भगवानने श्री उत्तराध्येयनजी सूत्र में फरमाया है की "समय गोमय म पम्माय" अर्थात् हे गौतुम तथा मुमुक्षु जीवों अनम साधन मोक्ष प्राप्त करने के उपाय के कार्य में किंचित समय (वक्त) भी प्रमाद मत करो!

"पांच प्रमाद."

गाथा: मद विषय कषाय, निद्दा विकहा पंच भणीया.
एए पंच पमाया, जीवा पडंति संसारे.

१ मद=जाति. कुल, बल, रुप, लाभ. ज्ञान

निजरसादी रसमें लीन बनाते हैं+ वो फुटी नाव के संगाती भक्त जनो सहित पातालमें बेठते है.

यह पांचही प्रमाद बडे दुरुधर हैं. श्री भगवती जीके ८ में शतकमें फरमाया है की, चार ज्ञानी, चउदे पूर्वी, अहारिक सरीर, ऐसे मुनीराज इन पंच प्रमादके वसमें पड आयुष्य पूर्ण करे तो अधोगति पावें, ऐसे दुष्ट प्रमादों को ज्ञान भगवंत ने फरमाया हैं के "समय मात्र भी इनका सहवास मत करो." क्यों कि इनकी किंचित् संगतही ऐसी असर करती हैं. की फिर प्राणांत होते भी छूटना मुशकिल है. इस वक्त जैन जेसे पवित्र धर्मकी दुर्दशा हो रही है, वो इन्हीका प्रताप समजना. जो महात्मा पंच प्रमाद से बचेंगे वो ध्यान सिद्धी प्राप्त कर सकेंगे.

यह आज्ञा विचय ध्यान अपार अर्थ से भरा है परंतु यहां इतना कहके अब सबका सारांश थोडेमें कहे यह पूरा करुंगा.

गाथा कि बहुणाइह, जहा २ रागद्दोसा लहु विलिज्जंति तह २ पयटियव्वं एसा आणा जिणिंदाणं ॥

अर्थ—यहां विशेष कहनेसे क्या प्रयोजन है!

+ दुरा दुरा संगा दुरा संगती, दुरा संगाती प्रघ; गुरूजी तो मण्या मांय, बर्हि जाने ताप.

पल थोडे मेंही समजीये की, जैसे २ राग और द्वेष शिघ्रता (जल्दी) सें कमी होवें. वैसी २ प्रवृत्ती करो! येही श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञा है.

यह आज्ञा विचय धर्म ध्यानमें प्रवेश करनेसे मिथ्यात्वादी अनादी मलका नाश कर, चेतन्य को पवित्र बनाने जलवत है. आधी, व्याधी, उपाधी रूप ज्वालासे जलते जीवको शांत करने पुष्करावर्त मेघवत् हैं. अत्यंत गहन संसार समुद्रसे तारने सफरी झाजवत् हैं. मोह वनचरो के नाशके लिये केशरीसिंहवत बुद्धी वीवेक वढाने को सर्स्वतीवत्. योगीयोंके मनको रमाणे शांत आवास हैं. इत्यादी अनेक गुणोके सागर आज्ञा विचय का चिंतवन धर्म ध्यानी सदा करते हैं.

द्वितिय पत्र-"अपाय विचय"

गाथा: अप्पाणं मेव जुज्झाहिं, किंते जुज्झेण बज्झउ;
अप्पाणे मेव अप्पाणं, जइता सुहमें हए.

उत्तराध्ययन. ९

अर्थात्—श्री नमीराज ऋषि सकेंद्र से फरमाते है की, सुख इच्छको को अपणी आत्मामें रहे हुये दुर्गुणों का प्राजय करना चाहीये. अन्यके साथ बाह्य (प्रगट) युद्ध करने की क्या जरूर है. ज्ञानादी आत्मा

मे कपायादी आत्माके साथ युद्ध करनेसेही आत्मा सुख पाती है.

"अपाय विचय" धर्म ध्यान के ध्याता ऐसा विचारे की, मेरा जीव सदा सुख चाहता है; अनंत भव हुये, सुखके लिये तडफ रहा हूं. अनेक उपाय करते भी अपाय होता है, कोइ मेहनत निर्फल होती है. इसका क्या कारण? यह मेरे उपाय को नष्ट कर मेरे को प्राप्त होते हुये, मेरे पास रहे, अनंत अक्षय अव्याबाध सुखकी व्याघात करने वाला शत्रू है ही कौन? हां! इतना निश्चय तो हुवा की वो शत्रूओं बाहिरका कोइ पदार्थ नहीं है. क्योंकि बाहिर होयतो, मुजे दुःख देने आते हुये द्रष्टी आते. मेरे शत्रूओं तो मेरे घरमें ही घर कर बैठे हैं. [ठीक हुवा दुढनेका प्रयास घटा] आश्चर्य के इत्ने दिन मुजे क्यों नहीं दिखे? पर कहां से दिखे, क्योंकि मै ने, आजतक इनको देखने रूप घर छोड पर घरमें भटकता फिरा और वो अन्दर रहे, मेरे उपायोंको नष्ट करते रहे. अच्छा अब तो मेरी भूल शूधारूं. अंदर रहे बाह्य मित्र और अंतरिक शत्रूओंको अच्छी तरह पहचानने बाह्य द्रष्टी बंद करूं. क्योंकि भगवानने फरमाया है "एक समयमें दो कार्य न होवे" [ऐसा विचार आंख मीच अन्दर अवलोके] अहो! यह

में शत्रु तो बडे जब्बर हैं. इनोंने तो बडा ठाठ पाट जमा रक्खा है.

"मोहकी ऋद्धि"

यह तीन अज्ञान त्रिकोटसे घेरी हुइ प्रकृती का चूरे और चार गति दरवज्जे युक्त 'अविद्या' नगरीके मध्येमें 'असंयम' महल की 'अधर्म' सभामें भ्रष्ट मति सिंहासणपे अति प्रचंड सरीरका धरणहार, मद मेंछका हुवा "मोहो" नामे महाराजा. अनाज्ञा शिरछत्र. और रति अरति दासीयोंके पास हर्ष शोक चमर डुलाते बैठे हैं: यह पाप पोशाकका भलका. अ-व्रत मुकटादी भूपणोका चलका और क्रिया खड्ग मन मुलमली म्यानमें झलकताहैं, जडता ढाल पीछे टल-कतीहैं. यह इनकी मायारूप पटराणी. चार संज्ञा दासीयोंने प्रवर्ग अर्धांगना बनीहैं. १६ काम च कुँवर (पुत्र) ज्ञानावरणीयादी ७ मांडलिक म-राजा, मिथ्यात्व प्रधान, प्रमाद परोहित. राग द्वेष न्यायपति, क्रूरभाव कोटवाल. व्याक्षेप नगर श्रेष्ट, यत्न भंडारी. कुलंगदाणी. निंदक पटेल. कुकर्मीभा- समहून. दंभ दुर्त. पाखंड द्वारपाल इत्यादी मह कर, सभा एक महाभयंकर रूपको धारण करर

है. नगरमें चौरासी लक्ष चोहटे. अनेक सरीर रूप मदनोंमे. विचित्र प्रकृतियों प्रजाका वासेहै. प्रजाजनभी विचित्र स्वभावी है: जरा सत्कारसें फुलजाना और जरा अपमानसे रूस जाना. जरा लाभमें हर्ष और जरा नुकशानमे शोक. इत्यादी विचित्रता धरतेहै मानगजाधीश, क्रोध अश्वाधीश, कपटरथाधीश और लोभ पायदलाधीश वगेरे शैन्यभी विकट हैं इस २ बडा जब्बर शत्रु निकला; मैं इकेला इनका कैसे पराजय करू? और इच्छित सुख वरू; मेरा तो कोइभी नहीं दिखताहै. हे भगवान! अब क्या करू?

"चैतन्यकी ऋद्धि"

इतने वक्त पर मनोकही महात्मा 'विवेक' नामे चैतन्यका परम मित्र हो हाथ जोड बोला कहो चैतन्य महाराजा! क्या फिकरमें पडेहो? शत्रुओं को प्रबल देख मनमें क्यों कायरता लाते? [इन वचनोंसे चैतन्य ने विवेकको आपणा हित जाणा] और जबाब दिया भाई 'बिना शस्त्री पुरुष क्या करसकें?'

विवेक—अहा! महाराजा हो यह क्या कहा

चार करते हो; आपके क्या टोटा हैं! आपकी ऋ
तो इस मोहकी ऋद्धिसे सर्व तरह अधिक है. परिवा
शैन्य निडर और अटल है. परन्तु आप शत्रुके ता
में हो, इसे दिनमें कभी हमारे तर्फ द्रष्टीही नहीं करी
तब हम बेचारे, श्वामीके आदर बिन चुपचाप बैठे.
आज आपने जरा सुद्रष्टी कर, हमारी तर्फ अवलोकन
किया तो सेवक सेवामें उपस्थित हुवा; और अर्ज कर
ता हूं की, आपके परिवारकी खबर लीजीये, सब
को संभालके हुशार कीजीये, और फिर आप हुकम दी
जीये. की फिर मोह जैसे केइ शत्रूओंको क्षिणमें न
कर आपका इच्छित करें!

इत्ना सुणते ही चैतन्य कों धैर्य आइ, और क
हने लगा, प्यारे मित्र! मेरा परिवार मुजे बता.

विवेक—यह देखीये आपका तीन गुप्ती नि-
कोटे से घेरा हुवा दान, सील, तप भाव दरवजे युक्त
यह 'श्रद्धा' नगरके मध्यमें संयम मेहलकी धर्म शभामें
सुमति' सिंहासन, जिनाज्ञा छत्र, और सम सम्वेग
मर कर शोभता हैं. शुभ भाव सेठीये पुण्य दुकानो
ऋधी सिद्धी युक्त बैठे. सुकिया बेपार कर रहे हैं. और
बहूत परिवार आपका है. सो शहरमे प्रवेश किये
लेगा; परन्तु हुशारीके साथ प्रवेश करिये. क्यों कि

क्त्व प्रधान, उद्यम-प्रोहित, उपशम शेन्याधीश, शांत-भाव-कोतवाल, शुभ भाव-नगर श्रेष्ट, विज्ञान-भंडारी, धर्मागमसे भंडार भरपुर, सत्संग-दाणी, व्यवहार पटेल. गुणीजन—भाट. सत्य दूत. न्याय-द्वारपाल. मन निग्रह-अश्वाद्दिप, मार्दव-गजाद्दीप, आर्जव-रथाद्दीप,और सं-तोप-पायकाधीप, इत्यादी को यथा योग्य पद पे स्थ-पन्न कर, चैतन्य माहाराजा आनंद से राजकरने लगे. परन्तु मोह के प्रबल प्रताप रुप छाप उनके हृदय में चमक रही थी.

एक दिन सभामें बोले की, मेरे प्यारे मंत्री-सामंत गणो! में आप के संयोग से बहुत आनंद पा-याहू-तथापि जब तक मोह शत्रू नष्ट न होगा. तब तक मूजे पूरा सुख हुवा नही मानता हूं. इस लिये मोह के नष्ट होनेका अव्वल प्रयत्न किया चहाता हूं. इस सुणतेही विवेकादी सर्व, नम्रतापुर्वक बोले, नाथ की जीये शिघ्र सजाइ. चलिये अब्बी एक क्षिण में मोह का नाशकर, अपका इष्टितार्थ सिद्ध कर, सर्व सुखी ब-नीये. चैतन्य का हुकम होतेही सब सुभटो मोहके प्राजय की सजाइ करने लगे.

यह समाचार प्रणाम रूप सुभट द्वारा मोहो नृपने पयेकी, चैतन्यने श्रद्धा नगरीको संयम मेहल यु-

क तावें में कर, खूब ठाट जमाया हैं. और आपको प्राजय करनेकी तैयारी कर रहा हैं. इत्ना सुणतेही मोहो क्रोधातुर हो बोला, देखो मेरे प्यारे मित्र सामंतो! अनंत वक्त चैतन्य को मना किया की, तूं यह ढोंग मत कर. परंतु बेहया (निरलज्जा) इत्नी २फजीती होतेभी नहीं शरमाता है. चलीये उसे जरा स मजा, कैद करें, अपने तावेंमें करें. इत्ना सुणतेही मोहके पाखंड सेवकने कूबोध भेरी वजाके शैन्य.को हुशार करी, सब सेवक चौंक उठे. और अपनी २ सजाइ सजीं मद मस्त वाले अभीमान हाथी, चंचल चपल मन अश्व, रंगी बेरंगी झणणाट करते कपट रथ. और अतिबलिष्ट लोभ पायदलों के समोह से प्रवरे, तमश वक्तर पेहन, कूक्रिया शस्त्र धार, तीन कूलेश्या रूप काले, नीले, हरे, निशाण फर्राते कूअलाप वाजिंत्रों के झणकारसे गगन गर्जावते, कर्मोदय मोहूर्त में प्रयाण कर. कर्म रोहण मार्गपे आ. मोह महाराजा स परिवार खडे हुये.

मोह की शैन्या देख -अध्यवशाय सन्धीपाल- चैतन्य के पास आ के अर्ज करने लगे, की हे स्वामी! हम दोनो पक्ष का भला चहाते, है और चेताते हैं की "मोह नृप बहुत प्राचीन भूप है. आप जैसे तरुण महाराजाको, उनका अपमान करना योग्य नहीं है. आप

जानते हो, उनकी शैन्यका प्रबल प्रताप की, तीनहीं लोकको तावे कर रक्खा है. उनसे आपकी जीत होनी मुशकिल हें; वक्तपे ऐसा न हो की, आपकी शैन्य उन में मिल जानेसे आपका अपमान होय, और राज भी जाय! इस लिये आप सन्मुख जाके सन्ध कर लीजीये. वृद्धो की सेवामें अपमान न समजीये.

यह सुण चैतन्य हँस के बोले मै सब समजता हुं. जहां लग सिंह गुफामें निद्रिस्थ रहता है वहां तक ही वनचरो को उन्माद करनेका अवकाश मिलता हे. समजे! बहुत कालके उडते धूलेकों, क्षिणिमें मेघ दबा देता हे! मेरे बिन उस मोहको पहचानने बाला दूसरा हे ही कोन? इत्ने दिन गम्म खाई, यह मेरी भूल हुइ अन्यायीकी पयमाली करनाही हमारा कर्तव्य हें!! क्या तुम नहीं जानते हो, मै मोहके तावेमे था, जब मेरी कैसी फजीती करी हें. उसका क्षिण २ मुजे स्मरण होता हे, अब मैं मूर्ख न रहा की, पीछा उसकें तावेमें हो, फजीती करावूं! इत्ने दिन मेरे परिवारकी मुजे पहचान नहीं थी. पर विवेक मंत्रीश्वरका भला हो. इस दुःखसे छोडने, उनोने मुजे युक्ती और सामुग्री व ताइ. मै मोहके सन्मुख हो, नष्ट करने तैयार था. अच्छा हुवा की वो सामे आगया. जरा तुम खडे रहो

मेरी शैन्याका पराक्रम देखीये. की त्रिलोक पूज्य मोह महाराजा की क्या दुर्दशा होती हैं. इत्ना कह चैतन्य रायने सद्गुरु सुभटके पाससे, सद्बोध भेरी बजवाके शैन्य सज कराइ. उसी वक्त शांत रसमें भरे हुये मन निग्रह अश्व, वैराग्य मदमें घुमते हुये मार्दव गज, सरलतासे शोभित आर्जव रथ. और सदा त्रप्त संतोष पायदल, चतुरंगणी शैन्य; क्षमा बक्तर, तप रूप अनेक शस्त्रसे सज हो, स्वध्याय रूप नगारे घुर्राते भजन रूप सणणाइयों सणणाते. वैराग्य पंथमें आगे बढते तीन, शुभ लेश्या रूप लाल, पीले और श्वेत, निशाण फर्राते, गुणस्थान रोहण रणांगणमें आ खडे हुये.

दोनो मालिको का हुकम होतेही संग्राम सुरू हुवा, मोहकी तर्फसे 'मिथ्यात्व मंत्रीश्वर' पच्चीस उमराव और अनंत सुभटोंके साथ, चैतन्य का सामना कर, कहने लगे, क्योंरे चैतन्य! तुजे मेरे त्रीलोकव्यापी प्राक्रम का विस्मरण होगया दिखता हे. तेरी अनंत वक्त ख्वारी करी तोभी बेशरम, लडने तेयार हुवाहे. देख अब्बी एक क्षिणमें तुजे तिन बाणसे पतन कर पातालमें पहोंचाता हूं. कूदेव कुगुरु कुधर्म, कुशास्त्र, ये मेरे सेवकोंके हाथ फजीती कराता हूं. ऐसा परम्पकाट करता, बाण सेंच खडा हुवा.

तब चैतन्यसे विवेक बोला देखीये श्वामी यह मोहका मानेता प्रधान मिथ्यात्व है, यह सम्यक्त्व प्रधानजीकी द्रष्टी मात्रसेही मर जायगा. इसके मरनेसे मोहकी सब शैन्य स्थिल होजायगी, और अपनी श्रधा नगरी निर्विघन होजायगी. यह सुन 'सम्यक्त्व' मंत्रश्वर पांच समकित महा जोधें और शैन्य साथ मिथ्यात्वके सन्मुख हों. तत्वातत्व विचार रूप वाण छोडतेही मिथ्यात्वका सपरिवार नाश होगया. चैतन्यकी शैन्यमें जीत नगारा वजा. और मोह तो अति वलिष्ट मंत्रीके वियोगसे अत्यंत खेदित हुये. तब 'अवृत्तराय' मोहसे बोले. आप फिकर न कीजीये. अब्बी मै प्रधानजीका बदला लेता हूं. विचारा चैतन्य, मेरे आगे क्या करेगा. ऐसा कहे, चार उमरावोंके साथ चैतन्यके सन्मुख आ कहने लगे. रे! चैतन्य ऐसे तेरे लोगोंको मैंनें बहुधा नष्ट किये तो भी तूं लाने होता नहीं शरमाता, आ देख मजा.

तब चैतन्दसे विवेक बोले इसे जीतने स्मर्थ अपने सर्व वृतिराय हैं. वो इसका क्षिणमें नाश कर संयम मेहलको निर्विघन कर देंगे. यह सुण 'सर्व वृत राय' तेरे चारित्र और अनेक शुभ प्रणाम सुभटोंसे प्रवरे. वैराग्य वाणके वृष्टीसे अव्रत जी काल धर्म

प्राप्त हुये, चैतन्यकी जीत हुइ, और मोह तो अत्यंत दिलगीर हो कहने लगे की, अबके चैतन्यसे फते पानी मुशकिल हैं. तब 'प्रमाद सिंघजी' हंसते २ बोले. ऐसे ढोंग चैतन्यने केइ वक्त किये है. मैने ⁻ ारी महा मुनीयोंको भी नर्कगामी बना दिये इस बिचारे की क्या गिननी! दक्षिणके बइल वायू बिखेरता हे. त्योंमें अभी चैतन्दकी सब शैन्य भगा देता हूं, ऐसा गरुर करते, पांच उमराव, और केइ शुभटों से परवरे, चैतन्य सन्मुख हो कहने लगे. के अब मेरे आगेसे भगके कहां जायगा. तेरे घमंड को अभी नष्ट करता हूं. तब विवेक बोले, इनको भगाने उपशम रावजी स्मर्थ हैं, के उपशमराव तुर्त पंच अप्रमादरूप पांच उमराव और केइ सुभटों साथ. प्रमादके सन्मुख हुवे. प्रणाम धारा रूप गोलीयोंके वर्षाद से प्रमादका पतन किया, की चैतन्य ध्यानमें लीन हो सुखी हुवे.

मोह, प्रमाद रावका मृत्यु सुन, होंस हवास भूल गये. तब कामदेव बोले, पिताजी मेरे जेसे प्राक्रमी पुत्र आपके होतें आप फिक्र क्यों करते हो, अभी बातही बातमें चैतन्यको कब्जमें कर लाता हूं. कंवर साहेब के यह वचन सुन स्त्री, पुरुष, और नपूं-

शक यह तीनही उमराव खडे हो कहने लगे की हम कुँवर साहेबके मदतमें जाते हैं. चैतन्यका घमंड एक क्षिणमें गमाते हैं. तब अश्वाधिप क्रोधजी, खडे हो धमधमायमान होते बोले. किसने जननी का दूध ए-चाया की है की, जो मेरें सन्मुख खडा रहे. क्रोध राग-द्वेष, कलह-चंड, भंड विवाद यह सुभटके सामे टिके तब गजाद्विप अभीमानजी बोले, मैंनें केइ वक्त चैतन्यको हीन दीन, बना दिया है, क्या अविनय मान मद, दर्प, स्थंभ, उत्कर्ष, गर्व, यह मेरे सुभटोंका प्रा-क्रमी कमी है. तब रथा द्विप कपटजी कहने लगे मै ने-चैतन्यको केइ वक्त लेंगे, लुगडे, चुडीयों पहनाइ हैं, अब क्या छोड दूंगा. माया, उपाधी, छली, गहन, कूड वंचन, यह मेरे सुभट कम प्राक्रमी है क्या.? यों यह तीनही स-परवार, कामदेवके साथ हुये, इनसे काम-देवका ठाठ सबसे अधिक हुवा, अनुराग रणसिंग्घा बजाते. एकदम चैतन्यपे विषय रागरूप बाणोका व-र्षाद सुरू किया, क्रोधजी ज्वालामय बाण छोडने लगे, अभीमान जी स्थंभन विद्या डाली, दगाजी गुप्तरीत क्षय करने प्रवृत हुये; यह अविनाश एकदम जुलम होता देख, चैतन्यसे विवेक बोले आप घबराइये नहीं: शांती ढालकी ओटमें विराजे रहो. कामदेवको निर्वेद

राय, क्रोधका क्षमाचंद्र, मानका मार्दव सिंह, दगाका अर्जव प्रसाद, एक क्षिणमें नाश कर डालेंगे. इत्ना सु णनेही सर्व राजिंद्रो सजहो १८००० सिलांग रथ के झणझणाट करते सन्मुख हुवे. नववाड संग्धीन शैन्यके कोटसे घेरे हुये, वैराग्य वाणो की मेघ धारा परे वृष्टी होतेही, कामदेव मृत्यु पाये. उनके तीनही उमराव भ ग गये. उदर क्षमाचंद्रने क्रोधका, मार्दव सिंहने मान का, और अर्जव प्रमादने दगाका नाश किया. चैतन्य-की शैन्यमें जय २ कार हुवा. चैतन्य निर्विपयी वन शांत सरल हो पर्मानंद भोगवने लगे.

मोह नृप, प्यारे पुत्र और तीनो बलिष्ट उमरा-वोकी मृत्यु सुन मूर्छा खागये. हाय त्रहा करने लगे. लाल आंख कर कहने लगे. अब मै खुदही चैतन्य का नाश करूंगा! तब 'लोभ राय' बोले आप जैसे महाराजाको, चैतन्य जैसे बच्चे के सामे जाना लाजम नहीं है, मैंने एक उपाय विचारा है, वो यह है की चै तन्य को 'उपशम मोह' नामे किल्ला देनेका लोभ दे-वो, उसमें गया की उसमें गुप्त रहे हुये अपने सुभट उसकी सब शैन्यका नाश कर, आपके तावेमें कर देंगे. यह सल्ला मोहको पसंद पडी. और कहा जल्दी करो. की तुर्त लोभचंद्र सज हुये. उन्हके साथ हांस, रत्य,

अरत्य, भय, शोक, दुगछा यह उमरावो सपरिवार सज हो चले.

चैतन्यकी आज्ञा ले विवेक चन्द्र धर्म सभामें अपने सर्व मंडलिक और सामंत सुभटोंकी सभा कर कहने लगे. भाइयों! अपना बहुतसा काम फते होगया. और जो कुछ रहा है. वो थोडेमेही पार पडनेकी आशा है. परन्तु गुप्त एलची द्वारा खबर मिली है की उपशम किल्लेमें मोहने गुप्त सुभटो बेठा रखे हैं. इस लिये किसीभी लालचसें ललचा, उस किल्लेमें कोइभी प्रवेश मत करना. रस्ते के सर्व उपसर्ग अडग पणे सहे, क्षिण कषाय किल्लेमें प्रवेश करें की, जिससे मोहका एक क्षिणमें पराजय करे, इच्छित काम फते हो. यह विवेक का बोध सबने सहर्ष बधा लिया. और तुर्त स जहो क्षिणमोह किल्लेकी तर्फ प्रयाण किया.

रस्तेमें 'लोभचन्द्र' मिल गये. और मधुरतासे कहने लगे, अब क्यों भगते हो, हमारा सत्यानाश तो तुमनें मिला दिया. अब सब तुमाराही हैं, डरो मत! यह 'उपशम कषाय' किल्ला तुमाराही हें. इसमें वे फिकर रहो. मोह रायतो बेचारे चुपचाप बैठे हें. अब तुम्हारा नामही नहीं लवेगे.

इन सब दगोसे विवेक ने अकलही —

किये थे. इस लिये लोभके मिठे वचनसे कोइ ठगा-
ये नहीं, और आगे चलने लगे. तब लोभचन्द्र असुरत्र
हो सपरिवार सामे हुया, अरे दुष्टो! मेरें भाइयोंको मार
कहां जाते हो, अब मे तुमें छोडने वाला नहीं!! यों
कहे सर्व शैन्य युक्त चैतन्यकी शैन्य पर. इच्छा त्रष्णा मु-
र्च्छा,कांक्षा गृधता आशा इत्यादी बाणोंकी वृष्टी कर
ने लगे, की उसही वक्त चैतन्यने क्षायिक बाणोका प्रहार
कर लोभका सपरिवार नाश कर. वे फिकर हो क्षिण
कषाय किल्लेमें भराके परमानंद पाये.

लोभचंद्रका सपरिवार नाश कर क्षिण कषाय
किल्लेमे चैतन्यने निवास किया है. ऐसी मोह कों खबर
होतेही सतंगे ढिले पडगये. जीतनेकी आशातो दूर
रही, परंतु इज्जत और जान बचना मुशीबत हो गया.
तो भी मानके मरोडे आप खुद चैतन्यका प्राजय क
रने खडे हुये. तब ज्ञानावरण आदी सात महा मंड-
लिक राजा, अपने असंख्य दल बलले साथ हुये. सब-
साथ चैतन्यकी तर्फ चले.

यह चैतन्यको खबर होतेही क्षायिक सम्यक्त्व
क्षायिक यथाख्यात चारित्र, यह महा पराक्रमी रा-
जाओंके साथ, करण सत्य, भाव सत्य, योग सत्य, व
गरेसे सज हो विरागी. अकषायी, शस्त्र ले. संपूर्ण

संवुडता रूप चारो तर्फ वंदोवस्त कर, संपूर्ण भविता त्म रूप मद छक हो. महाज्ञान वार्जित्रोंके झणकार सें, महाध्यान निशाण फर्राते, महा तप तेज कर दीपते, अमोह अविकारी पगे. अपडवाइता द्रढताधार. क्षपक श्रेणि रूप चोगाननें सव परिवारसे परवरे खडे हुवे

चैतन्यको ऐसे ठाठसे सामे खडा देख, मोह मद छक हो वोला, रे चैतन्य! तूं मेरे घरमें वडा हुवा, अनंत काल मेरी सेवामें तुजे हुवें, निमक हरामी! अव मेरे सेही लडने तैयार हुवा, यह तुजे जो ऋधि प्राप्त हुइ हैं. सो सव मेराही पुण्य प्रताप हैं; ऐसी २ ऋद्धि तुजे पहले केइ वक्त मिली, ओर तूं केइ वक्त मेरा सामना किया. अनंत वक्त तेरी मैंने ख्वारी करी. तो भी तूं नहीं शरमाय ओर सव वीती भूल, मेरा सामना कर ता हैं. लिहाज कर २ शरना आवतो जरा!!

चैतन्य—हांजी मेरी लाज को गमा, अनंत का लसे मेरी फजीती करनेवाले आपको अव मैंने पेछाने, तवही मुजे लिहाज पैदा हुइ. तवही तुमारे सर्व परिवार का नाश कर तुमारे सामे अटल खडा हूं. तुमे भी मरनेका शोक हुवा हैं. जो सवका नाश देखतेही मेरे सामे आये हो. तो संभालिये. इतना कहतेही चैतन्यने मोहके मस्तकों क्षायिक खड्ग का प्रहा

मोहका नाश किया. उसी वक्त ७ मंडिकोमेंसे ज्ञाना-
वरणिय, दर्शनावर्णिय, और अंतराय इन तीनोका स्व-
भाविक नाश होगया. उसी वक्त आकाशमें सव देवता
ओंनें जय २ कार किया. श्रेष्ट द्रव्यकी वृष्टी करी. देव
धुंदवी वजने लगी. चैतन्य महाराज को कैवल्य ज्ञान
कैवल्य दर्शन रूप महा ऋधी की प्राप्ती हुइ. और
तीनही लोकमें चैतन्यकी आण दुवाइ फिर गइ. सर्व
जक्तके वंदनिय पूज्यानिय चैनन्य महाराजा हुवे.

विवेक मंत्रीश्वर की सल्लासे, चैतन्य रायका स
ब काम सिद्ध हुवा जाण, सव परिवारसे संयम मेहल
में परमानंद भोग लगे, एक दिन विवेकचन्द्रजी बोले
स्वामी आपके इष्टितार्थ सिद्धीसे मे वडा खुश हुवा.
हूं. और आप सर्वज्ञ सर्व दर्शी हूये. इस लिये मे आ-
पको किसी प्रकार सल्ला देनेभी असमर्थ हूं, आप जा
नते ही होके आपके चार शत्रू आपसे मिले हुये हैं.
उनकाभी कूछ विचार ?

चैतन्य महाराजा बोले कुछ विचार नही. वो
वेचार नीवल होके पडे हैं, और वो जो कुछ करते हैं, सो
जग जीव का भला होवे, वैसाही करते हैं. मुजे उनसे
कुछ हरकत नही हैं. आयुष्य, नाम, गोत्र, और साता
वेद निया, ये सव एक आयुष्य के आधारसे टिके हैं.

और आयुष्य तो वेचारा स्वभाव से ही क्षिण २ में क्षय होता हैं, सर्वथा क्षय हुवा की, बाकी के तीनही उस के सात क्षय होजायेंगे; की फिर अपन सीधे शिव पूर में जाके, अजर, अमर, अवीकार हो; अक्षय, अनंत, परमसुख के भुक्ता वनेंगे.

अपाय विचया नामे धर्म ध्यान के दूसरे पाये के ध्याता, अनंतकाल से आपय करने वाले, कर्मशत्रू ओंका नाश करने का विचार, एकाग्रतासे तथा भृत-हो चिंतवनाकरें. और कर्मवृधी के कामोंसे निवृती भाव धारनकर, आत्मा सुख के उपायमें संलग्न वन, मौक्ष मार्ग मे प्रवृतनें सामर्थ्य वने वो कोइ कालमें सुखके भुक्ता जरूरही होवेंगें.

तृतीय पत्र-"विपाक विचय"

हा! हा: क्या आश्चर्य कारक इस जगतका व नाव द्रष्टि आता है. जीव जीव सब एकसे हो, कोइ सुखी तो कोइ दुःखी, ऐसेही, नीच, ऊंच, मूर्ख विद्वा न, दालिद्री श्रीमंत, वगैरे विचित्र रचना दिखती है. इसका क्या कारण? जीव अपना आपही तो बूरा न करे! इस लिये बुरे उपाय कराने वाला, जीवके साथ दूसरा भी कोइ है? दूसरा कौन है? (जरा विचार

कर) हां, जो अपाय विचय में विचारसे पेछाना था सोही, अंदर रहा हुवा कर्म रूप शत्रु हैं. वो दो प्रकारके विपाक उत्पन्न करता है. (१) अशुभ कर्म रूप कडुवा और (२) शुभ कर्म रूप मीठा. शुभ कर्मके फल भोगवने जीव मजा मानता है. जिससे अशुभ बंध होता है. और दुःख भोगवता है. यो अशुभका क्षय होने शुभकी वृधी होती है. ऐसा गाडी चियस की तरह यह सिलसिला अनादी काल से चलाही आता है.

अब शुभाशुभ कर्मों उपराजन करनेकी रीती शास्त्रानुसार विचारनेकी आवश्यकता है. की कौनसे कर्मोंसे जीव सुख पाता है. और कोनसे से दुःख पाता है.

१ प्रश्न-श्रोत इंद्रीकी हीनता कायसे होय? उत्तर-विकथा श्रवण कर खुश होय, सत्य को असत्य और असत्यको सत्य ठहराय, बधीर (बेरे) की हांसी करे, चीडावे. अन्यको बधीर बनाने उपचार करे, दीन गरीबोंके करुणा मय शब्दो अर्जीपर ध्यान नहीं दिया, सद्बोध शास्त्र श्रवण न करे. इत्यादी कर्मों करनेसे बधिर (बेरा) होवे. कानका रोगिष्ट होवे. तथा चौरिंद्री रूप पावे.

२ श्रोत इन्द्रिकी प्रबलताकायसे होय? उ.-शास्त्र और सूकथा श्रवण करे. यथातथ्य (जैसा का वैसा) श्रधान करे, बधीरोंकी दया करे. यथा शक्त सहाय करे, दीनोकी अर्जपे गौर कर मिष्ट वचनसे संतोषे, गुणीयोके गुण सुण हर्षावे, निंदा श्रवण नहीं करे तो श्रोतेंद्री (कान) निरोग्यता सुन्दरता तिक्षश्रुता पावे, तथा पांचेंद्री पणा पावें.

३ प्र.-चक्षू इन्द्रिकी हीनता कायसे होय? उ.-स्त्री पुरुषके सुन्दर रूपको देख विषयानुराग धरे, कू रूपा देख दुर्गच्छा निंदा करे, अन्धोकी हँसी करे, चि डावे, मनुष्य पशूकी आँखोको इजा करे या फोडे. कु-शास्त्र व पुस्तक पत्र आदी पढे, नाटकादि अवलोकन करे, नेत्रके विषयमें आशक्त होनेसे या करूर द्रष्टीसे देखनेसे नेत्रकी कुचेष्टा करनेसे अन्धा, काणा, चीपडा वगैरे नेत्रका रोगी होवे, तथा तेंद्री पना पावे.

४ प्र.-चक्षु इन्द्रिकी प्रबलता कायसे पावे.? उ-साधू साध्वीयोंके दर्शनसे हर्षावे, धर्मानूराग धरे, वि. षय जनक रूप देख तुर्त द्रष्टी फेरले, नेत्रके रोगीयोंकी दया करे, सहायता करे, सत्साख्र व पुस्तक पत्रोंका पठन करे, विषयसे नेत्रवशमे करे, तो निरोगी सतेज, मनहर, दीर्घ विषयी आँखो पावे.

द्री पणा पावे.

८ प्र-रस इन्द्रिकी निरोगता कायसे पावे? उ-अभक्ष त्यागे, रस ग्रधी नहो. सद्बोध कर धर्म फैलावे सदा गुणोंकाही उच्चारण करे, सर्वको सुखदाता बोले रसना हीनकी सहायता करे, तो रसनाका निरोगी, मधूर अलापी होवे.

९ प्र-हस्तकी हीनता कायसे पावे? उ-अन्यके हस्त छेदन करे, खोटे तोले मापे वापरे, खोटे लेख लिखे, कूशास्त्र वणावे. चोरी करे, लूले (हस्त रहित की) हांसी करे, दूसरेका छेदन, भेदन, मारताड करे पक्षीयोंकी पांख काटे. तो लूला (हाथ रहित) होवे.

१० प्र-हस्तकी प्रवलता कायसें होय? उ-दान देवे, खोटा लेन देन नहीं करे, खोटे लेख नहीं लिखे, अच्छे धर्मवृधीके लेख लिखे, विनादी वस्तु ग्रहण नहीं करे, हस्त हीनकी सहायता करे, तो निरोगी वलिष्ट हाथ पावे.

११ प्र-पांवकी हीनता कायसे होय? उ-रस्ता छोडके चले, हिंसादी पाप कर्मोमें आगे वडे, धर्म कार्यमें पीछा हटे, कच्ची मही, पाणी, हरी, कीडीयादीकों पांवसे दावे, चांपे, अन्य छोटे वडे, जीवोंके पांव तोडे लंगडे पांगले, की हंसी करे चोरी जारी आदी कूदा

र्यमें प्रवृते तो पांव हीन लंगडा पांगला होवे.

१२ प्र-पांवकी प्रबलता कायसे पावे? उ-कूरस्ते जावे नहीं, अन्य जातेको वचावे. सजीव पदार्थपे पांव न दे, लंगडे पांगुलेकी सहायता करे, तो निरोगी-बलिष्ट पांव पावे.

१३ प्र-निर्धन (दरिद्री) कायसे होवें? उ-चोरीसे दगासे, धूर्ताइसे. ठगाइने, जुल्मसे हिंशकारी कूवेपारसे द्रव्योपारजन करे, (धन कमावे) धनेश्वरोंपे द्वेष करे, उनको निर्धन बनाना चहावे, मेहनतसे स्वल्प-धन कमाया उसे लूटे, घर, अन्न, वस्त्र, से दुःखी करे, गरीबोंको वाक्य प्रहार करे, झूटा आल दे फसावे. अजीविकाका भंग करे, तथा साधू होके धन रक्खे, दूसरेके कमाइमें अंतराय दे, थापण दबावे तो निरधन होवे, और किसीका धन अग्नीमें जलावे तो उसकाभी आग (लाय) में जले, पानीमें डुबावे तो झाजादी पाणीमें डूबे. इत्यादी जिस तरह दूसरे के द्रव्यका नाश करे, वैसेही उसके द्रव्यका नाश होवें.

१४ प्र--धनेश्वरी कायसे होय? उ-निरधनों (दारिद्रियों) की दया करे, उनकी सहायता करे, अन्यकी द्रव्यवृद्धी देख हर्षावें. प्राप्त द्रव्यपे ममत्व कम करे, दान, पुण्य धर्मोन्नती, अनाथोंकी सहाय इत्यादी सूक्ष

त्योंमें द्रव्य लगावे तो धनेश्वरी होवें.

१५ प्र-अपुत्र्या कायसे होवे? उ-पशु, पक्षी, और मनुष्यादीके अनाथ बच्चोंको या यूका (ज्यूं) लीखों को मारे, अन्डे, फोडे, पुत्रवंतोंपें द्वेष करे. गाय, भेंस, आदी बच्चोंको दूध पीते खेंच ले. वेंच दे. विछोहा पडावे. बीजोंकी मींजी निकाले. तो अपुत्र्य (पुत्र रहित होवे.

१६ प्र-पुत्रवंत कायसे होवें? उ-पशु, पक्षी, मनुष्यादी के अनाथ बच्चोंका रक्षण, पालण कर, जन्म निर्वाह करने जैसे बनावे तो बहुत पुत्रवंत होवे.

१७ प्र-कुपुत्र कायसे होवे? उ-अन्यके पुत्रोंको कूबुद्धी दे के माता पिता का अविनय करावें पितापुत्र का झगडा देख खुश होवे. फूट पडावे. अपने माता पिता को संताप देवे, तथा ऋण और थापण डूबावे, तो उसके कपूत (अविनीत) पुत्र होवें.

१८ प्र-सूपुत्र कायसे होवें? उ-आप माता पिता की भक्ती करें, अन्यको करनेका बोध करें.* पुत्रोंको धर्म मार्गमें लगावें, सूपुत्र देख हर्षावे तो सूपुत्र्या होवें.

---

* उववाइजी सूत्रमें फरमाया है जो माता पिता की भक्ता करनेसे १४ हजार वर्षके आयुष्य वाला देव होवे.

१९ प्र-कू भारज्या कायसे मिले? स्त्री भरतार के आपमें क्लेश करावें, उनके झगडे देख हर्षावे. स्त्रीको भरमावे, विभचारणी बनावे, सतीयोंकी निंदा करे कलंक चडावे. अन्यकी अच्छी स्त्री देख दुःखी होवे, तो कूस्त्री मिले.

२० प्र-सुभारज्या कायसे मिले? आप सीलवंत रहे विभचारणीके प्रसंगमें वृत न भांगे,विभचारणीको सुधारे सतीयोंकी परसंस्या ओर सहायता करे. स्त्री भरतार का विरोध मिटावे तो अच्छी स्त्रीका संयोग मिले.

२१ प्र-अपमानी(मानहीन)कायसे होय? उ-अन्य का मान खंडन करे, माता पिता गुरू आदी वृधोंका विनय न करे. गरीब, निर्बुद्धियोका निरादर करे, शत्रूओंका अपमान सुन खुश होय, अपने मुखसे अपनी परसंस्या करे. अपने गुणका अहंकार करे, गुणवंतोका द्वेष करे, गुणवंतोको वंदना न करे. दूसरेको मना करे, स्वछंदे चले, तो अपमानी होवें.

२२ प्र-सन्मान कायसे पावे? उ-तिर्थंकर, साधु साध्वी, श्रावक, श्राविका, सम्यकद्रष्टी, ज्ञानी, गुणी, धर्मदीपक, इत्यादी महाजनोंके गुणग्रामकरे, गुणदीपावें. जेठोकाविनय भक्तीकरे, कीर्तीसुणहर्षावें, वंदनाकरे करावे. गुणीजनहो गुणोंको छिपावें, सदानम्ररहे. तो

सर्व स्थान सन्मान पावें.

२३ प्र-क्लेशी कुटम्ब कायसे मिले? कुटम्बमें झग डा करावे. क्लेश देख हर्ष पावे तो, क्लेशी कुटम्ब मिले.

२४ प्र-अच्छा कुटम्ब कायसे मिले? कुटम्बसें सम्प करावे. निरद्रव्य कुटम्बोकी सहायता करे. कुटम्बसें संप देख हर्षावे तो सुखदाइ कुटम्ब मिले.

२५ प्र-रोगिष्ट कायसे होवे? उ-रोगीयोंको संता पे, निंदा करे, हँसी करे, औषध दानकी अंतराय दे, रोग वढाने अशाता उपजानेका उपाय करे, साधूवोके वस्त्र मलीन देख दुगंछा करे तो रोगीष्ट (रोगीला) होवे.

२६ प्र-निरोगी कायसे होवें? उ-दीन दुःखी यों को रोगीष्ट देख दयालायें, सुख उपजावें. साधू साध्वी को, औषध दानदे, ते निरोगी होवे.

२७ प्र-क्रूर स्वभावी कायसे होवे? उ-कू संगतसे खुश रहे, सत्संगसे अलग रहे, वात २ में संततहो, तथा नर्क गतिसे आय हो सो. क्रूर स्वभावी होवे.

२८ प्र-मिळापू कायसे होवे? उ-साधू के दर्शन से प्रसन्नहो, कूसंगत्यागे, कूवचन सुन धैर्य धरे, प्राप्त वस्तुमें संतोष धरे. तथा देवगतीसे आय हो. सो सू-स्वभावी (मिलपू) होवे.

२९ प्र-पापात्मा कायसे होवे? उ-लोकोंकों धर्म

से भृष्ट करे, सत्धर्मकी निंदा करे, कू धर्म की महीमा करे. अधर्मीयोंकी संगत करनेमे पापात्मा होवे.

३० प्र-धर्मात्मा कायसे होवे? उ-अधर्मीयों को धर्मी वनावे, धर्मोन्नती तन धनसे करनेसे.

३१ प्र-निर्वल कायसे होवे? उ-दिन,गरीबों को सताये. अन्न वस्त्रकी अंतरायदे, निर्वलको दबावे, झगडाकरे. वध. बंधनकरे, अपने वलका अभीमान करे तो निर्वल होवे.

३२ प्र-वलवंत कायसे होवे? उ-दीन, अनाथ जीवोंकी दया कर साता उपजावें. संकटमें सहाय करे, अन्न वस्त्रादी प्रदान करे. तो वलवंत होवे.

३३ प्र-कायर कायसे होवे? उ-अन्य जीवकों भय उपजावें, धस्का पाडे, इज्जतलूंट, राज, पंच, चोर, सर्प, विप, अग्नी, पाणी, देव. भुत इन भयंकर वस्तुओं के नामलें, दूसरे कों भय भीतकरे, पशुओं को त्रासदायक वनावे व चमकावें, उन्हे देखहर्पावे, सो कायर होवें.

३४ प्र-सुरवीर कायसे होवे? उ-दीन, दुःखी, अपराधीको अभयदानदे, भयसे वचावें उपद्रव मिटावे, सो सूरवीर होवे.

३५ प्र-कृपण कायसे होवे? उ-छत्ते द्रव्य (धन-

होते) दान नदे, दूसरे कों देतां मना करे. देतेको देख दुःखीहोवें, दानकी निंदा करें अत्यंतत्रष्णवंता, सो कृपण होवे.

३६ प्र-दातार कायसे होवे? उ-गरीबी(दरिद्रता) होतेभी दान दे, दूसरेको देते देख खुश होवे, समर्थ हो दीन. दुःखीकी सहायता करे, सदा दान देनेकी अभीलापा रक्खे धर्मोन्नती सुन हर्षाय, सो श्रीमंत हो, दातार होवे,

३७ प्र-मूर्ख कायसे होवे? उ-विद्वानो पंडितोकी हँसी, मस्करी, निंदा, अविनय, अशातना करे, ज्ञान प्रसारकी अंतराय दे, ज्ञानके उपकरण पुस्तकादी नाश करे, ज्ञानपे अरूची करे. ज्ञान चोरे, सत्य शास्त्र को झूटे बनावे, और झूटेको सच्चे बनावे. तो मूर्ख होवे.

३८ प्र-पण्डित कायसे होवे? उ-विद्यादान दे, विद्याप्रसार में धन, तन, का व्यय, करे, विद्वानोकी महिमा करे, धर्म पुस्तकोका मुफतमें प्रसार करे, सो पंण्डित होवे.

३९ प्र-पराधीन कायसे होवे? उ-अन्यको बंदीखानमें डाले, बहुत मेहनत करा थोडी मजूरी देवे. कर्जदारोका घर लुटे. इज्जत ले. कुटम्ब को, नोकरो को, अहार की अंतराय दे, जबरदस्तीसे काम करावे,

पशु पक्षीको वाडेमें, पिंजरेमें, रोक रक्खे, दूसरेको प-राधीन देख खुशी होवे. दूसरेकी स्वाधीनता नष्ट करे सो पराधीन होवे.

४० प्र-स्वाधीन कायसे होवे? उ-कुटम्बको, नोकरोको संताप न दे; अहार, वस्त्र, स्थानकी साता दे, शक्ती उप्रांत काम नहीं कराय. मनुष्य, पशु, पक्षी, आदीको वंदीखानेसें छोडावे, स्वाधीन करे, अपणा स्वछंदा रोकके गुरूके च्छंदे, (हुकममें) चले, सो स्वाधीन स्वतंत्र होवे.

४१ प्र- कुरूप कायसे होवे? उ-आप रूपवंत हो अभीमान करे, दूसरे सुरूपवंतोंकी निंदा करे, कुरूपोंकी हाँसी अपमान करे, आल चडाय शृंगार वहुत सजे, सो कूरूपी होवे.

४२ प्र-सुरूप कायसे पावे? उ-सुन्दर होके भी अभीमान न करे, सुरूपणी स्त्रियादिको विकार द्रष्टीसे नहीं देखे, कुरूपोंका निरादर न करे, सील पाले सो सूरूप होय.

४३ प्र-धन विलस क्यों नहीं सके? उ-अन्यको खान पान वस्त्र भूषणकी अंतराय दे. आप और समर्थ हो अच्छे भोग भोगवें, आश्रितोंको त्रसाय, अन्यको भोगोपभोग भोगवते देख आप दुःखी होय, वो धन प्राप्त होके भी भोगव नहीं सके.

४४ प्र-सुख विलासी कायसे होय? उ-आपको प्राप्त हुये भोगोप भोग भोगवे नहीं. अपने भोगकी वस्तु दान पुण्यमें तथा स्वधर्मीयोंको दे के पोपे, सो इच्छित भोग भोगवे.

४५ प्र-क्रोधी कायसे होय? उ-आप क्रोध करे, क्रोधीयोंकी परसंस्या करे, मनुष्य, पशु, देवता ओंके जुधकी वार्तो सुन हर्पावे. शिकार खेले, क्षमवंत को संताप उपजावे, निंदा करे, हाँसी करे सो क्रोधी होवे.

४६ प्र-धूर्त कायसे होय? उ-धर्म करणीमें, दान, पुण्यमें जप, तप, में कपट करे थोडा कर बहुत बतावे पोमावे, सो दगाबाज, धूर्त होवे.

४६ प्र-सरल कायसे होय? उ-सरल भावसे करणी करे, करके पोमावे नहीं, सो सरल स्वभावी होवे.

४८ प्र-चोर कायसे होय? उ-चोर कर्मको अच्छा जाने, चोरको सहाय दे. चोरकी वस्तु ले, चोरकी कला बतावे, चोरकी परसंस्या करे, सो चोर होवे.

४९ प्र-साहूकार कायसे होय? उ-अदत्तवृत्त धारण करे, चोरका परिचय वर्जे, सो साहूकार होवे.

५० प्र-कसाइ कायसे होय? उ-हिंशाकी परसंस्या करे, हिंशा करनेकी कला बतावें. हिंशा के शस्त्र बनावे, दया की निंदा करे, सो हिंशक कपाइ होवें.

कपटसे, फलकी इच्छासे दान देवें, दान दे अभीमान करें, सो अंतरद्विपमें मिथ्यात्वी जुगलिया मनुष्य होवें.

५७ प्र-जुगलिया (भोग भूमीये) मनुष्य कायसें होवे? उ-शुद्धाचारी साधूओं को हुल्लास भावसें शुद्ध आहार, स्थान, वस्त्र, पात्र, देवे, दूसरेके पाससे दिलावे. अन्य को देते देख खुशहोवें सो अकर्म भूमी मे समद्रष्टी जुगलिया होवें.

५८ प्र-अनार्य देशमें जन्म कौस कर्मसे लेवे? उ-खोटा आलचडावें, म्लेच्छो की सुख संपदा अच्छी लगे, म्लेच्छ वेश धारे, म्लेच्छ कामों की परसंस्या करें, आर्यदेश छोड अनार्यमें रहे, सो आनार्य देश में जन्मले.

५९ प्र-आर्य देशमें कायसे जन्में? उ-आर्यों की चाल चलन पसंदकरे. अनार्य रिवाज कामें छोडे, अनार्य कों आर्य बनावें, मुनी (साधू) की परसंस्या करे, आर्यो को यथा शक्त सहायता करे, तो आर्य देशमें जन्मलेवे.

६० प्र-हम्माल कायसे होवे? मनुष्य, पशु ओं पे गजा (शक्ती) उप्रांत वजन लादे वेगारमें पकडे, जबरी से काम लेवें, थोडाकहे बहुत वजन भरें, ज्यादा उठाया देख हर्षावें, तो हम्माल, पोठीया, बेल, घोडे

वगैरे होवें.

६१ प्र-कू कवी (भाट चारण) कायसे होवे? उ-कू कथा का प्रेमीवने, लोकीक (मिथ्य) शास्त्रका दान दिया, धर्म कथाका नाम रख विकार उत्पन्न होवें ऐसी कथाकरे, विषय पोषक कवीता रचे, विषय जनराग रागणी सुणे, उनपे प्रेम करे, सो कू, कवी भाट चारण होवें.

६२ प्र-सूकवी कायसे होवे? उ-जिनराज मुनीराजके गुण कीर्तन सुण हर्षलावे, शास्त्रकर्ता गणधरो की आचार्यों की परसंस्या करें. ज्ञानवृधीमें धन लगा वें, धर्म कवीयों को सहाय्यदे, धर्मकवीता की गुप्त रहस्यों से हर्षावे सो, विद्वान कवी होवें.

६३ प्र-दीर्घ (लम्बा) आयुष्य कायसे पावे? उ-मरते जीवोंको द्रव्य दे छोडावे. उन्हे खान, पान, स्थानका सहाय दे, बंदीवान छुडावे, संसारमें उदासीनता धरे, दया भाव रक्खे, दीन अनाथोंको सहाय देवें, तो दीर्घ आयुष वाला होवें.

६४ प्र-ओछा आयुष्य कायसे पावे? उ-जीव घात करे, गर्भ गलावे, आजीवका का भंग करे, ज्यूं खटनलादी मारे, शुद्ध लेने वाले साधूको अशुद्ध आहार प्रमुख देवें, अग्नी विष शस्त्रादी से जीव मारे, सो अ-

ल्पआयुष पावें.

६५ प्र-सदा चिंता कायसे रहें? उ-बहुत जीवकों चिंता उत्पन्न होवे, वैसी वात करें, अन्यको उदास देख खुशी होवे. सो सदा चिंता करने वाला होवें.

६६ प्र-निश्चित कायसे रहें? उ-दूसरे की चिंता का भंग करे, धर्मात्माकों देख खुश होवे, दुःख पीडितको संतोष उपजावे. सो सदा निश्चित रहें.

६७ प्र-दास कायसे होवें? उ-नौकरोंको बहुत सतावें, बहुत काम लेवें, परिवारका सैन्याका, अभीमान करे, सो बहुत जनोंका दास होवें.

६८ प्र-मालिक कायसे होवें? उ-धर्मी जनोंकी तपस्वियोंकी वयावच्च करे, धर्मात्मा दुःखी जनोका पोषण करे, अन्यके पास धर्मात्माकी सेवा भक्ती करावे, करते देख खुशी होवे, सो बहुतोंका मालिक होवें.

६९ प्र-नपुंसक कायसे होवें? उ-नपुंसक के नृत्य गायन, ठठे देख खुशी होवे. पुरुषको स्त्रीका रूप बना के नृत्य करावें, बेल, घोडे, आदी पशु या मनुष्यका लिंग छेदन करे, नपुंसक से विषय सेवन करे, आप नपुंसक जैसी चेष्टा करे, स्त्री पुरुषके संयोग मिलाने की दलाली करें, बेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्रीकी हिंसा करे, सो नपुंसक होवें.

७० प्र-स्त्री कायसे होवें? उ-स्त्रीयोंके विषयमें अत्यंत लुब्ध होवें, पुरुष हो स्त्रीका रूप बनावें, स्त्रीयोंकि तरह चेष्टा करे या दगाबाजी करे, सो स्त्री होवें.

७१ प्र-निगोदमें कायसे जाय? उ-देव, गुरु, धर्मकी निंदा करनेसे. कंद मूलता भक्षण करनेसे.

७२ प्र-एकेंद्री कायसे होय? उ-पृथवी, पाणी, अग्नी हवा, वनस्पती, कंद-मूल, वृक्ष, घास, फुल, पत्र, का छेदन, भेदन, करे सो एकेंद्री होवें.

७३ प्र-विकेंद्री कायसें होवे? उ-निर्दयपणें, त्रसकी घात करें, अनाज (दाणे) बहुत दिन संग्रह कर रक्खें, त्रस जीव (कीडे) की उत्पति होवें ऐसी वस्तु का संग्रह कर, उन्हकी घात करें, मच्छर, खटमल, निवारने धूम्रादिक उपचार कर उन्हे मारे, वोर प्रमुख त्रस जीव उत्पंन्न होवें, ऐसे फलोंका भक्षण करे, मोरी, गटार में पेशाब करेसो मरके विकेंद्री (बेन्द्री, तेन्द्री, चोरिन्दी) होवे.

७४ प्र-बलंग (अंगोपंग रहित) कायसे होवे? उ-जीवोंकें हाथा, पांव, कान, नाक, अंगुली, यादी अंगोपांगका छेदन भेदन, करे, कान कतेर, वींदे, कंगूरा करे, ऐसा करते देख हर्षावे सो कलंग (अंगोपांग रहित) होवें.

७५ प्र-पूर्ण अंग कायसे होवे? दूसरेके अंगोपांग का छेदन होता देख रक्षण करें, अपंगीकी करूणा करे, उसे सुधारने उपचार करे, आजीवीका चलावे. सहाय देवो तो पूर्णांगी (संपूर्ण अंगवाला) होवें.

७६ प्र-नीच जात कायसे पावे? उ-अपणी उंच जाति कुलका अभीमान करें, उच्च की निंदा करें, नीचका द्वेष करें, नीच कामें करे, सो नीच जाती पावे.

७७ प्र-उंच जात कायसे पावे? उ-सत्पुरुषोंके गुण की परसंस्या करे, वंदना नमस्कार करे, अपणें दुर्गुण प्रगट करें, चार तीर्थकी भक्ती करें, यह मनुष्य जन्म पाय तो राजादिक कुलमें जन्में और तिर्यंच होय तो राज्यका मानेता हो सुख भोगवे.

७८ प्र-उंच चातीका दास क्यों पने? उ-उच्च कर्म कर अभीमान करें, गुरुकी आज्ञाका भंग करें, उंच हो दीनोके शिर आल चडावे, उंच हो नीच काम करे. सो उंच हो नीच (दासके) कर्म करे.

७९ प्र-प्रदेश फिरके आजीका क्यों करें? उ-भिक्षुकोंको लाळच दे, वारंवार फिराय फिर दान दे. नोकरोंकी नोकरी त्रसाय २ दी, धर्म नामसे निकला धन वहुत दिन घरमें रक्खे, काशीदको भटकावे, सो प्रदेश फिर अजीवीका करें.

का वध होता होय. वहां देखने वहुत जन खडे रहें, मनमें आय की इसे किती वेग मारे अपन अपने घरजावें, उनके. तथा वहुत मतांतरी यों एकत्र हो सत्य-देव गुरु धर्म की निंदा करे, उन्हके सामुदानी कर्म वंधते हैं. वो पाणी मे डुव. आगमें जल, या मारी[प्लेग] दी के सपाटे में आ एकदम वहुत मनुष्य मारे जाते हैं.

८५ प्र-एक दम वहुत जीव स्वर्ग में कैसे जावे? उ- धर्म मोत्सव. दिक्षा औत्सव. केवल औत्सव धर्म सभा वायलनादिकमें वहुत जन मिल हर्पावें. वैराग्य भाव लावें. उसकी परसंस्या करे. सो एक दम वहुत जीव स्वर्ग या मोक्ष जावें.

८६ प्र-कोइ विना काम द्वेष करे इसका क्या स-वव? उ- परभव में किसी को दुःख दिया होय, उस का नुकशान किया होय सो वो विना दोप ही द्वेष धर ता हैं.

८७ प्र-विना स्नेही स्नेह जगे सो क्या सवव? उ- दुःख छोडाया होय. साता उपजाइ हो वन में पहाडमें या सग्राममें, निराधार हुवे को आधार देनेसे. वो पीछा अचिंत्य दुःख में आके सहाय करे. विना कारण प्रेम करे.

८८ प्र-व्यंतरादी व्याधी से मुक्त न होवे सो क्या

उ-तप संयम पाला हो ज्ञानीयोंकी वयावच्च करी हो, ज्ञान की महिमा, बहुमान किया हो उन्हे जाति स्मरण, अवधीज्ञान, उपजे.

९३ प्र-वृत-पच्चखाण क्यों नहीं कर सके? उ-अन्यके वृत भंग कराय. शुद्धवृतीके दोष लगाया, अन्यके वृत भंगा देख खुशी हो. पोते वृत ले प्रणामोंमें सकल्प विकल्प करे, वार २ वृत भांगे, उससे वृत पच्चखाण न हो.

९४ प्र-कसाइयों के हाथसे कटे सो कोनसा पाप? उ-कषाइयों से वेपार करे. कषाइयों कों जानवर दिया. कषाइके कृत्य करें, दगासें घात करे, वनचरोंकी सिकार करें, मांस खाय, सो पशु हो कषाइयोंके हाथसे कटे.

९५ प्र-पाप कर धर्म माननेका क्या सबब? उ-भ्रष्टाचारीकी संगत करे. पाप कार्यमे धर्म कहे, सत्य देव, गुरू, धर्मकी निंदा करे, वो पापमेंही धर्म मानने.

९६ प्र-व्रिभचारी क्यों होवे ? उ-वेश्या के कीशव कमाय. या वेश्या का संग करे. कुसीलीये की परसंस्या करें तिर्यंच तिर्यंचणी का संयोग मिलावें, संयोग देख हर्षाय सो विभचारी होवें.

९७ प्र-सीलवंत काय से होवें ? उ-शीलपाले.

शीलवंत की महिमा करें सीलवंत की सहायता करें. कुशीलीयों का संग छोडे. सो शीलवान होवें ७

९८ प्र–ऋद्धिवंत कायसे होवें? उ-सूपात्रमें दानसे

९९ प्र–मांगनेसे ही वस्तू क्यों नहीं मिले? उ-धनवंत हो दान नदेवे आश्रितो को त्रसानेसे.

१०० प्र-भिक्षारी कौन होवें? उ-छिद्री और निंदक.

१०१ स्त्रीयों क्यों मरें? उ-बहुत स्त्रीयों का पति हो उन्हे मारेन से.

१०२ प्र–भ्रमित चित क्या रहे? उ-मदिरा भांग, अफीमादी कैफी वस्तु सेवन करनेसे.

१०३ प्र–दहाज्वर कायसे होवे? मनुष्य पशुपे ज्यादा वजन लादनेसे.

१०४ प्र–बाल विध्वा क्यों होवें? उ-पतिकी घात कर बिभचार सेवनेसे. पतिका आपमान करनेसे.

१०५ प्र–मृत्यु वांक्षा क्यो होवे? उ–पशु पक्षी के बच्चे, अन्डे मारनेसे. या लीखों फोडनेसे.

१०६ प्र–ज्यादा पुत्री क्यों होवे? पाणी पीतें पशुओंको रोकके मारनेसे. बहु पुत्रीयेकी निंदा करनेसे.

१०७ प्र–विध्वा पुत्री क्यों होवे? उ-धर्म का धन खाय तो. धर्म के उप करण चोराय तो.

---

* पद ९७ चोल मुद्गल तरगणी दिगाम्बर ग्रन्थमें के है-

१०८ प्र-मंद कायसे होवें? उ-मदिरा मांसके भोगवनेसे. मंद बालेकी हँसी करनेसे.

१०९ प्र-अपचाका रोग कायसे होवे? उ-साधू को खराब अहार देनेसे.

११० प्र-क्षयनरोग कायसे होवे? हड्डीका वैपार करे, सेहत (मद्य) झाडे तो.

१११ प्र-कूरूप वेडोल मुख कायसे होवे? उ-दा नेश्वरीकी निंदा करनेसे. मुखका बहुत शृंगार करनेसे.

११२ प्र-छोड कायसे रहे? उ-गर्भपात करनेसे.

११३ प्र-स्थानभ्रष्ट कायसे होवे? रस्ते परके झाड काटनेसे. आश्रितों का आसारा छोडानेसे.

११४ प्र-श्वेत कुष्ट कायसे होवे? गौवध, कंन्या क्रय, करनेसे तथा साधू हो वृत भंग करनेसे.

११५ प्र-पुत्र वियोग कायसे होवे? उ-गाय, भैंस बच्चेको दुध न पानेसे. पशु पक्षीके पुत्र मारनेसे.

११६ प्र-बचपणमें मात पिता क्यों मरे? सरप की घात करनेसे. मात पितका अपमान करनेसे.

१७ प्र-जलोंद्र कायसे होवे? अभक्ष भक्षणेसे.

८ प्र--दांत कायसे दुखे? अत्यंत रसनाकी लु . अभक्ष भक्षणेसे.

 प्र- लम्बे दांत क्यों होवें? उ-परो...

करनेसे चहाडी चूगली करनेसे.

१२० प्र–मुत्र कच्छ फत्तरी कायसे होवें ? उ–राणीयों या परस्त्रीयों से गमन करनेसे.

१२१ प्र–गुंगा कायसे होवें ? उ–झूटी साक्षी व गुरु कों गाली देनेसे,

१२२ प्र–सूलरोग कायसे होवें ? उ–पशु पक्षी कों बाणो से मारनेसे सूल कॉटे आर चूबानेसे.

१२३ प्र–उत्तम जाती का भीख क्यों मांगे ? उ–माता, पिता, गुरु कों मारें या अपमान करनेसे.

१२४ प्र–गुंवडे मस्से ज्यादा क्यों होवें ? उ–पशू पक्षी को पत्थर सें मारनेसे

१२५ प्र–चमडी फटे तथा दाद क्यों होवे ? उ–सांप, विच्छू, गो खटमल ज्यूं लीख को मारे तो.

१२६ प्र–सदा बीमार क्यों रहे ? उ–धर्मादा का खाके धर्म न करेतो.

१२७ प्र–पीनस रोग क्यो होवे ? उ–चीडीयो, मयुर, तोते आदी पक्षी मारनेसे.

१२८ प्र–कुष्ट रोग कायसे होय ? साधूको संताप देनेसे.

१२९ प्र–सरीर कायसे धूजे ? उ–रस्ते चलते, वृक्ष त्रण, तोडेतो.

१३० प्र-अधांगरोग क्यों होवे? स्त्रीयोंकी हित्यासे

१३१ प्र-नासूर कायसें होवे? पशु पक्षी मनुष्य की नाकसे नाथ डालनेसे.

१३२ प्र-गलिज कुष्टी कायसे होवे ? उ-पशु पक्षी मनुष्य कों फासीदे मारनेसे.

१३३ प्र-हरस (मस्सा) कायसे होवे? उ-नदी तलाव का पाणी सोशनेसे. और जलचर जीव मारनेसे.

१३४ प्र-रातअन्ध कायसे होवे ? उ-त्री सध्या (फजर दोप्रहर शाम) को भोजन कारनेसे.

१३५ प्र-रांधन वायू कायसे होवे ? उ-घोडे. ऊट. बैल बकरे गाडे आदी भाडे देनेसे.

१३६ भगंदर कायसे होवे? उ-अन्डेका रस पीनेसे.

१३७ प्र-उल्लू (घुघू) कायसे होवे ? उ-रात्री भोजन करनेसे. तथा बिन देखी वस्तु खानेसे.

१३८ प्र-सिंह सर्प कायसे होवे? उ-क्रोध. क्लेशमें संतप्त हो आत्मघात करनेसे.

१३९ प्र- गध्धा कुत्रा कायसे होवे? उ-अभीमान करके वशहो अकार्य कर मरनेसे.

१४० प्र-बिल्ली कायसे होवें? उ-दगा करनेसे.

१४१ प्र-नवल सर्प कायसे होवे? लोभ करनेसे.

१४२ प्र-वाला (नारू) कायसे निकले ? बिना छा-

करनेसे चहाडी चूगली करनेसे.

१२० प्र-मुत्र कच्छ फत्ररी कायसे होवें? उ-रा-णीयों या परस्त्रीयों से गमन करनेसे.

१२१ प्र-गुंगा कायसे होवें? उ-झूटी साक्षी दे गुरु कों गाळी देनेसे,

१२२ प्र-सूलरोग कायसे होवें? उ-पशु पक्षी कों बाणो से मारनेसे सूल काँटे आर चूवानेसे.

१२३ प्र-उत्तम जाती का भीख क्यों मांगे? उ-माता, पिता, गुरु कों मारें या अपमान करनेसे.

१२४ प्र-गुंवडे मस्से ज्यादा क्यों होवें? उ-पशू पक्षी को पत्थर सें मारनेसे

१२५ प्र-चमडी फटे तथा दाद क्यों होवे? उ-सांप, विच्छू, गो खटमल ज्यूं लीख को मारे तो.

१२६ प्र-सदा बीमार क्यों रहे? उ-धर्मादा का खाके धर्म न करेतो.

१२७ प्र-पीनस रोग क्यो होवे? उ-चीडीयों, मयुर, तोते आदी पक्षी मारनेसे.

१२८ प्र-कुष्ट रोग कायसे होय? साधूको संताप देनेसे.

१२९ प्र-सरीर कायसे धूजे? उ-रस्ते चलते, वृक्ष त्रण, तोडेतो.

१३० प्र-अर्धांगरोग क्यों होवे? स्त्रीयोंकी हित्यासे

१३१ प्र-नासूर कायसें होवे? पशु पक्षी मनुष्य की नाकमे नाथ डालनेसे.

१३२ प्र-गलिज कुष्टी कायसे होवे ? उ-पशु पक्षी मनुष्य कों फासीदे मारनेसे.

१३३ प्र-हरस (मस्सा) कायसे होवे? उ-नदी तलाव का पाणी सोशनेसे. और जलचर जीव मारनेसे.

१३४ प्र-रातअन्ध कायसे होवे ? उ-त्री सध्या (फजर दोप्रहर शाम) को भोजन करनेसे.

१३५ प्र-रांधन वायू कायसे होवे ? उ-घोडे. ऊट. बैल बकरे गाडे आदी भाडे देनेसे.

१३६ भगंदर कायसे होवे? उ-अन्डेका रस पीनेसे.

१३७ प्र-उल्लू (घुवु) कायसे होवे ? उ-रात्री भोजन करनेसे. तथा विन देखी वस्तु खानेसे.

१३८ प्र-सिंह सर्प कायसे होवे? उ-क्रोध. क्लेशमें संतप्त हो आत्मघात करनेसे.

१३९ प्र- गध्धा कुत्रा कायसे होवे? उ-अभीमान करके वशहो अकार्य कर मरनेसे.

१४० प्र-बिल्ली कायसे होवे? उ-दगा करनेसे.

१४१ प्र-नवल सर्प कायसे होवे? लोभ करनेसे.

१४२ प्र-बाला (नारू) कायसे निकले? विना छा-

णा पाणी पीवे, जीवाणीका जत्न न करेतो.

१४३ प्र-मनुष्य कायसे होवे? क्षमा दया, नम्रतासे

१४४ प्र-स्त्री मरके पुरुष कायसे होवे? उ-सत्य, शील, संतोष विनय आदी गुण धारन करनेसे.

१४५ प्र-देवता कौन होवे? उ-साधू, श्रावक, तापस और अकाम (मन विन) निर्जरा करनेसे.

१४६ प्र-लक्ष्मी स्थिर कायसे रहे? उ-दान देके पश्चाताप नहीं करे तो.

१४७ प्र-काणा कायसे होवे? उ-बीज, फल, फुल छेदे, हार गजरे वगैरे बनानेसे.

१४८ प्र-गलित कुष्टि कायसे होवे? सुवर्ण चांदी लोहा तांबा वगैरे की खानो खोदनेसे.

१४९ प्र-यश करते अपयश क्यों होवे? उ-सचित औषधी करनेसे. अन्यकृत उपकार न माननेसे.

१५० आँखमें बामणी कायसे होवे? निमक(लुण के आगर खोदनेसे.

१५१ प्र-कांख मंजरी कायसे होवे? सम्यक द्रष्टी हो मिथ्यात्वी का अनार्योंका काम करनेसे.

१५२ रुंड मुंड सरीर कायसे होवे? उ-न्यायाधिश हो कठण दंड देनेसे.

१५३ प्र-कंठमाल कायसे होवे? उ-मच्छीका

अहार करनेसें.

१५४ निरोगी दिखे, और रोगिष्ट होवे सो क्या कारण? उ-लांच ले झूटा न्याय करनेसे.

१५५ प्र-संयोग मिल वियोग क्यों होवे? उ-कृत्घनता, मित्र द्रोहो और विश्वास घात करनेसे.

१५६ प्र-डरकण स्वभाव कायसे होवे? उ-कठोर दंडी कोटवाल होवे सो.तथा अन्यको डरावे सो.

१५७ प्र-खुजली कायसे चले? उ-तेंद्री ज्यू लीख खटमल पिस्सू उदाइ दी मारनेसे.

१५८ प्र-ज्यूंवो ज्यादा क्यों पडे? उ-मच्छ अहारी करनेसे. ज्यूंवा अग्नी आदीमें डाल मारे तो.

१५९ प्र-तपस्या क्यों नहीं वने? उ-तप जपका अभीमान करे तो. तप करते अंतराय देवे तो.

१६० प्र-अलुहा मणी भापा क्यों लगे? उ-वाक्य चातुरीका अभीमान करे तो. कठोर वचन वोले तो.

१६१ प्र-अपयशी क्यों होवे? उ-सासू, नणंद, देराणी, जेठाणी, भाइ भो जाइ का ईर्षा करे तो.

१६२ प्र-तरुणपणे स्त्री क्यों मरे? उ-भोगकी तिव्र अभीलापा रखे. अमर्याद विपय सेवे तो.

१६४ प्र-छमुछिम मनुष्य कौन होवे? उ-नील, गुलीके कुंड करे छमुछमकी घात करे तो.

वैपार करनेसे. अच्छी वस्तु दिखा खोटी खिलानेसे.

१७६ प्र-१२ वर्ष का छोड कायसे रहे? उ-पेशा व भेला कर सर्व रात्री रखनेसे.

१७७ प्र-२४ वर्षका छोड कायसे रहे? उ-तिव्र भाव विषय सेवनेसे. गर्भ गलानेसे.

१७८ प्र-सदा सरीर क्यों जले? उ-फूलोंका मर्दन करनेसे. वहोत अत्तर उगटणे लगानेसे.

१७९ प्र-वंझा स्त्री कायसे होवे? उ-फूलका अत्त र निकालनेसे. मनुष्य पशुके बच्चे मारनेसे.

१८० प्र-मृतवांझा कायसे होवे? उ-उगती विनार ते, कूंपल चुंटनेसे.

१८१ प्र-बहुत स्त्री होके भी पुत्र क्यों न होवे? —बहुत विनास्पतीका रस निकालनेसे.

१८२ प्र-हलालखोर कायसे होवे? उ-जलचर जीव त मारनेसे. कसाईके कर्म करनेसे.

१८३ प्र-सशक्त धर्म क्यों नहीं वने? उ-ममइ व्यका रक्त) बहुत निकाला होवेसो.

८४ प्र-सरीर भारी कायसे होवे? उ-आसा दारू बहुत पिया होयतो.

५ प्र-साधुके सिर आल देने, शुद्ध आहार लेने धू को अशुद्ध देवे. तो गर्भमें आ...

१८६ प्र—नर्क तिर्यंच गतिमें अकाम निर्जरा कर मनुष्य हुवा वो पहले दुःखी हो पीछे सुख पावे, कूलीन के सिर कलंक आवे. शक्त सजा पावे, फिर इन्साफ होनेसें निर्दोष ठहरे छुट जावे.

१८७ प्र—मोक्ष कायसे मिले? [*] उ—ज्ञान दर्शन चारित्र और तपकी सम्यक् प्रकारे आराधन पालन स्फर्शन करनेसे. इति

इत्यादी कर्म बन्ध करनेके, और मुक्तनेके, अनेक कारण शास्त्र ग्रन्थमें बताये हैं. कितनेक कर्म, इस भवके किये इसही भवमें भोगवते हैं और कितनेक आगे के जन्ममे भोगवते हैं. अनंत ज्ञानी सर्वज्ञ भगवंतने संसारी जीवोंकी कर्म विपाकसे होती हूइ दिशा को अवलोकन करी, परन्तु वाणी द्वारा सम्पुर्ण वर्णन कर सके नहीं, क्यों कि सम्पूर्ण विश्व अनंत जीवों कर भरा हैं. और एकेक जीवके अनंत कर्म वर्गणाके पुद्गल लगे है. और एकेक वर्गणाके वर्णादी पर्यायकी अनंत व्याख्या होती हैं. ऐसा अपरम्पार विपाक विचय का वर्णन, भाषा द्वारा कदापि न होसके. सभा

* ये [illegible] गौतम [illegible] और [illegible] ज्ञान [illegible]
[illegible] ग्रन्थानुसार कुछ [illegible] लिये है

पि धर्म ध्यानी, ज्ञानी की अज्ञानुसार, विपाक विचय का यथा शक्त विचार करते हुये कर्मो की विचित्रता से वाकेफ होते हैं; वो कर्म वन्ध के कारण से वचके, कर्मक्षय करनेके मार्गमें प्रवृतन हो, अनंत अध्यात्मिक सुख प्राप्त करते हैं.

चतुर्थ पत्र "संस्थान-विचय"

संस्थान नाम आकार का हैं. सोजगत का, तथा जगत में रहे हुये पदार्थोंका, आकार का विचार करे. सो संस्थान विचय धर्म ध्यान. अनंत अकाश (पोलार) रुप अनंत क्षेत्र हैं. की जिसका अंतः पारही नहीं. उसे अलोक कहते हैं, इस अलोक के मध्य भाग में, ३४३ राजू घनाकार लम्बी चौडी जित्नी जगा में, जीवाजीव व रुपी अरुपी पदार्थ रुप एक पिंड हैं, उसे 'लोक' कहते हैं, यह लोक नीचे सातमी नर्क के तले ७ राजू का चौडा हैं, और उपर सात राजू आवे वहां मूल से घटता २, मध्य लोक के स्थान एक राजू का चौडा हैं, और वहां से उपर चढते चौडास में वढते २, चार राजु (पांचमें देवलोक तक) आवे, वहां ५ राजू का चौडा है, और चौडास मे घटते २ तीन

१८०० जोजन उंची जगा हैं. उसे मध्य (तिरछा) लोक कहते है. वहां मध्यमें तो एक लक्ष जोजन का उंचा और नीचे दश हजार जोजनका चौडा उपर एक हजार जोजन चौडा (नलस्थंभ जैसा) मेरु पर्वत है, उसके चारही तर्फ फिरता (चूडी जैसा) एक लक्ष जोजनका लम्बा चौडा (गोळ) 'जंबुद्विप' हैं, उसके बाहिर चारही तर्फ (चूडी जैसा) फिरता दो लक्ष जोजनका चौडा 'लवण समुद्र' है. उसके चारही तर्फ वैसाही फिरता चार लक्ष जोजन चौडा 'धातकी खंडद्विप' हैं. उसके चौगिर्दा ८ लक्ष जोजन चौडा 'कालोदधी समुद्र है' उसके चौगिर्दा १६ लक्ष जोजन चौडा 'पुष्करार्द्धद्विप' हैं.; यों एकेकको चौगिरदा फिरते और चौडासमें एकेकसे दुगणे, असंख्यात द्विप, और असंख्यात समुद्र, सब चूडी (बंगडी) के संस्थानमें हैं. मेरु पर्वतके जड में समभूमी हैं, वहांसे ७९० योजन उपर तारा मंडल, वहां से १० जोज उपर • सूर्य का

; पुष्कर द्विपके मध्य भागमें गोलाकार (चूडी जैसा) मानुषोत्र पर्वत है. उसके अन्दरहीं मनुष्य की वस्ती है जंबुद्विप धातकी खंड द्विप और आधा पुष्करार्ध द्विप यों अढाइ द्विप कहते है.

• चन्द्रमां का विमान सामान्य देव १८०० कोश चौडा है सूर्य का १६०० कोश चौडा. और ग्रह नक्षत्र. तारा के विमान जघन्य १२५ कोश उत्कृष्ट [illegible] कोश चौडे है, और [illegible] कोश सूर्य

विमान, वहां से ८० जोजन उपर चन्द्रमाका विमान है. और उपर २० जोजन के अन्दर सब जोतषीयों के विमान आगये हैं. अढाइ द्विप के अन्दर के जोतषी के विमान आधे कवीठके संस्थान हैं. और बाहिर के इंट जेसे है. आगे उपर (मृदंग के संस्थान) सात राजू मठेरा कुछ कम लोक है, उसे उंचा लोक कहते है. वहां १२ देवलोक, ९ लोकांतिक ९ ग्रीवेक ५ अनुत्र विमान आगये है. इनमें सर्व विमान— ८४९७०२३ है. कितनेक चोखूणे-कितनेक तीखूणे और कितनेक गोळाकार है. वहां पुण्य की अधिकता होती है वो जीव उपज के कृत कर्म के शुभ फल सुख मय भुक्ते है. सर्वार्थसिद्ध विमान के उपर १२ जोजन सिद्ध सिळा है सो चित्त छत्र के जैसी ४५ लक्ष जोजन की लम्बी चोडी (गोळ) है. उसके उपर एक जोजन के छठे भाग में अनंत सिद्ध भगवन्त, अरूपी अवस्था में अलोक से अड (लग) के विराज मान है. यह संक्षेप में लोक का और लोक में रहे स्थुल पदार्थों के संस्थानका वरणन किया.

जीवके ६ संस्थान-१ जिसका चारही तर्फ परि·

[illegible]

त हर्षाय, और वियोग होने से पीछी वैसीही
ठा जगे उसी का नाम रुची है. संसारी जीवोंकी
सी रुचि व्यवहारिक पुद्गलिक कामोंकी होती हैं,
ध्यानी की वैसी रुची आत्म साधन के कामों में
ती है. यह आत्म साधन के परमार्थिक कामो के
ख्या चार भेद किये है.

प्रथम पत्र—अज्ञा रुची

१ आज्ञा रुची; अनादी काल से यह जीव
जिनाज्ञा का उलंघन कर, स्वच्छंदा चारी हो रहे हैं.
जिससेही इत्ने दिन संसार में परिभ्रमण किया. उ-
तराध्येयन सूत्रमे फरमाया हैं की "छंदो निरोहेण
उववेइ मोक्खं" अर्थात अपना छांदा (इच्छा) का नि-
रुंधन करे जिनाज्ञा में प्रवृतनसे ही मोक्ष मिलती है.
इसलिये मुमुक्षु जन कों चाहीये की अपनी इच्छा
कों रोक. वितराग की आज्ञा में प्रवृतने का
पर्यत्न करे, अब वितराग की आज्ञा क्या है.
उसे विचारिये. वितराग=राग द्वेषके क्षय कर-
ने वाले कों कहते हैं, जिनोंनें राग द्वेशके क्षयमें ही
फायदा देखा, वो राग द्वेष घठानेकी ही आज्ञा करेंगे

यह निसंदेह हैं. ऐसा जाण वितरागकी आज्ञाके इ-च्छक, सदा मध्यस्त प्रणामी रहे. प्रतिबंध रहित रहे. सो प्रतिबन्ध चार प्रकारके होते हे. १ द्रव्यसें=१सजीव सो द्विपद. मनुष्य, पक्षिका. चतुष्पद, पशुओंका. २ अजीव सो वस्त्र, पात्र, धनादिकका, ३ मिश्र सो दोनो भेले, जेसे, वस्त्रा भुषण, मंडित मनुष्य, पशु, इत्यादी. २ क्षेत्रसें ग्राम, नगर, घर, खेत, इत्यादी. ३ कालसे घडी, प्रहर, दिन, पक्ष, मांस, वर्षादि. ४ और भावसे क्रोधादी कषाय. मोह ममत्व, इन चारही प्रतिबन्ध रहित रहे. * क्षुधा, तृषा, शीत तापादी समभाव से सहन करें, मिष्ट कटु वचनकी दरकार न रक्खे. निद्रा प्रमाद अहार कमी करे, सदा ज्ञान ध्यान तप संयममें आत्मा को रमण करते प्रवृतें (इस आज्ञा रुचीका विस्तार पहले आज्ञा विचयमें विस्तार से होगया है. वहां कहा सो तो विचार समजना और यहां कहा सो प्रवृतन करनेकी इच्छा समजना.)

* यह श्रावक हमारे यह क्षेत्र हमारे, इस ममत्वभाव में बंधे हो इत्यादिक [illegible] अनुयायी [illegible] धर्म ध्यानकी [illegible] [illegible] दूर [illegible] है [illegible] [illegible]

॥ गाथा ॥ सोच्चा जाणइ कल्लाणं. सोच्चा जाणइ. पावगं,
उभयंपि जाणाइ सोच्चा. जेसयं तं समायरे. ११

अर्थ-सुनने सेही मालम होती है के. अमुक सुकृत्य करने से अपणी आत्मा का कल्याण (अच्छा-भला)होगा और अमुक पाप कृत्य करनेसें बुरा होगा; तथा अमुक काम करने से, अच्छा और बुरा दोनो ऐसा मिश्र काम होगा जैसे की काम भोग में सुख तो थोडा है, और दुःख अनंत है, यह दोनो वात समजे. तथा मिश्र पक्ष जो ग्रस्थ धर्म हैं. जिसे शास्त्र में 'धम्मा धम्मी' तथा 'चरीत्ता चरित्ते' कहे हैं. क्यों, कि संसार में बेठे हैं सो विना पाप गुजरान होना मुश्किल ऐसा समज, उदासीन वृति से पश्चाताप युक्त काम पूरता कर्म करते हैं. और आत्म कल्याण का कर्ता धर्म कों जाण. जब २ मौका मिलता हैं- तब २ अत्यंत हर्ष युक्त धर्म किया करते है. यह तीनही वर्तों सुनने से मालम पडती है. उसमें से अच्छे लोग उसे स्विकार के सुखी होते है. ये सब उपदेश सेही जाणा जाता है. उपदेश (व्याख्यान) में सदा वर्तमान तरह २ का सद्बोध श्रवन करने से स्वभाविक तत्व क ची तत्वज्ञता उत्पन्न होती है. ध्यानस्त हुवे वो [illegible] हृदय में मनन करता है. तब अन्य सर्व वृति [illegible]

मेहलपे चढने को पंक्तीये या आलम्बन डोरी आधार भूत होती हे. वेमेही धर्म ध्यानमें प्रवृन होने वाले महात्माको चार तरहका आधार होता है सो कहे हैः- १ वायणा=सुत्रका पठन, २ पुच्छणा=संदेह निवारन गुरूसे प्रच्छना (पृच्छना) ३ परियट्टना=पढे ज्ञानको वारम्वार संभारना. (फेरना) और ४ धम्मकहा=धर्म कथा (व्याख्यान) व प्रगट करना.

प्रथम पत्र-"वायणा"

१ 'वाचना' गीतार्थ बहु सूत्री आचार्य, उपाध्याय, इत्यादी विद्वानोंके पाससे. ज्ञान ग्रहण करना (पढना) या लिखित सूत्र ग्रन्थादी वांचना (पढना) यह ध्यानी के ध्यानका प्रथम आलंबन आधार है.

अव्वल चतुर्थ (चौथे) आरेमें प्राय [illegible] प्रज्ञा (बुद्धि) के सबबसें, शास्त्रादिक लिखने की आवश्यकता बहुतही थोडी थी वो अपने गुरुवर्यके पाससे थोडेही कालमें बहुत ज्ञान संपादन कर लेते थे. [illegible] रेतक तो ऐसी तेज बुद्धि वाले थे की, [illegible] विद्या, जो कदापि लिखे तो [illegible] ज्यों इत्यादी लोग, उन्ने ज्ञानको एक मुहूर्त मात्रमें [illegible] कर लेतेथे. अर्थात् १ उपन्ना=उत्पन्न [illegible]

दार्थ, २ विघनेवा=विनाश होने वाले और ३ धुवेवा=ध्रव (स्थिर) रहने वाले पदार्थ, यह तीन पद पडाते जिसमें चउदह पुर्वका ज्ञान समज जातेथे. जैसे कुंडभर पाणीमें एक तेलकी बुंद डालनेसें सब हौदमें फैल जाती हैं; तैसेही उन्हे सिखाया हुवा, संक्षित शब्द विस्तार कर प्रगम जाताथा. और चउदे पुर्वका ज्ञान जिसके एक खुणेमें समाजाय, ऐसा द्रष्टी वाद अंगके पाठी (पडे हुये) भी विराजमान थे. इस ज्ञानके प्रमोत्कृष्ट रसमें जब उनकी अंत्रात्मा लीन होजातीथी. तब छे छे महीने जित्ना समय ध्यान में नितिक्रंत होते भी उनको भूख, प्यास, शीत, उष्णादी पीडा (दुःख) जनक न मालम होतीथी. ऐसे २ प्रबल बुद्धि वाले थे. तब लेखका कष्ट सहनेकी क्या जरूर पडे! चौथा आरा उतरे लगभग ९७६ वर्ष गये पीछे. 'श्री देवर्द्धी गणी क्षमा श्रमण' नामें आचार्य, किसी व्याधीकों निवारने सूठ लायेथे. और आहार किये बाद भोगवणेकों कानमें रखलीथी. सो वक्तसिर खाना भूल गये. और देवसी प्रतिक्रमण की आज्ञा लेती वक्त नमस्कार करते वो सूंठ कानमेंसे गिर पडी, उसे देख विचार हुवा की अब्बी एक पुर्व जित्ना ज्ञान होतेभी इत्नी बुद्धि मंद रह गइ है. तो आगे क्या होगा. जो

ज्ञान नष्ट हो गया तो घोर अन्धारा हो जायगा, इस लिये अब ज्ञान लिखनेकी वहुतही आवश्यकता है. लिखित ज्ञान भव्य जीवोंको आगे वहुतही आधार भूत होगा. इत्यादी विचारसें संक्षेपमें सूत्र लिखने सुरू किये. क्यों कि प्रथम आचारांगजीके १८०००७ पद थे. अब्बी फक्त मूलके २५०० श्लोकही देखाइ देते हैं. ऐसेही द्रष्टी वादांग छोड, इग्यारे अंगादी ७२ सूत्रोंकी लिखाइ संक्षेपमें हुइ, की जिनकी हुन्डी (नामादी) श्री समवायंगजी तथा नंदीजी सूत्रमें हैं. बाकीका सब ज्ञान उन्हीके साथ गया.

अब इस पंच कालमें तिर्थंकर केवल गणधर द्वादशांग के पाठी पूर्वधारी वगैरे जो अपार ज्ञानके धारक कोइ नहीं रहे.

---

* गाथा—[illegible]

[illegible]

अर्थ—[illegible] (अक्षर) एक पदमें होते हैं

गाथा—अठारस [illegible]

[illegible]

अर्थ—आचारांगजीके [illegible], सुगडांगजीके ३६०००, ठा-णायंगजीके ७२०००, समवायंगजी १४४०००, भगवतीजीके २२८०००, ज्ञाताजीके [illegible], उपासकदशांगके [illegible], अन्तगड दशांग के २३२८००० अनुत्तरोववायजी के [illegible], प्रश्न व्याकरणके [illegible], विपाकजीके [illegible] यह ११ अंगके पदकी संख्या जानना.

श्री उत्तराध्ययन जीके दशनें अध्ययनमें कहा हैः-

गाथा ॥ नहू जिणे अज्ज दिस्सइ, बहू मए दिस्सइ मग्गदे सिए, संपइ नेयाउए पहे. समयं गोयम मा पमा-यए ३१.

अर्थात् अब्बी इस पंचम् कालमें, नहीं देखते हे निश्चयसे श्री जिन, तिर्थंकर भगवान् व केवल ज्ञानी परन्तु बहुत हें. मोक्ष मार्ग के उपदेशनें बताने वाले जिनोक्त सिद्धांत तथा सद्बोध कर जीवोंको मुक्ती पन्थ मे चलानें वाले, 'सद्गुरु' उनके पाससे न्याय मार्ग मोक्ष पन्थ प्राप्त करनेमें, हे गोतम (जीव) समय मात्र प्रमाद आळश मत कर! इस गाथानुसार अबी तो भव्य मोक्षार्थि जीवोंको फक्त जिनोक्त शास्त्र, और सद्बोधके सद्गुरुओंकाही आधार रहा हे, मोक्षार्थियोंकी इच्छा सिद्धी करने वाला ज्ञान हे. वो इस वक्त सूत्र व ग्रन्थोंमे हें, और उसकी रहस्य गीतार्थों बहू सूत्री-यों उत्पात बुद्धी और दीर्घ द्रष्टी वालोंके पास हे. की जिनोंने अपने गुरुओंके पाससें यथा विधी धारण की हे, और वो न्याय मार्गमें लोकीक लोकोत्तर में शुद्ध प्रवृत्तीसें प्रवृत्त रहे, क्षांत, दांत, निरारंभी, निष्परिग्रही हें. उनके पास शास्त्राभ्यास करना, क्यों कि शास्त्र समुद्र अति गहन गुडार्थों करके भरा हे; उसकी यथार्थ

समज होना है. सोही आत्म कल्याण करने वाली है.

इस वक्त कित्नेक ले भग्गूओं. अभीमान के मारे गुरु गम विन, पुस्तकी विद्या पढ २ पंडितराज वन बैठे हैं, उन्होंने वहुतसे स्थान अर्थका अनर्थ कर शास्त्रका शस्त्र बना दिया है; अनंत भव भ्रमण मिटाने वाला पवित्र अहिंशा मय परम धर्म को हिंशामय कर अनंत भयका वढाने वाला वना दिया है; इस लिये ही चेताना पडता हैं की मोक्षार्थियोंको अव्वल. ज्ञान दाता गुरूके गुणोंकी परिक्षा शास्त्रानुसार कर, उनके पाससे ज्ञान ग्रहण करना चाहीये.

श्री सुयगडायंगजी सूत्रके ११ में अध्ययनमें धर्मोपदेशकके लक्षण इस प्रमाणें फरमायें हैं:—

गाथा — आय गुत्ते सया दंते, छिन्न सोए अणासवे.
जे धम्मं सुद्ध मइकालि, पडि पुन्न मणालिसं. २४

अर्थात् मन, वचन, काया, रूप, आत्माको पाप मार्गमें जाती हुइ रोक, अपने वशमें करी है कूमार्गमें आत्माको नहीं जाने देते हैं, सदा पंच इन्द्रि, और मनको, विषय में निवार धर्म ध्यान में लगा रख्खा है. संसारका जो आरंभ परिग्रह रूप प्रवाह हैं, उसे बंद किया है. मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद. कषाय, और अशुभ जोग, इन पंच आश्रवों करके रहित हुये हैं,

और अहिंशा सत्य दत, ब्रम्हचार्य अममत्व यह पंच महाव्रत धारन किये, इत्ले गुणके धारक होवें सोही, सत्य, शुद्ध, यथा तथ्य, श्री वितराग प्रणित धर्म फरमा सक्के है, वो कैसा धर्म फरमायंगे, तो की प्रतिपूर्ण न्युन्याधिकता रहित. देशवृत्ती (श्रावकका) या सर्ववृति (साधूका) निरुपम ओपमा रहित वैसा धर्म अन्य कोइ भी प्रकाश नहीं शक्के है, ऐसे गुणज्ञोंके पाससे ज्ञान संपादन करना.

अन्न, धन, आदी सामान्य वस्तुभी दातारके पाससे ग्रहण करतें अनेक लघुता करते है. तथा सरोवरमे से भी विना नमन किये पाणी प्राप्त नहीं हो सक्ता है. तो ज्ञान जैसा अत्युत्तम पदार्थ विना लघुता नम्रता किये कहांसे प्राप्त होगा. इस लिये, ज्ञान प्राप्त करनेकी श्री उत्तराध्ययनजीके पहले अध्यायमें यह रीती फरमाइ है:—

गाथा आसण गउ न पुच्छेज्जा, नेव सिज्जागउ कयाइवि
आगमुकुडु उ संतो, पुच्छेज्जा पंजलि उडो २२
एवं विणय जुत्तस्स सुत्तं अत्थंच तदुभयं
पुछ माणस्स सीसस्स वागरेज्जं जहा सुये २३

अर्थात्—अपने आसण (बिछोन) पे बेटा हुवा तथा सेजामें सूता हुवा कदापि प्रश्नादिक नहीं पूछे

क्यों कि आसण यह अभीमान जनक हैं, और अभिमान ज्ञानका शत्रु हैं. और सूता हुवा ज्ञान ग्रहण करनेंसे. अविनय और प्रमाद होता हे. यह ज्ञानके नाश करनेवाले हैं, इस लिये जब प्रश्न पूछनेकी या ज्ञान ग्रहण करनेकी इच्छा होय, तब, आसन अविनय मान और प्रमादको छोडके जहां गुरु महाराज विराजे होयँ उनके सन्मुख नम्रता युक्त आवे, और दोनो घुटने जमीको लगा, दोनो हाथ जोड मस्तकपे चडा, तीन वक्त (उठ वेठ) नमस्कार करें, और दोनो घुटनें जमीनको लगाये, दोनो हाथ जोडे, नमा हुवा सन्मुख रहके, उच्च वहुमान वचनोसे प्रश्नोत्त करें, सूत्र अर्थादिक दिल चायसो पूछे. और क्या उत्तर मिलता हे. ऐसी उत्कंठा युक्त एकाग्र उनके सन्मुख द्रष्टी रख, वो फरमावे सो, जी तहत्त, वचनसे ग्रहण करे, जित्ना अपनको याद रहे, उत्नाही ग्रहण करे. ज्यादा लोभ नहीं करे. ऐसी तरह विनय युक्त पूछनेसे, गुरु महाराजनें अपने गुरुके पास सें जैसा ज्ञान धारन किया. वैसाही उसे देवेंगे (पढावेंगे).

जो सद्गुरुके पाससे ज्ञान गृहण किया हे, उसकी पुनरावृत्ती करते (फेरते) किसी तरह की शंका उत्पन्न होवें, या कोइ शब्द विस्मरण हो गया (भूल

गये) हो. तथा किसीने प्रश्न पूछा. उसका उत्तर नहीं आया हो. तब पूर्वोक्त विधीसे गुरु महाराजके सन्मुख आके—

द्वितीयपत्र–"पृच्छणा"

२ पृच्छना अर्थात् पूछा करें. कोन्हें- कृपाल आपने अनुग्रह कर. मुजे अमुक पढाया था. उसमें इस प्रकार संशय उत्पन्न होता है. सो हे पुज्य, उसका निराकरण- निवारण करने आपको तकलिफ देता हु सो माफ किजीये. और मुजे मार्ग बताइये, इत्यादी नम्रता युक्त, अपने मन की शंका खुल्ली २ गुरुजी के सन्मुख प्रकाश करे, और गुरु महाराज उत्तर देवें, वो आप एकाग्रता से- उत्सुकता से. जी! तहेत इत्यादी सकोमल-मीठे वचनो से वधाता हुवा ग्रहण करें. जहां तक अपने चितका पूरा समाधान न होवें, वहां तक तर्क उठा २ के पूछताही जाय, शरमाय नहीं; डरे नहीं, घबराय नहीं निश्चल चित से पूरा निराकरण करले. देह रहित होवें, की कोइ भी उस बात को पूछे तो आप उसके हृदय सचोट ठसा सके, ऐसा निश्चय करे

* [illegible]

ऐसी 'गडवड' भी नहीं करे. ज्ञान फेरती वक्त ' अणुप्पेहा' अर्थात् उपयोग रक्खे. जो जो अक्षरोंका मुखसे उच्चार होवे. उसका अर्थ अपने मनमें, विचारता जाय उसपे, द्रष्टी फैलाता जाव, इसमें बहुत गुण हैं.

सूत्र "अणुप्पेहाएणं, आउयवज्जाउ सत्त कम्म पगडीउ धणीय बंधाउ, सिढिल बंधण बद्धा उपकरेइ, दिह काल ठिइयाउ, रहस्स उ काल ठिइयाउपकरेइ; वहु पएस गाड, अप्प पएस गाउपकरेइ, आउयं चणं कम्मं, सियबंधइ, सियनोबंधइ असायावेयणि ज्जंचणं कम्मं, नो मुज्जो २ उवचिणाइ; अणाइयंचणं, अणवगदग्गं, दीह, मद्धं, चउरंत संसार कंतारं, खिप्पा मेव वीइ वयइ' २२ उत्तरा० अ० २९

अर्थात्—उपयोग युक्त ज्ञान फेरनेसे, या शब्दक अर्थ परमार्थ दीर्घ द्रष्टीसे विचारनेसे जीव आठ कर्म मेंसे आयुष्य कर्म छोड बाकीके ७ कर्मकी प्रकृतियों जो पहले निबड (मजबूत) बांधी होय, उसे स्थिल (ढीली) करे, (जलदी छूट जाय ऐसी) बहुत काल तक भोगवणा पडे, ऐसा बंध बांधा होय तो; थोडेही कालमें छुटका होजाय ऐसी करे. तिव्र भाव (बीकष्टरससें उदय आने) की होवे, उसे मंद भाव (सरलपणें)

उसे अक्षेपनी कथा कहनी. इसके ४ भेद [1] प्रथ
साधूका धर्म ५ महाव्रत, ५ सुमती, ३ गुप्ती, (यह १
चारित्र) आदी कहे, जो साधू होने समर्थ न होवे
उनके लिये श्रावकके १२ वृत॰ आदी कहे, के यथा
शक्त धारन करनेकी सूचना करे. [२] निश्चय में,
और व्यवहारमें, प्रवृतनेंकी रीती सद्वाद शैलीसे कहे,
की निश्चय में मोक्ष ज्ञानादी त्रय रत्नकी आराधनासें
और व्यवहार में रजुहरण मुहपति आदी साधूके चि-
न्ह व शुद्ध कियासे, निश्चय विना व्यवहार, और
व्यवहार विन निश्चय की सिद्धी होनी मुशकिल है,
व्यवहारमे शुद्ध प्रवृत्ती कर, निश्चय सिद्धीकी क्षप करनेसें
सर्व सिद्धी होती है. [३] श्रोताओंको शंशयका उ-
च्छेदन करनेको अपने मनसेही प्रश्न उठाके, आपही
उसका समाधान करें की जिनसे इष्टार्थ सिद्ध होवे,
तथा प्रश्नका उत्तर नमिक शब्दसे दे समाधान करें
[४] सत्य सरल सबकों रुचें ऐसा सद्बोध करे. परन्तु

॰ १ त्रस जीवकी हिंसा नहीं करे, स्थावरकी मर्याद करे. २ बडा झूट नहीं बोले. ३ बडी चोरी न करे. ४ परस्त्रीका त्याग करे. [५] परिग्रह की मर्याद करे ६ दिशाकी मर्याद करे, ७ उपभोग परिभोगकी मर्याद करे. ८ अनर्थ दंड त्यागे, ९ सामायिक करे, १० दिशावगासी करे, नेम चितारे, ११ पोषा करे, १२ अतीथ को १४ प्रकारका सुजता दान उलट भावसे देवे.

पक्षपात राग द्वेष बडे. या आत्म श्लाघा. परनिंदा होवे ऐसा उपदेश नहीं करे. "पापकी निंदा करे परंतु पापी नहीं."

२ "विखेवणी" अर्थात विक्षेपनी. प्रथम या श्रधासे चलित प्रणामी को. पुनः सद्बोध कर आत्मा स्थिर करे, सो विक्षेपनी धर्म-कथा. इसके ४ भेद[१] अन्य मत्त के परिचय में. तथा ग्रन्थावालोकन में. किसी की श्रधा भृष्ट हुइ होय तो. उसे जैन मत का गहन सुक्ष्म ज्ञान बता के. अन्य मत की बातों से मिला के, प्रत्यक्ष फरक बतावे: कि जिसकी अक्ल तुर्त ठिकाणे आजावें. एसा बोध करे. [२] एकान्त अन्यमतमें ही, किसी का मन लगा होय तो. उसे उसी के मत के शास्त्रों में जो साधू ओं की कठिण क्रिया. तथा जैन मत से मिलती बातों. होवे. सो बता के उनसे पूछे की ऐसे चलने वाले जैन है, या अन्य यो सत्यता द्रष्टीसे बता के जैन का द्रढ श्रधालू करें. [३] –– उनकी श्रधा जैन मत पे जमी देखें. तब उसके का मिथ्या कंद निकंद करने. न्याय प्रमाण के ी सें खुल्लम खुल्ला मिथ्यात्व व का स्वरूप बता धार कर निर्मळ करे. [४[जिन का निर्मळ हु- ेगया हो- उनके हृदय में पीछा मिथ्यात्व प्रवेश

न कर ऐसा सम्यक्त्व का विस्तारसे यथा तथ्य रुची कारक स्वरूप बता के तथा अनेक प्रश्नोत्तर कर- पक्का करे, की वो किसी का डगाया डगे नहीं.

३ "संवेगणी" अर्थात सं=सीधे, वेग=रस्ते च- लावे सो संवेगणी कथा. इसके ४ भेद (१) जिन २ वस्तुवोंपे संसारी जीवोंका प्रेम है, उनकी अनित्यता बतावे की देखो! देखते २ वस्तूवोंके स्वभावमें, स्वरूपमें कैसा फरक पडता है. ताजी वस्तु और वासी वस्तुको देखनेसे मालम होता है. वस्तूका स्वभाव क्षिण भंगू र हैं, अर्थात क्षिण २ में पलटता हैं. क्यों कि जो गुण और जो स्वाद गरममें था, वो ठन्डी हुये पीछे न रहा: ऐसेही इस शरीर कों देखो. उत्पन्न हुये पीछे जवानी तक, कैसी सुन्दर तामें वृधी होती है. फिर वृधवस्था में कैसी हीनता होती है, और सरीर नष्ट हो जाता है. ऐसे सर्व जगत्के सर्व पदार्थ जानना. क्षिण २ में नंव २ पुद्गल उत्पन्न होते हैं; और ज्युने विनाश होते हैं. सब पदार्थोंमें कुछ एकही दम फरक नहीं पडता है; परन्तु पडता २ ही पडता है, और ए- कदम पानीके परोटे जेसे. विनाशको प्राप्त होते हैं. ऐसा पुद्गलोंका स्वभाव जाण, ममत्व निवारे. फिर मनुष्य जन्मादी सामुग्रही प्राप्त हुइ है. उसकी दुर्ल-

भोगवते है. क्षेत्र वेदना परमाधामीकी वेदना वगैरे वरणन करें, क्षिणिक सुखके लिये. सागरोपमका दुःख पावे. इत्यादी रीत समजाणे से वो पापको छोड धर्म मार्गमें उद्यमवंत होवे. [२] "न पेम रागो परमत्थी वन्धा" अर्थात जगतमें प्रेमराग (स्नेह फास) जैसा और बन्धन नहीं है, प्रेम राग रुप फासमें फसे जीव अपना सुख दुःख, भले बुरेका विचार नहीं करते. स्व जन मित्रका पापग करने. अनेक आरंभ करते है, परन्तु उनकी स्वार्थता को नहीं पहचानते हैं. देखिये, जब 'कुंकू पत्री' देते हैं. तब कितना परिवार भेला होता हैं, ऐसेही संकट पडे तब, स्वजनकी सहायता लेने 'संकट पत्री' देवो तो किते स्वजन आयेंगे * अजी! आने तो दूर रहे, परंतु माल खाने वाले ही कहेंगे की क्या लडू किये बिन नाक जाता था? इत्यादी कइ उलटा अपमान करते है, ऐसे मतलबीयों को पोष. पापका भारा अपने सिरले, नर्क तिर्यचादी गति में किये, कर्म के फल एकलेही

---

* एक मराठी कवीने कहा है:-संपदा बहु आलीयावरी, सोयरे जमा होती त्या वरी। गेली दाच ते रुष्ट होती, बंधू सोयरे जाती सोडूनी.

लों ने अपने साथ अनंत वक्त दगा किया कभी
संयोग मिल हंसा दिया. तो कभी अशुभ संयोग
ला रोवा दिया. कभी नवग्रयवेक तक उंचा चड
और कभी सातमीं नर्क के तले नीगोद में दवाया
भी सव के मनको रमणीक वनाया, और कभी भिख
रुप बना, अपने उपर सव को थुकाय. ऐसी २ अनंत
बिटंबना इन पूद्गलो नें अपनी अनंत वक्त करी हैं!
और भी जहां तक इन की संग नहीं छूटेगा वहां त-
क पुद्गलो का जो स्वभाव है की पुद्=पूरे (मिले) औ-
र गल=गले (विछडे). वो कदापि नहीं छोडने के फि-
र कौन मुर्ख वने की उनकी संगत में लुब्ध हो, अप-
नी फजीती करावें. ऐसा जान, जो अपनी आत्मा को
सुख चाहवो तो. पुद्गलों का ममत्व त्यागो. और ज्ञान
दर्शन चारित्र यह रत्न त्रय हैं. इनके स्वभावमें कभी
वी फरक (फेर) नहीं पडता है, ऐसे स्थिर स्वभावी
निजात्म गुण हैं. उनको पहचान, अखंड प्रिती करे!
की वो अपने रूप चैतन्य को वना, अनंत अक्षय अव्या
वाध सुखका भुक्ता वनावे, इस वोद्वसे मोक्ष के तर्फ
श्रोताओंका मन खेंचे.

४ निर्व्वेगणी-अर्थात निर्वृतनी संवेगणी में सं-
सारका यथार्थ स्वरूप दर्शाया. और निर्व्वेगणी में

जरूर भोगवेंगे, यथा द्रष्टांत—अव्वल पक्वान भोगवे फिर कांदा (प्याज) भोगवे तो. उसे पहले पक्वानकी डकार आयगी, और फिर कांदेकी. दूसरा प्रत्यक्ष देखते है. एक पालखीमें बेठा और चार उठाके चलते है. पालखी वाला उतर गादीपे लोटता है. और उठाने वाले पांच दाव (चांप) ते है, वो पांचही मनुष्य एक से होके प्रत्यक्ष पुण्य पापके फल भोगवते हैं, और जो कर्म फिर जाय तो उठाने वाले पालखीमें बेठ जाय. और बेठने वाले पालखी उठाने लग जाय, यह प्रत-क्ष पाप पुण्यकी विचित्र रचना परभव के इस भवमें भोगवते द्रष्टी आते हैं, [४] ऐसेही कित्नेक ऐसे कर्म है की, इस भवके शुभ कृत्य के फल आगेके जन्ममें भोगवेंगे. जैसे कित्नेक धर्मात्मा ओंको दुःखी देखते है. तब मनमें शंका लाते है की, जो धर्मसे सुख हो-ता होता तो, यह दुःखी क्यों? परंतु वेम लानेका कुछ कारण नहीं है. प्रत्यक्ष देखीये, अभी कोइ औषध लेते है. वो लेतेही एकदम गुण नहीं कर देती हैं. परन्तु मुद्दतपे, पथ्य पालन से गुण कर्ता होती है. ज-हां तक रहोगका विकार क्षय नहीं होगा. वहां तक पहले औषधीका गुन दर्शना मुशकिल है, तैसेही गत अशुभ कर्मका जोर कमी न होवे, वहांतक धर्म का—

फल दर्शना मुशकिल हें, परंतु इत्ना तो निश्चय समजी ये की, "करणी तणा फल जाणजो. कदीय न निष्फल होय" जो जन्मतेही सुखी द्रष्टी आते हैं. वो पूर्वोपार-जित पुण्यकाही फल हैं. एसेही ह्यांकी करणीभी आगे फल देगी. निर्वेगनी कथाका मुख्य हेतु यह है की "कडाण कम्मा न मोरक अत्थी." अर्थात् कृत कर्मके फल अवश्य मेव भोगवनेही पडते हैं; फिर इस जन्म में देखो, या आगे के जन्ममें एसा समज कर्म बन्धसे बचने प्रयत्न हमेशा करते रहीये.

वांचना, पूछना, ओर परियट्टणा कर, जो ज्ञान पक्का किया हें, उसे इन चारही प्रकारकी धर्म कथा कर उसका लाभ दूसरे को देना चाहीये.

यह धर्म ध्यानके चार आलम्बन आधार कहे है. इन चारही काममें धर्म ध्यानी मनको रमण कर इन्द्रियोको विकार मार्गसे निवार. आत्म साधन अच्छी तरह कर, इष्टितार्थ सिद्ध कर सक्ते हे.

चतुर्थ प्रतिशाखा-'धर्मध्यानस्य अनुप्रेक्षा'

"सूत्र" धम्मस्सण झाणस्स चत्तारी अणुप्पेहा पन्नंता तंजाहा अणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा, एगत्ताणुप्पेहा, संसाराणुप्पेहा

अर्थात्-धर्म ध्यानीकी चार अनुप्रेक्षा भगवंतने फरमाइ सो कहे हैं, धर्म ध्यान ध्याता महात्मा चार प्रकार अनुप्रेक्षा उपयोग युक्त विचार करते हैं. सो-१ अनित्यानुप्रेक्षा. २ असरणाणुप्रेक्षा. ३ एकत्वानुप्रेक्षा. और ४ संसारानुप्रेक्षा.

प्रथम पत्र-"अनित्यानुप्रेक्षा"

धर्मास्ति यादी ⊛ षट द्रव्य रूप लोक का, द्रव्य द्रष्टिसे अवलोकन करने से छहो द्रव्य, अपने २ गुण में. व स्वरूपमें. शाश्वत (नित्य) हैं. परंतु इन्की पर्याय (अवस्था) स्वभाव विभाव रूप. उत्पन्न होती हैं,

⊛

नाम	धर्मास्ति	अधर्मास्ति	आकाशास्ति	कालास्ति	जीवास्ति	पुद्गलास्ति
द्रव्यसे	एक असंख्यप्रदेश	एक असंख्यप्रदेश	एक अनंत प्रदेश	अनंत अप्रदेशी	अनंत असंख्यप्रदेशी	अनंत अनंत प्रदेशी
क्षेत्रसे	लोक प्रमाणे	लोक प्रमाणे	लोकालोक प्र.	अढाइ द्विप प्र.	लोक प्रमाणे	लोक प्रमाणे
कालसे	अनादी अनंत	अ. अनंत	अ. अनंत	अ. अनंत	अ. अनंत	अ. अनंत
भावसे	अरूपी	अरूपी	अरूपी	अरूपी	अरूपी	रूपी
गुणसे	अचेतन्य, [illegible] क्रिय, चलन सहाय	अचेतन्य, [illegible] क्रिय, स्थिर सहाय	[illegible] क्रिय, अवकाश [illegible]	अचेतन्य, [illegible] वर्तना [illegible]	[illegible] दर्शन ज्ञान [illegible]	पूरण गलन

की रही हुइ घटिका पुर्ण होनें से क्षिण मात्र में सरीर संपती का क्षय हो जायगा! फिर तुम कोट्यान उपाय कर, गइ घटि को बुलावोगे तो वो नहीं आने *की और पस्तावोंगे तो भी कुछ नहीं होने का. ऐसा जाण हे हितार्थी ! जो बाकी आयुष्य रहा हें. उसे व्यर्थ मत गमावों. यह चिंता मणी रत्न तुल्य घटि का, कू कर्म में व्यय (खर्च) मत करों, इस क्षिणक संसार की क्षिणिक स्थिती कों प्राप्त हो. रही क्षिण में सुधारा करने का हो सो कर घडी कों लेखे लगावों.

और जो तुम शरीरको नित्य मानते होवो तो यहभी नित्य नहीं है, क्षिण २ में इसके स्वभावमें, रूपादी गुणोंमें फरक पडता हुवा परोक्ष और प्रत्यक्ष भाप होता है, देखीये, अव्वल जब जीव मनुष्य पर्याय रूप गर्भमें आ उत्पन्न होता है. तब माताका रुद्र, और पिता का शुक्रका, अहार कर. मांड (चांवलोके धोवण) जैसा सरीरकों प्राप्त होता हें. फिर काल

---

* गाथा—जाजा वच्चइ रयणी, नसा पडि नियत्तइ,
अहम्म कुण माणस्स, अफला जांति राइ उ.

अर्थ—जो जो दिन रात्रीं जाते है, वो पीछे नहीं आते हैं, अधर्मीके निष्फल जाते है. और इसके आगेकी गाथामें कहा है, धर्मीके दिन रात सफल जाते है.

भस्म करदीया, यह इस सरीरकी दिशा क्षिण २ में पलटती हुइ दिखती है. यह सरीर नित्य (सदा) अभीनव रूप धारण कर्ता है, समय २ में पलटता है, बालवस्थाको तरुणपण गिलता है, तरुण पणेको वृधपणा और वृधपणेका काल भक्षण कर जाता है, यह मच्छ गलागल लगी है. परन्तु ऐसा नहीं समजीये की बालका तरुण और तरुणका वृध, जरूर होगा. यह भरोसा नहीं है. कालको बाल युवा वृध का कुछभी विचार नहीं है. कालरूप घटीको तो हमेशा चन्द्र सूर्य फिरा रहें है, जैसे घटीके दो पट होते है, तैसे कालरूप घटीका, भूत कालरूप तो स्थिर पट है, और भविष्य कालरूप चल पट है, अयुष्य रूप खीले से अडके जो रहे हैं, वो बचे हैं, 'खूंटा छुटा के आटा हुवा', अपने देखते बहुतेका हो गया, और बाकी रहे उनका भी एक दिन होनेवाला; ऐसी इस सरीर की दिशा देखते जो इस सरीरको नित्य जाण. मोह

---

* उपद—मनुष्य तनो अवतार वे पाली से दीहे. कढो रोग स्वास साडे कोप पडो. फिन्ह सगो न कोप. अरघा ने नांही छवाइ. नन्हे नन्हा होत. इसे सब टोक हुवाइ. वी आदा बैठ रैकरा. नन हुवा सब लोकरा पविवृश पाठ वौ कहे भव दो न छूटे रोवरा. !

जिली शिघ्र करलीजीये, की इसे छोडती वक्त पश्चा-
ताप नहीं करना पडे.

जैसी सरीरकी अनित्यता है, वैसीही कुटंवकी भी समजीये, क्यों कि मात पितादी स्वजन भी, उदारिकही सरीरके धरण हार है, अपने पहले आये, माता, पिता, काका, मामा, वगैरे, अपने वरोवर आये, भाइ, वेन, स्त्री, मित्र, वगैरे अपने पीछे आये, पुत्र, पौत्रादिक और भी जक्त वासी जन, देखते २ आयु खुटे चल गये हें, चल रहे है, और रहे सो एक दिन सव चले जावेंगे, "जो जन्मा है, सो अवस्य मरेगा" इस लिये कूटंव परिवार को भी अनित्य समर्जीये.

जेसा कुटम्ब अनित्य हे. तैसे धनभी अनित्य है, इसे 'दोलत' कहते हें, अर्थात आना और जाना ऐसी दो लत (आदत) इसमें हैं, तथा पोशकको क्षिण में हसाना और क्षिणमें रूलाना ऐसी दो आदतें हैं. यह किसीके पास स्थिर नहीं रहती हैं* "जर जोरु और जमीन, किनकी न हुइ यह तीन" जरमनि तीजोरीयोंमें, खूव उंडे खड्डेमें या नग्गी समशेरोंके पहेरेंमेंभी, खूव वंदो-

* पृथवी की हड्डी आदी पाणी का रक्त मुत्रा दी अग्नी का जठराग्नीयादी वायु श्वासोश्वास और आकाश रुप पोलार एंसे भूत

द्यांहीज प्रलय पाता है, या रह जाता है, और आप आया था वैसाही, इकेला जीव आगेको चला जाता है, ऐसा तमाशा एकही वक्तमें पूरा नहीं होता हैं; परन्तु अनंत काल से येही रीत चली आती है, और चली जायगा, मिलना और बिछडना, येही पुद्गलोंका धर्म हें, सोही बना रहगा! अच्छा का बुरा और बुरा का अच्छा; नवा का ज्यूंना और ज्यूंनाका नवा; कोइ प्रतक्षतासे और कोइ परोक्षता (छुपी रीत) सें, पुद्गलोंका रुपांत्र होनेका जो स्वभाव है, वो होयाही करता है, यह तमाशा देखते हुयेभी इसे नित्य मान लुब्ध हो रहे है, इससे ज्यादा अश्चर्य और कोनसा होय?

मुढ प्राणी का आयुष्य ज्यों ज्यों हीन स्थिती कों प्राप्त होता है, त्यों त्यों ममत्व और पापकी वृद्धी करता हैं, और उनके फल भुक्तने आपभी रूपांत्र पा के रौरव नर्कमें गिरता है. तब असाह्य दुःखसे घबरा कर रोता है.

भाइ! अग्नी स्नानसे शीतलता, और विष भक्षणसे अमरत्व चहाते हैं, तैसेही आत्म घाती जन पुद्गल के संगसें सुख चहाते हें. इन अज्ञको कैसे समजावे.

जाते हैं.

(५) संध्या [श्याम] की वक्त वहुदा आकाशमें संध्याराग [विचित्र रंग] का दर्शाव होता हैं, और क्षिणंत्रमें अन्धकार फैलजाता है.

इत्यादी अनित्यता दर्शानेके अनेक वनाव हमेशा वनते हैं. और देखते है, परं मोहकी धुन्धी मे मुग्ध वने, कौन विचार करें!!

एक समय राज्यारूड महोत्सव की धामधूम लश्का उत्सहा द्रष्टी पडता है; और उसी स्थल उसःही समय, पुद्गलोंका रूपांतर होनेसे मृत्युआदी निपजनेसे हाहाकार मच जाता है स्मशान गमनकी तैयारी होती कों, क्या नहीं देखते हैं? ऐसे २ अनित्यता वतानेके जक्त में थोडे साधन हैं क्या?

ज्यादा क्या कहूं, जिन २ प्रमाणुंओ पदार्थों कर तेरे सरीरकी रचना हुइ, और पोपणता होती हैं, वेही प्रमाणुं गये कालमें तेरे शत्रु वन तेरे धारण किये हुये अनंत सरीरोंका नाश किया था, की उनके साथ तूं अत्यंत प्रेम करता है. और वक्त पडे, येही तेरें सरीरके घातक वन जायेंगे मतलबकी पुद्गल संयोगसेही सम्वन्ध जुडता हैं. और संयोगसेही विखरता है.

श्री भगवतीजी सूतमें 'अविचय' मरण कहा

हे, की जो जगत्के सर्व पदार्थका आयुष्य क्षिण २ में क्षय करता हें, जैसे अंजली [हाथके खोबे] में लिया हुवा पाणी बुंद २ कर कमी होता हैं, तैसेही सब पदार्थोंका आयुष्य घटता है.

औरभी जैसे १. स्वप्नकी सायबी, २. मेघ पटलों (बादलों) का समोह, ३. विद्युत (बिजली) का चमत्कार, ४. इन्द्र धनुष्य, ५. मायबी सायबी, वगैरे अनेक पदार्थ क्षिणिकताके सूचक हें. उनको ऑखोसे देख. हृदयमें विचार सोंच समज मानूं ये मेरे सद्बोध कर्ता गुरुही हैं. और समजा रहे हैं, की हे चेतन्य अब चेत! चेत !! मोह धुन्धी उडा, अज्ञानका पडदा दूर कर, और अंतःरिक ज्ञान लक्ष लगाके देखकी कपिल केवली ने फरमाया है "अधुव असासयं मी, संसारंमी दुरक पउरए" अर्थात् यह अध्रुव (अनिश्चल) अशाश्वत और दुःखसे पूर्ण भरा हुवा संसार हैं, इसमें रहे जो ममत्व मुरछा करते हैं, वोही दुःखी होते हैं,

हरीगीत —बहु पुण्य केरा पुंज थी शुभदेह मानव नो मल्यों. तो ए अरे भव चक्र नो आंटो नही एकै टल्यो. सुख माप्त करतां सुख टलेछे, लेश एलसे लक्षो, "क्षिण २ निरख भाव मरणनो कां अहो राची रहो."

कवी रायचन्द

जब जीवोंके देखते पदार्थोंका नाश होता है, तो जीवकोही पश्चाताप होता है, की हाय मेरे प्राण प्यारी वस्तु कहां गइ. और पदार्थ छोडके जीव जाता है, तबही वोही रोता है, की हाय इस लायची को छोड. अब मैं चला न की वो पदार्थ रोयेंगे, की मेरे मालक कहां गये. क्यों कि उनके मालक बणने वाले अनेक बेठे है.

ऐसा समज है सुखार्थी धर्मार्थी जीवो! इस अनित्यानुप्रेक्षा के सत्य विचार सें अनित्य अशाश्वत वस्तुपें सें ममत्व त्याग, निजात्म गुण ज्ञानादी जो एक नित्य शाश्वत, अक्षय अनंत उनमें रमण कर सुखी बनो.

द्वितीय पत्र—"असरणाणु प्रेक्षा"

साधार मतसे हरेक तर्फ अनेकांत द्रष्टीसें देखा जाताहै, निश्चयसें तो कोइ किसीको सरण कादाता आश्रय का देने वाला नहीं है क्योंकि सर्व द्रव्य अपनीर शर्क्ती के बलसे ही टिक रह हैं, इस सबबसें कोइ किसीका कर्ता हर्ता नहीं है, व्यवहार द्रष्टीसें पक्ष निमित मात्र यह जीव दुःख, कष्ट उत्पन्न हुये, अन्यके सरण

मित्रको सरण दाता समजता होय तो भी तेरी भूल
हैं निर्मोह बुद्धीसें देख. जो तूं द्रव्योपारजनमें कुशल
सबकी इच्छा प्रमाणें चलनें वाला हूवा तो माता पि-
ता कहेंगे. हमारा पुत्र रत्न हैं, भाइ कहेंगा मेरी वा-
हां है, बेहन कहेगी मेरा वीरा हीरा है, स्त्री कहेंगी
मेरे भरतार करतार (परमेश्वर) है. इत्यादी सर्व कुट-
म्ब हुकम हाजीर रहे, जी! जी! करते हैं. और जो
मूर्ख बेकमावू होय तो; मात पित कहे पेटमें पत्थर पडा
होता तो नीम (मकान के पाये) में देने काम आता,
भाइ कहे मेरा वैरी है. बेहन कहे किसका भाइ लाइ
(गरीब) स्त्री कहे मौल्या (मोल लिया गुलाम है) इ-
त्यादी सब सज्जनों की तर्फसें अपमान और दुःख प्रा
होता है, स्वार्थ लुब्ध मातानें ब्रम्हदत्त चक्रवृत को
रनेका उपाय किया, कनक रथ राजा जन्मतें पुत्रों-
मारे, भरत बाहुबली दोनो भाइ आपसमें लडे. को
क कुमरने अपने पिता श्रेणिक राजाको पिंजरेमें
किया, दुर्योधननें सब कुटम्बका संहार किया.
सूरी कंता राणीनें प्यारे पति प्रदेशी राजाके प्रा-
ण कर लिये. ऐसे २ प्राचीन अनेक दाखले हैं.
तमान में बणाव बण रहे हैं. ऐसे मतलबी जन
त कदापि न होने वाले.

ता नहीं, अग्नीमें जलता नहीं, हवामें उडन
वज्रमय भींतसे भी रुकता नहीं, यम जैसे प्रा
ही दबता-डरता नहीं है, काल बडावे विचार
ल. वृध, तरुण, नव प्रणेत, धनाढ्य, गरीब,
दुःखी अनेको के पालने वाले और अनेकोके संह
वाले ऐसे २ मनुष्योंको, पशुवोंको, दिपवाली य
तेंहवारोंको उंच नीच ग्रहका, काम पूरा नहीं हु
उनका, रात्री दिन भोगमें मशगुल उनका, इत्या
किसीका भी जरा विचार नहीं है, कैसा ही हो झप
टमें आयाही चाहीये, की तुर्त गट काया, अनंत प्रा
णीयोका अनंत वस्तुओंका भक्षण अनंत वक्त किया,
तोभी कालका पेट नहीं भराया, साक्षात् अग्नी सेंभी
अधिक सदा जलती महा विक्राल राक्षसही है, महा
प्रतापी है, वडे २ सुरेन्द्र, नरेंद्र, इसकी द्रष्टी मात्र सें
अत्यंत त्रास पाते है. भान भूल जाते हैं, आर्त, रौद्र,
ध्यान ध्याने लगते है, उनका भी मुलायजा कालको
नहीं है यह तो फक्त अपने मतलब साधनेकी तर्फही द्रष्टी
रखता है. ऐसे निर्दयी निर्लज्ज, काल वेतालके फास
में पडे जीव जो अन्यके सरण से सुख चहाते है, वो
मृगजल सें प्यास बुजाना चहाते हैं, वांझा का
खिलाना चहाते हैं, या

एक मनुष्य बन में सूता था, की वहां रात्री कों अचिंत्य दावा नल (आग) लगी, और उस मनुष्य कों घेर लिया. उश्नता लगते वो तुर्त जागृत हो, एक वृक्षपे चड बेठा, और चारही तर्फ जंगली जानवरों कों जलते देख, हँस ने लगा. की यह जला. यह मरा! परंतु मुड यों नहीं समजता हे की. यह वृक्ष जाला की मेरीभी येही दिशा होगी. अर्थात्-जेसे जगत जीव मरतें है वैसेही एक दिन अपन भी मरेंगे! इस्मे संशयही नहीं!!

बाप, दादे, गये वोभी इस धन, कुटम्ब. कर अपना रक्षण नहीं कर सके, तो तुम को न स्मर्थ वली बच सकोगे.

निश्चय समजीये. सब सज्जन मुह ताकतेही खडे रहेंगे. सब संपती• निजस्थान हीं पडी रहेगी, और वित मुनी के कहे मुजब, एक दिन सब की दिशा होगी.

• सेवा—कंचनके आसन, मुखमलन कंचनके पलंग, राव इनामत पर रहे हाथी हद झूमनते, घोडे घुरवावनते, कडे नाम द.नोंमे पडी थंभ ही रहे, मेरा और मेरी दौलतका पार नहीं, बजागोंके ढकेपे ताके ही पडे रहे, देह छोड दिगे नग हो चले दिगम्बर, कुबके कुटम्ब सब रोवते रहे गये,

एसा निश्चय कर, हे सुखार्थी जनो; इस दुर्लभ मनुष्य जन्मादी समग्री कों अन्यके सरण के लालच में पड मत गमावो निश्चय करो की,, इस जगक्का कोइ भी पदार्थ मेरा रक्षक नहीं हैं; सब भक्षक हैं, एसा जान उनपेसे ममत्व त्याग —तरण तारण, दुःख निवारण; निराधार के आधार गरीबनिवाज, महा कृपालु, करूणा सागर, अनंत दुःखा से उधार के कर्ता त्रिकाल काल व्याल के दुःख के हरता. अनंत अक्ष अजर अमर अविन्याशी अतुल्य सुख रुप मोक्ष स्थानके दाता व्यवहारने तो श्री अर्हंत सिद्ध आचार्य उपध्या और साधू यह पंच प्रमेष्टी हैं. और निश्चय में अपने आत्मा गुण ज्ञानादी त्री रत्न की शुद्धता हैं जिनका अश्रय सरण ग्रहण कर हे, अजरामर आत्मा परमानंदी परम सुखी बन!!

तृतीय पत्र—"एकत्वानुप्रेक्षा"

जेसे सुवर्णका और मट्टीका अनादी सम्बन्ध होनेसे दोनो एकही रुपसे दिखते हे अर्थात् सुवर्णभी लाल मट्टि जेसा दिखता हैं परन्तु हे दोनो अलग २, जो दोनो एकही होय तो मट्टी मेंसे सुवर्ण जुदा निकले नही.

रूप मेलको दूरकर चैतन्य निजात्म रूपको प्राप्त होता है.

ऐसेही दूध में घी मिला होता है, और उसे निकालने खटाइ, रवाइ, भाजन, मथक (मथन करने वाला) का संयोग होनेसे छाछ रूप मेलको छोड घृत अपने रूपको प्राप्त होता है, तैसेही अतर और पुष्प लोह और चमक, वगैरे अनेक दृष्टांत कर जीवका और कर्मका अनादी सम्बन्ध समजना. और सुवर्ण की तरह इन पदार्थोंको अनादी सम्बन्ध छुडाके, निजरूप में प्राप्त करनेके, अनेक उपाय समजने. तैसेही जीवकोभी अनादी कर्म सम्बन्धसे छुडाके, निजरूपमें प्राप्त, करने के, वरोक्त ज्ञानादी चार साहित्योंका संयोग अक्षीर (पुक्त भक्रम) उपाय हैं.

वडा विद्वान और सदा शुची पवित्र रहने वाला वारुणी (मदिरा) के नशे में गर्क हो, अशुची से भरे उकरडेपे लोटनेमें गादीपे लोटने जैसा मजा मानने लगताहै. और गटरोंकी हवाको वगीचेकी सहल समजने लगता है, उसे अशुचीसे निवृतनेके वोधकको मूर्ख जाण गाली प्रदान करने लगता है. वोही जीव नशेसे निवृत वाद, अपनी कूदिशा देख, शरमाने लगता है, और किसीके विना कहेही उकरडेको त्याग, (छोड) चला जाता है. ऐसेही जीव रूप पवित्र पुरुष, मोह

मिले, इनके प्रसंग कर मेने ४ गत २४ दंडक ८४लक्ष जीवा योनीमें, उच्च नीच जाती स्थानमें, अनंत विटंबना भुक्ती हे. अब इनका संङ्ग छोड मुजे एकत्वता धारण करनी योग्य हें. ऐसे विचार से सर्व सम्बन्ध परित्याग कर, वितराग दिशाको अवलम्बे.

जैसे बद्दलो के फटनें सें, सूर्य स्व प्रकाश को प्राप्त होता हे, तैसेही कर्म पड्ल दूर होनें से आत्म के निजगुण ज्ञानादी प्रका सित होतें हैं, ओर चेतन्य अपना स्वरुप पहचानता हें.

एक त्वानु प्रेक्षक, विचार करे की, में कौन हूं. एक हूं या अनेक हूं, दीखने रुपतो एकही सरीर का धारक हूं. परन्तु जो एक मानू तो. मातपिता कहे मेरा पुत्र, क्या में पुत्र हू? वेहन कहे मेरा भाइ. तो क्या में भाइ हूं? स्त्री कहे भरतार. तो क्या में भरतार हूं? पुत्र पुत्री कहे पिता तो क्या में पिता हूं, यों कोइ काका. कोइ बाबा, कोइ मामा माशा, व्याइ, जमाइ ऐसे २ सब मेरा २ कर मुजे बोलातें हें, अब विचार होता हें कि में कौन हू. ओर किसका हू, हा,! अश्चर्य; मेरा पत्ता लगना ही, मुजे मुशकिल हुवा. में एक हो कित्ने नाम धारी. कित्ने का हुवा, परंतु जो निश्चयात्मक हो विचारता हूं तो, यह सब कर्मोके चाले हैं;

हीं, संयोगी नहीं, वियोगी नहीं, इन सब भावों से अलग ही हैं, फक्त प्रेक्षक कों देखाने हँसाने. फसाने. रुलाने, अनेक भाव दर्शाता हैं. और अंतर में वो सब सें अलग हैं, तैसेही संसार रुप नाटक शाळामें चैतन्य नट कर्म संयोग अनेक उंच नीच. एकेंद्री से पचेंद्री तक चंडाल से चक्रु वृती तक, रुप धारण कर. उस रुप प्रमाणें अनेक योग्या कर्म किये. और अखीर एकही कायम नहीं राह! सब निज २ स्थान रहगये. और चैतन्य अलग ही राह. यह देखीयें कर्मो का तमाशा. अब जरा कर्म रुप नशाका उतार आया दिखता है, जिस सें थोडा भान आया, और ऐसा विचार होने सें कर्मो की विचित्रता समज भेद विज्ञानी बना हें, तो अब विभाव कों त्याग स्वभाव में रमण कर.

देख! जब तूं आया (माताकी योनीसे बाहिर पडा) था तब इकेलाही था. और तेरे देखते २ अनेक गये, वो इकेलाही गये. वैसे तूं भी इकेलाही जायगा अशुभ कर्म के फल भोगवने नर्कमें, और शुभ कर्मके फल भोगवने स्वर्गमें गया तो इकेलाही गया! धन, वस्त्र, मकान, भोजन, भुपण, वगैरे का हिस्सा (पांती) लेने वाले अनेक स्वजन हें. परन्तु कृत कर्म के फलों-

"संसरति इति संसारः" जिसमें परिभ्रमण करना पडे, सो संसार, चार तरह का है: उन्हे चार गति कहते हे गतागत (आवा गमन) करे सो गति चार:

१ नर्क गति न=नहीं+अर्क=सूर्य. अर्थात् अन्धकारसे भरी हुइ अन्धकार मय सो तम* गति या नर्क गतिके ७ स्थान अधो (नीचे) लोकमें एकेक के नीचे हे, (१)† रत्न प्रभा=श्याम वर्णके रत्नमय भयंकर सर्व स्थान. २ शर्कर प्रभा=तरवारसेभी अति तिक्षण सर्व स्थान हें. (३) 'वालू प्रभा'=भाड भूंजके भाडकी वालू (रेती) से भी अत्यंत उष्ण सर्व स्थान (४) पंक प्रभा रक्त, मांस, पीरू के कीचड मय सर्व स्थान (५) धुम्म प्रभा, राइ मिरची के धूमृ(धूवे) से भी अधिक तिक्षण धुम्रमय सर्व स्थान (६) तम प्रभा भाद्रव की घटा छाइ अम्मावस्या की रात्री से भी अत्यंत अन्धकार मय सर्व स्थान (७) तम तमा प्रभाः घोरानघोर अन्धारे मय सर्व स्थान यो सातही नर्क के गुण निष्पन्न नाम (गोत्र) हें इन ७ नर्कों में ४२ आंतरें (खाली जगा) ४९ पांथडे नेरी के रहने की जगा, ८४

---

* [illegible]

† घम्मा, वंसा, सीला, अंजना, रिट्टा, मघा, माघवई ये ७ नर्क के नाम

वैसेही फल देते है. जैसे मांस भक्षीको उसीका मांस तोडके खिलाते है. मदिरा पानीको तरु आ गर्म कर पिलाते हैं. पर स्त्री भोगी को लोहकी उष्ण पुतली से संगम कराते है. हिंशक जैशी तरह हिंशा करे, वैसीही तरह उसे मारते है. इत्यादी अनेक कष्ट दुःख नेरीये को देते है. वो बेचारे प्राधीन हो अक्रांद करते सहते है.

२ आपसकी वेदना=तीसरी नर्कके आगे, यम (परमाधामी) नहीं जा शक्ते है. वो नेरीये अनेक विक्राल भयंकर खराव जंगली रूप वनाके, आपसमें लडते है. मरते है, हाय त्राहा करते है, ज्यों नवा कुत्ता आनेसे दूसरे कुत्ते उस पे टूट पडते है वैसा.

३ क्षेत्र वेदना=१० प्रकारकी हैं. १ अनंत क्षुधा=नर्कके एक जीवको सर्व भक्ष पदार्थ खिला देवे तो भी त्रप्ती नहीं आय, और तावे उम्मर खाने एक दाणा नहीं मिले. २अनंत त्रषा=सर्व जगत्का पाणी पीनेसे प्यास नहीं मिटे, और पीने एक बुंदभी नहीं मिले. ३ अनंत शीत[1] लक्षमनका लोहेका गोला विखर जाय ऐसी ठन्ड शीत ज्योनी स्थानमें हैं. ४

[1] पहलेकी ४ नर्क उष्ण ज्योनी है

थलचर[10], खेचर[11], उरपर[12], भुजपर[13], यह पांच सन्नी[14] और पांच असन्नी[15]. इन १० के प्रजाप्ता अप्रजाप्ता, यों १०×२=२० यह सब मिल ४८ भेद तिर्यंच के हुये.

यह बेचारे कर्माधीन हो परवस में पडे हैं. मट्टी को खोदते हैं. फोडते हैं. गोबरादिक मिला के निर्जीव करते हैं. पाणी को गर्म करते हैं. न्हावण, धोवण वगैरे गृह कार्यमें ढोलते हैं. क्षरादी मिलाके निर्जीव करते हैं. अग्नी को प्रजालते हैं. बुजाते हैं. पाणी मट्टी यादी से मारते हैं. वायू पखा, झाडू, खांडन. झट्टक, फटक, उघाडे मुख बोलना, वगैरेसे मारते हैं, विनशपति को छेदन, भेदन, पचन, पीलन, गालन अग्नी मशाला वगैरे से निर्जीव करते हैं. बेंद्री, तेंद्री, चोरिंद्री, मट्टीके पानीके हरी-लीलोत्रीके इंधनके, अनाजके. वस्त्र पात्र आदिके आश्रय रहे, गमनागमन करते, आरंभ सम् भारंभ करते. धुम्रादिक प्रयोग से शीत, उष्ण. वृष्टी, से आदी अनेक तरह उपजते भी हैं. और मरते भी हैं. जलचर पाणी खुटनेसे. नवा पाणी आणे से या धीवरा दिक मारते हैं. स्थल चरन्या वनचर

10 पृथ्वी चले. गायादिक. 11 आकाशमें उडे पक्षीआदि. 12 पेट स्याह चले सर्पादिक. 13 भुजसे चले ईंद्रादिक.

पशु ओं वेचारे शीत, ताप, वृष्टी, भूख, प्यास सहन करतें है. काँटे, कंकर, कीचड, कीडे, वाली भोमीमें पडे जन्म पूरा करतें है. घर वस्त्र रहित, हीन, दीन, गरीब अनाथ, घास फूस आदी निर्माल्य मिले जिला खा के संतोष करते है. ऐसे निपराधी कों भी रसग्रधी निर्दयी मार डालते है. वन्धनमें डालते है. ऐसेही ग्रामके रह वासी गौ (गाय) महिषा (भैंस) दिकभी निर्मान्य वस्तु देवें जिस्नी खाके रहने वाले, खेतीयादी अनेक काममें म. दत कर्ता दूध जैंसे उत्तम पदार्थके दाता. मालिककी आज्ञामें चलने वाले गरीब वेचारेके उपर, असाह्य वजन भर देतें है. कठिण वन्धन से वांधते है. कठोर प्रहार से मारते है. वहुत चलाते है. दुख से, रोग से, या थाक से, मुर्छित हो पडे हुवें को. श्वास रोक के उठातें है. खान पान पूरा नहीं देते है. ओर काम पूरा लेते है. और मतलव पूरा हुये. कृत्घनी कसाइ यादी कों वेंच देते है. वहां थिप शस्त्र सें आकले रीवा २ मारे जाते है. इन दीनों की करुणा करने वाला कोन है? ऐसी तिर्यंच गति में अपना जीव अनंत वक्त उपजके दुःख भोगवने आया है.

३ मनुष्य गति—मनकी इच्छा मुजब साधा

कर सके सो मनुष्यके ३०३ भेद, अस्सी[1], मस
कस्सी[2], यह तीन कर्म कर उपजीविका करे सो
भूमी मनुष्यकी उत्पति के १५ क्षेत्र, १ भर्त, १
रावत, १ महाविदेह. यह तीन क्षेत्र जंबुद्विपमें औ
यही दो दो होनेसे ६ क्षेत्र घातकी खंडमें और यं
ही ६ पुष्करार्ध द्विपमें यों ३+६+६=१५. वरोक्त ती
नही प्रकारके कर्म विना दश प्रकारके● कल्पवृक्ष से
उपजीवका होवे. सो अकर्म भूमी मनुष्यके ३० क्षेत्र
१ हेम वय २ अरण वय, ३ हरीवास, ४ रमक वास,
५ देव कुरू. ६ उत्तर कुरू, यह ६ क्षेत्र, जंबुद्विपमें,
येही दो दो क्षेत्र होनेसे १२ क्षेत्र घातकी खंडमें,
और येही १२ क्षेत्र पुष्करार्ध द्विपमें यो ६+१२+१२
=३०. जंबुद्विपमें के चूली हेमवंत और शिखरी प्रवत
मेसे आठ दाढों (खुणे) लवण समुद्रमें गइ हे. उन्ह

1 हथा यार (शस्त्र) से. 2 लिखने का 3 कृशाण (खेती)

● १ मतंगा वृक्ष=१ मधुर रस दे २ भिंगा वृक्ष= वरतन दे.
३ तुडी यंगा वृक्ष= वाजींत्र सुनावे ४ दिव वृक्ष= दिवा जैसा प्रकाश
करे. ५ जेइ वृक्ष= सूर्य जैसे प्रकाश करे. ६ चितगा वृक्ष= विचित्र रंग
के पुष्प हारदे. ७ चित्र रस= इच्छित भोजन दे. ८ मन वेगा वृक्ष= रत्न
जडित भुषण दे. ९ गिह गारा. रहने अच्छा मकान दे. १० अनि या-
णा वृक्ष= श्रेष्ट वस्त्र दे. १० अकर्म भोमी और ५६ अंतर द्विप.ने रह-
ने वाले मनुष्यो का इन १० कल्प वृक्ष से इच्छा पुरी होती हैं.

एकेक दाढोंपे साट २ द्विप है. तो आठ दाढोंपे ७×८ —५६ अंतर द्विपमें भी, अक्रम भुमी जैसे मनुष्य रह ते हैं यह १५+३०+५६—१०१ मनुष्यके क्षेत्र हैं, इन में जो मनुष्य होतें है. उनके दो भेद अप्रजाप्ता और प्रजाप्ता, यह २०२ हुये, और १०१ अप्रजाप्ता मनुष्य के १४* स्थानमें जो समुत्छिम (स्वभावसे) उत्पन्न होते है. वो अप्रजापतेही मरने हैं. इस लिये १०१ भेद उनके यो सर्व मिल ३०३ भेद मनुष्य के हुये.

कर्म भोमी में महा विदेह छोड, बाकी के क्षेत्र में छे आरे की प्रवर्ती मे कभी पुद्गलिक सुखकी वृधी और कभी हानी होती है सदा एकसा न रहना वो भी दुःख का कारण है. और महा विदेह मे सदा चतुर्थ कल प्रवृतता है. तो वहां भी विचित्र प्रकार के मनुष्य हैं मतलब की जहां कर्म कर के उपजीका है वहां दुःख ही हैं; अस्मी हर्थीयारसे उपजीका

* १ उच्चार=भिष्टामें, २ पासवण=मुत्रमें, ३ खेल=खकारमें, ४ सघेण=नाकके मेलसेडामें, ५ उत्ते=उल्टीमें ६ पित्ते=पित्तमें ७ पुय रक्तमें, ८ पुए=रस्सी (पीप) में. ९ सुक्के=सुत्र (वीर्य) में, १० सुक्क पुगल परिसाडे=शुक्रके सूखे पुद्गल फिर भीजनेमें ११ मृतकलेवर मुर्दोके कलेवरमें, १२ स्त्री पुरुषके संयोगमें, १३ नगरके नाले और १४ लोक के सर्व अशुची स्थानमें . . . [illegible] उत्पन्न होते हैं)

करने वाले, कसाइ होके वेचारे गरीव निरपराधी जीवोंकी घात कर, महा जब्बर पाप उपराजते हैं, सिपाइयो हो के अपराधी और निरपराधी को विनाकारणभी मारते हैं. कित्नेक राजादिक महा भारत संग्राम करते हैं, कित्नेक स्वकुटुंव का संहारही कर डालते हैं. तो वेचारे एकेंद्रियादिकका तो कहनाही क्या? शस्त्र अनर्थकाही कारण है. शस्त्र हाथमें आयाकी प्रणाम हिंसामय हुये. मसी लिखाइ के कर्म कर उपजीविका चलाने वाले वणिकादिक कसाइ, कूंजडे, कलाल, दाणेका, लोहेका, धातूका वगैरे अयोग्य वैपार कर गजा उपरांत वजन उठाये, गामडे में भटकने हैं गुलामी करतेहैं, वगैरे महा कष्ट सहतेहै. कर्सी=कृषी (खेती) के कर्म में अनेक एकेंद्री से पचेंद्री तक जीवकी घात करते हैं शीत ताप क्षुद्या तृषादी महा कष्ट सहते हैं. महा मेहनत से तीनही रुतू वितिक्रंत करते हैं, अब्बी वृत मान कालकी स्थितीका ख्याल करते मालम होता है की, द्रव्य (धन) है तो वहुत स्थान कुटंवकी अंतराय रहती है, कुटंव है तो दरिद्रता रहती है. धन कुटंव दोनो है तो संप नहीं. शरीर रोगीला, सदा क्लेश, लेने देनेका इज्जत का, वगैरे अनेक दुःख भुक्त रहे हैं. कित्नेक वेचारे गरीब हे, उन को अपने पेट

भरनेकी ही मुशकिल पड रही है. तो अन्य कुटम्बका निर्वाहा तो दूरही रहा, कित्नेक अंगोपांग हीन लूले, लंगडे, अन्धे, वहीरे, वगैरे है, कित्नेक अनार्य म्लेच्छ देशमें उत्पन्न हुवे; फक्त नाम मात्र मनुष्य है, उनके कर्म पशुसेभी खराब हैं, धर्म के नाममेंभी नहीं समजते हैं, मनुष्यका अहार करते है, वस्त्र रहित रहते है, मात, भग्नी, पुत्रीयादी से विभचार का कुछ विचार नहीं है. जंगलमें भटक २ जन्म तेर करते है. अकर्म भूमी के क्षेत्रोंमें उत्पन्न हुये मनुष्य देव कुरू उत्तर कुरू में सुखकी उत्कृष्टता हैं, हरीवास रम्यकवास में सुखकी मध्यमता है ओर हेमवय ऐरण्यवयमें सुखकी कनिष्टता है परंतु सर्व धर्मरहित भद्रिक प्रणामी. प्रायः पशुकी तरह पूर्व पुण्यसे प्राप्त हुये, दशकल्प वृक्षों के योग्य से सुख भोगवते है और मर जाते है

अंतर द्विपमें रहने वाले मनुष्य नाम मात्र है पानी पे डूगरियोंमें वनमें रहते है शरीर मनुष्य जैसा होके. कित्नेकके मुख हाथी घोडे सिंह गाय भैस होते है. यह मिथ्यात्व द्रष्टी हैं कुछ पुण्योदयसे इन्होंकी भी इच्छा कल्प वृक्ष पूरते है.

समुर्छिम मनुष्य, फक्त मनुष्य आंग के पदार्थ विष्टा,मुत्र श्लेष्मादी में होते है. जिनका ॥ मनुष्य १४

जाते है परंतु द्रष्टी नही आते है सुक्ष्म रूप मे एक स्थान में भेलंभेल असंख्य उपजतेंहै, और तुर्त मरते है. भिष्टेभिष्टा, मुत्रमें मुत्र, करने से वगेरे इनकी हिंशा हर वक्त होती है.

ऐसें दुःखमय स्थानमें, अपन अनंत विटंवना भोग आये है. [मनुष्य जन्मकी श्रेष्टता गिनने का इत्नाही प्रयोजन है की, तिर्थंकर साधू, श्रावक, वगेरं इसीमें होते है. और मोक्षभी मनुष्य जन्म विन नही मिल शक्ति है.]

४ देवगति—दिव्य उच्चगतिवाले सो देवता के १९८ भेद कहे है. असुर कुँवार, नाग कुँवार, सुवर्ण कूँवार, विद्युत कुँवार. अग्नी कुँवार, उदधी कुँवार, दिशा कुँवार, द्विप कुँवार, पवन कुँवार, स्थनी कुँवार, यह १० और १५ पहले परमाधामी [यम] देवके नाम कहे, सो २५ ही भवन पतिके जातके देवता हैं. यह पहले नर्कके आंतरे में रहते हैं. और पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किंन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, इसीवा, भुइवा, आनपन्नी, पानपन्नी, कंदिय, महाकंदिय, कोहडं और पहं देव यह १६ व्यंतर तथा आन ज्ञमक पाणज्ञमक, लेणज्ञमक, सेणज्ञमक, वत्थ ज्ञमक, पत्त ज्ञमक, पुप्प ज्ञमक, फल ज्ञमक, वी-

ज झमक, अभी पत्त झमक, यह १० झमक मिल २६ भेद वाण व्यंतरकी जातीमें गिने जाते हैं. यह पहले नर्क के उपर पृथवी के नीचे रहते हैं. चंद्र, सूर्य, ग्रह नक्षेत्र, तारा, यह ५ अडाइद्विपके अंदर चलते फिरते हैं, और इन्ही नामके ५ अडाइ द्विपके बाहिर स्थिर है. यह १० जोतषी गिने जाते हैं. १ तीन पलिये, २ तीन सागरीय ३ और तेर सागरीये, यह३ तीन किलमुर्खी नीच जातके देव हैं. १ सुधर्मा, ६ईशान, सनत कुमार, महेंद्र, ब्रम्ह, लांतक, महाशुक्र, आण, प्रण, अरण, अचुत यह १२ देवलोक, साइच, माइच, वन्ह, वर्न्हा, गद्दतोय तुसीय, अरिठा. अगिच्छा अवबाह, यह ९ लोकांतिक उंच देव है. भद्दे सुभद्दे, सुजाय, सुमाण. से, सुदंसण, पियदंशण, आमोय, सुपडिभद्दे, जसोधर, यह ९ ग्रीवेग हैं. विजय, विजयंत जयंत. अपराजित और सर्वार्थ सिद्ध यह ५ अनुत्र विमान है. २५+२६+१०+३+१२+९+९+५ =९९ हुये. इन के अप्रयाप्ता और प्रयाप्ता यह १९८ देवना के भेद हुये.

* तीन पल्योपमिक स्थिती देव. जोतषी के ऊपर रहते हैं. तीन सागरोपम, दूसरे देवलोक के ऊपर तीसरे के नीचे रहते हैं तेरे सागरोपम [illegible] देवलोक पास रहते हैं. यह [illegible] और ज्ञान मिलानेवाले हैं चार संघका निंदक करें उस निंदकं इनमें उत्पन्न होता है [illegible]

अन्यगति करते देवगति में सुखकी अधिकता है. सब वैक्रय सरीर धारी है. दिल चाहे जैसा, और दिलचाह जित्ने रूप बना सक्ते है. निरोगी, महा दिव्य सदा तरुण, सरीर होता है. आयुष्य जघन्य (थोडासे थोडा) दश हजार, वर्षका, और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम का सेंकडो हजारो वर्षमें क्षुद्या लगी के तुर्त सर्व दिशामेंसे शुभ पुद्गलोंका अहार, रोम २ से ग्रहण कर तृप्त हो जाते है. इनके विषय सुख अन्योपम सेंकडों हजारों वर्षके होते हैं. इनके सामान्य नाटक में दो हजार वर्ष, और वडे नाटक में १० हजार वर्ष वितिक्रंत हो जाते हैं. उनके वहां रात्री नहीं है. सदा हा प्रकाश बना रहता है.

इत्यादिक सुखके देव भुक्ता है तो भी दुःखी क्योंकि, क्षुद्या वेदनी तो लगी ही हैं. और सब ता बरोबर एकसे नहीं है, कित्नेक इन्द्र हैं. कित्ने ायलिक (इन्द्रके गुरुस्थानी) है. कित्नेक सामानि इन्द्रके बरोबरीके के] है. कित्नेक आत्म रक्षक. ादार) हैं, कित्नेक प्रपादके देव है. कित्नेक अ- (शैन्य) के देव है. गंधर्व (गायन करने वाले) टाकिये (नाचनें वाले) देव, अभोगी (नोकर) र प्रकीर्ण (अनेक विमान वासी) देव. ऐसे

१० प्रकारके देव और, देवलोक लग है. इनमेंसे ज्यादा ऋद्धि धारी देव है. उन्हे देख कमी ऋद्धि वा ला देव शरमाता है. और पश्चाताप करता है. की मे ऐसा क्यों नहीं हुवा. कितनेक व्यभिचारी देव, अन्य दे वोंकी सुरूपा देवीका तथा वस्त्र भूषणका हरण करते हैं. उन्हे इन्द्र शिक्षाद्वारा वज्र प्रहार करते है, जिस- से वो छ महिना तक महा वेदना भोगवते हैं और भी सबसे ज्यादा दुःख मरणका है मार्भी उन्हे छोड ता नहीं है. मृत्युके छे मास पहले उन्हे आलस आ ने लगता है. महल, वस्त्र, भूषणकी ज्योती मंद भास होती है, अच्छे नहीं लगते हैं. निन्म पुष्प लग साहे पुष्पमाल कुमलाते. इत्यादी चिन्हसे देवता अपना मृत्यू जाण, फिकरमें पड जाते है. की हाय ऐसे सुख को छोड अशुची स्थानमें उपजना पडेगा इत्यादी महा शोक सागरमें डूबे हुवे आयुष्य समाप्त करते है और देव लोकसे उपरके देवता अहमेंद्र [स्वना मालक] है. वोभी क्षुद्रा मृत्युकी पीडा वगैरे मानसिक दुःख भोगवते है. पांच अनुत्र विमान छोड बाकी सब स्था नमें अनन्ता जीव अनंत वक्त उपजके मर चुके है नव तत्वकी वेदना भोगव आये है

यह चार गतिके दुःख का वर्णन

किया. नर्क निगोद दुःख अपार हैः एसा यह सं-
सार दुःख सें भराहै. वो सर्व दुःख अपने जीवने अं-
नंत वक्त सहन किये हैं

गाथा — धी धी धी संसारे, देव मरिऊण जंतिरिय होइः
मरिऊणं राय राया, परि पचइ निरिय जालाए
वैराग्य शतक जैन

अर्थात्—किसी को एक वक्त किसी को दो व-
क्त धिकार दी जाती हैं. परंतु इस संसार को तीन
वक्त धिक्कार हैं. क्यों की देवता जैसे महा ऋद्धी, म,
हा सौख्य के, भुक्ता मरके; पृथवी, पाणी, विनाश-
पति, यादी तिर्यंच योनी में उत्पन्न होते है. और रा-
जा ओं के राजा चक्रवृती महाराजा मरके. नर्क में
चले जाते हैं.

जरा अश्चर्य तो देखीये, जो चक्रवृती मरके उ-
नका जीव नर्कमें गया हैं. और उनका सरीर ह्यां पडा हैं.
उसका संस्कार (स्मशाण मे लेजाणे की) क्रिया अ-
र्चना, शृंगार वगैरे करतें है. और नर्क में उनके जी-
वपे यम देव ताड मार करते हैं. देखीये क्या सरीर
के हाल! और क्या जीव के हाल!!

महान पुन्योदय से मनुष्य जन्मदी सामग्री
का दुर्लभ लाभ को तूं प्राप्त हो. भव भ्रमण से छू-

टने का उपाय कर. अनंत अक्षय अव्यबाध मोक्ष सु-
ख को प्राप्त कर.

यह धर्म ध्यान ध्याता की चार अनुप्रेक्षा (वि-
चारना) का स्वरूप कहा. इस में रमण करनें से धर्म
ध्यान में एकाग्रता प्राप्त होती हैं.

धर्म ध्यानस्य–पुण्यफलम्.

इस धर्म ध्यान में एकांतता न होने से. अ-
र्थात् पुद्गल प्रणती की मिश्रता युक्त विचार और प्र-
वृती होने से. संपूर्ण कर्म की निर्जरा न होते. पुन्य-
की अधिकता होती हैं. उस पुन्य फल को भोगवनें
के लिये ज्यों ज्यों ध्यान की अधिकता होय त्यों त्यों
उंच स्वर्ग में निवास मिलता हैं.

स्वर्ग (देव) लोंक में उत्पन्न होने की सेज्या
(पलंग) हे उसपे एक देवदुष्य नामे वस्त्र ढका हुवा
होता है, यांसे सरीर छोड पीछे धर्म ध्यानी का जी-
व उस सेज्या में जाके उत्पन्न होंता हैं. और एक मु-
हुर्त पीछे पूरी प्रजा बांधके उसवस्त्रकों ओढ (सरीरकों
ढक) के बेहठा होजाते हैं; उसी वक्त उनके अज्ञाकित

देव देवीयों+ वहां अत्यंत हर्षउत्सहाके साथ एकत्रहो हाथ जोड, अत्यंत नम्रता सें पूछते है; आपने क्या करनी करी, जिससे हमारे नाथ हुये. तब वो देव* अवधी ज्ञानं से पूर्व भवका हाल जान, और देवलोककी ऋद्दिसे चकित हो, अपने पुर्वले सम्बधीयोंको चेताने उत्सुक होते हैं; तब वहां के देव कहते हैं, एक महूर्त मात्र हमारा नाटक देखके, फिर इच्छित कीजीये. वो सामान्य नाटक करतें हैं, उसमें हांके दो हजार वर्ष वीत जाते हैं, ह्यांके सम्बधीयों मरखप जाते है, और वो भी प्राप्त सुखमें लुब्ध हो जाता हैं.

१ वारे देवलोकके उपरके सर्व देव अहमेंद्र है, अर्थात् सब बरोबरीके है. छोटा बडा कोइ नहीं हैं. इस लिये वहां नाटक चेटक करनेवाला कोइ नहीं है. और वारसें स्वर्गकें उपर जैन शुद्धाचारी विपूल ज्ञानी साधूही जाते हैं. वो पहलेसेही अल्प मोही होते हैं. इस लिये ज्ञान ध्यान सिवाय अन्य तर्फ रुचीही मंद होती है, वो सावधान होनेही पुर्व सम्पादन किये हुये ज्ञानके ध्यानमें मग्रगुल हो जाते है. जिससे जिनोका उत्कृष्ट ३३ सागरोपम का आयुष्य परमानंद परम सुखमें

+ दूसरे देवलोक के उपर देवी नहीं हैं.
* देवतोंमें अवधी ज्ञान जन्मसे स्वभाविकही होता है

उपशाखा-"शुभध्यान"

श्लोक— गुप्तेन्द्रिय मनोध्याता, ध्येयं वस्तु यथास्थि
एकाग्र चिन्तनं ध्यानं, फल सम्वर निर्जरं

अर्थ—शुद्ध ध्यानके करने वाले, पंच इन्द्रि और मनको स्ववश अपने आधीन कर, शुद्ध वस्तु तर्फ एकाग्रता अभिन्नता लगाके अखंडित रह ध्या ध्याते हैं. इसका फळ सम्वर (आगामिक पापका नि धन) और निर्जरा (पूर्वोपार्जित पापका क्षय) होता है यो सर्व पापका क्षय-नाश होनेसे मोक्षके अनंत अक्ष य अव्याबाध सुखकी प्राप्ती होती हैं: इस लिये मुमु क्षु ओंको शुद्धध्यान की विशेष अवश्यकता है. सोही कहता हूं.

वरोक्त श्लोकमें शुद्धध्यान करनेके लिये इन्द्रि यों और मनको निग्रह करनेकी जरूर बताइ, तो इ न्द्रियोंभी मनके स्वाधीन है, उत्तराध्येयन सूत्रमें कहा है—"एगं जीय जीय पंच" अर्थात् एक मनको जीतने से पंच इन्द्रियों वश हो जाती हैं. और भी कहा है,

वितिक्रंत हो जाता है.

वहांसे आयुष्य पूर्ण कर मनुष्य होते हैं की जहां दशबोलका* जोग होता है. ऐसे मनुष्य देवताके जघन्य ३ और उत्कृष्ट १५ भव या संख्यात भव कर शुक्लध्यानी हो मोक्ष प्राप्त करते हैं.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदायके बाल ब्रह्मचारी मुनी श्री अमोलख ऋषिजी रचित ध्यान कल्पतरूका धर्मध्यान नामक तृतीय-शाखा समाप्त.

*क्षेत्र घर, धन, पशु गौवादी, नोकर, २ [illegible] मित्र [illegible] ३ उच गोत्र ४ सुन्दर शरीर [illegible] ८ बलवंत ९ विनयवंत (विद्वान्) १० [illegible] [illegible] जोग [illegible] होय [illegible] होते हैं

उपशाखा-"शुभध्यान"

श्लोक — शुभेन्द्रिय मनोध्याता, ध्येयं वस्तु यथास्थितम्
एकाग्र चिन्तनं ध्यानं, फल सम्वर निर्जरौ १

अर्थ—शुद्ध ध्यानके करने वाले, पंच इन्द्रिय और मनको स्ववश अपने आधीन कर, शुद्ध वस्तुकी तर्फ एकाग्रता अभिन्नता लगाके अखंडित रह ध्यान ध्याते है. इसका फल सम्वर (आगामिक पापका निरुंधन) और निर्जरा (पूर्वोपार्जित पापका क्षय) होता है; यों सर्व पापका क्षय-नाश होनेसे मोक्षके अनंत अक्षय अव्याबाध सुखकी प्राप्ती होती है: इस लिये मुमुक्षु ओंको शुद्धध्यान की विशेष अवश्यकता है. सोही कहता हूं.

उपरोक्त श्लोकमें शुद्धध्यान करनेके लिये इन्द्रियों और मनको निग्रह करनेकी जरूर बताइ, सो इन्द्रियोंभी मनके स्वाधीन है, उत्तराध्येयन सुत्रमें कहा है—"एगं जीय जीय पंच" अर्थात् एक मनको जीतने से पंच इन्द्रियों वश हो जाती है. और भी कहा है,

वितिक्रंत हो जाता है.

वहांसे आयुष्य पूर्ण कर मनुष्य होते हैं की जहां दशबोलका* जोग होता है. ऐसे मनुष्य देवताके जघन्य ३ और उत्कृष्ट १५ भव या संख्यात भव कर सुक्लध्यानी हो मोक्ष प्राप्त करते हैं.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदायके बाल ब्रह्मचारी मुनी श्री अमोलख ऋषिजी रचित ध्यान कल्पतरुस्य धर्मध्यान नामक तृतीय-शाखा समाप्तं.

*क्षेत्र घर, धन, पशु गोवादी नोकर, ... [illegible] उच गोत्र ५ सुन्दर शरीर ६ ... [illegible] ८ ... ९ ... (विद्यापु) ... [illegible] ... जोग जिस जगह होय ... [illegible] ... हैं

उपशाखा-"शुभध्यान"

श्लोक— गुप्तेन्द्रिय मनोध्याता, ध्येयं वस्तु यथास्थितम्
एकाग्र चिन्तनं ध्यानं, फल सम्वर निर्जरौ ॥ १

अर्थ—शुद्ध ध्यानके करने वाले, पंच इन्द्रिय और मनको स्ववश अपने आधीन कर, शुद्ध वस्तुकी तर्फ एकाग्रता अभिन्नता लगाके अखंडित रह ध्यान ध्याते है. इसका फल सम्वर (आगामिक पापका निरुंधन) और निर्जरा (पूर्वोपार्जित पापका क्षय) होता है; यो सर्व पापका क्षय-नाश होनेसे मोक्षके अनंत अक्षय अव्याबाध सुखकी प्राप्ती होती हैं: इस लिये मुमुक्षु ओंको शुद्धध्यान की विशेष अवश्यकता है. सोही कहता हूं.

वरोक्त श्लोकमें शुद्धध्यान करनेके लिये इन्द्रियों और मनको निग्रह करनेकी जरूर बताइ. सो इन्द्रियोंभी मनके स्वाधीन है, उत्तराध्येयन सूत्रमें कहा है—"एगं जीय जीय पंच" अर्थात् एक मनको जीतने से पंच इन्द्रियों वश हो जाती है. और भी कहा है,

की="मनएव मनुष्याणाम् कारणं बन्ध मोक्षयो" अर्थात कर्मसे बन्धने वाला और छोडने वाला मनही है. *प्रसन्नचंद्र राज ऋषिकी तरह. इस लिये मनको जीतने की अवश्यकता है—

---

*राज ग्रही नगरीके श्रेणिक महाराजा गुणसिल बागमें बिराजते हुवे श्रीमहा वीरभगवन्त के दर्शन करने जिपजानेहुवे मागमें एक प्रसन्न चन्द्र नामे राज ऋषि को सूर्य के महातापमें अडोल ध्याना रुढ देख, अश्चर्यचकित हो श्रीमहावीरस्वामी को नमस्कार कर प्रश्न पुछा की महाराज दुष्कर तपके करने वाले साधुजी आयुष्यपुर्ण कर कहां जायेंगे, भगवंत—अभी मरे तो पहली नर्कमें, श्रेणिक है. पहली नर्के भगवंत—नहीं दुसरी नर्क में, श्रेणि—है दुसरी ' भ - नहीं तिसरी यों श्रेणिक अश्चर्य में आ प्रश्न करता गया और भगवंत चौथी पांचवी छट्टी आव सातमी नर्क तक फरमा दिया श्रेनिक नें फिर अश्चर्य हो पूछा ऐसे महा मुनी सातमी नर्कमें जाय ' तब भगवंतने फरमाया नहीं छटी. यों श्रेणिक अश्चर्य धर पूछता गया और भगवत पांचमी, चौथी, तीसरी, दुसरी, पहली भवनपति, व्यंतर जोतषी, देवलोक ग्रीवेक, और अनुत्तर विमान, का नाम फरमातेही देवदुदवीका शब्द सुणाया. तब श्रेणिकने पुछा महाराज! यह धुंदवी क्यों बजी? भगवंतने फरमाया की उन प्रश्न चन्द्र राजऋषीको केवळ ज्ञानकी प्राप्ती हुइ! यह सुण श्रेणिक राजा अति ही अश्चर्य चकित हो पूछने लगा महाराजजी बडी ताजुबकी बात है की, अभी तो सातमी नर्क फरमातेथे और अभी केवळ ज्ञान प्राप्त हो गया इसका कारण क्या? भगवंत—तु-मारे साथके एक सुभटने उन मुनीको देखके कहा की, यह साधू

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च ग्रह्यते भगवद्गीता

अर्थ—श्री कृष्ण कहते हैं की हे अर्जुन! मनको वश करना बहुतही मुशकिल है. क्यों कि मन अती चपल है+ परन्तु निरंतर अभ्याससे और वैराग्यसें मन वश में हो सक्ता हैं-

किसीसे भी पूछ देखो की भाइ तुम मनको

बडा निर्दयी है. छोटेसे बच्चेपे राजभर डाल आप साधू बन गया और बेचारे उस बच्चेको परचक्री सता रहा है. यह सुणतेही राज-ऋषि क्रोधातुर हो उस परचक्रीके साथ मनःमय संग्राम करने लगे (उस वक्त टेने पूछना शुरु किया था) अनेक सैन्यका संहार कर शत्रुको मारने चक्र लेनेके लिये शिरपे हाथ डाला के (उस वक्त सातवी नर्क के दलीए भेले किये थे.) देखे तो मुंड मस्तक पाया! उसी वक्त चौंक गये भान आया के अरे! मैंने साधू होके यह क्या जुल्म किया? यों पश्चाताप करने लगे. (उस वक्त संचित करे के दलिये क्षपने लगे) त्यों त्यों उच्च चढता गये और शुद्ध विचारमें एकाग्र होनेसे घन घातिक कर्म नष्ट हो गये तब केवल ज्ञान दर्शनकी प्राप्ती होगइ (शुद्ध ध्यान में इतनी प्रबलता है) यह सुण श्रेणिक राजा बडे खुश हो गये भगवंतको और उन राजऋषि वगैरे साधुवोंको नमस्कार कर निजस्थान गये

+अतिचंचल मतिसुक्ष्म दुर्लक्ष्य वेगवत्तरा चेतः —हेमचंद्र सूरी

अर्थात—यह मन अतीहि चंचल होके अतीसुक्ष्म है इस लिये इसको गेरना मुशकिल है

की="मनएव मनुष्याणाम् कारणं बन्ध मोक्षयो" अ-
र्थात् कर्मसे बन्धने वाला और छोडने वाला मनही है.
⊛प्रसन्नचंद्र राज ऋषिकी तरह. इस लिये मनको जी-
तने की अवश्यकता है–

---

*राज ग्रही नगरीके श्रेणिक महाराजा गुणशिल्ल बागमें विराजते हुवे श्रीमहा वीरभगवन्त के दर्शन करने जिपजातेहुवे मार्गमें एक प्रसन्न चन्द्र नामे राज ऋषि को सूर्य के महातापम अडोल ध्याना रूढ देख, अश्चर्यचकित होश्रीमहावीरस्वामी को नमस्कार कर प्रश्न पुछा की महाराज दुष्कर तपके करने वाले साधुजी आयुष्यपुर्ण कर कहां जावेंगे, भगवंत–अभी मरे तो पहली नर्कमे, श्रेणिक हैं पहली नर्क भगवंत–नहीं दुसरी नर्क में श्रेणि है दुसरी न[illegible] नहीं तिसरी यों श्रेणिक अश्चर्य मे [illegible] भगवंत चौथी पांचवी छट्टी जाव सातमी नर्क तक फरमा दिया श्रेनिक ने फिर अश्चर्य हो पुछा ऐसे महा मुनी सातमी नर्कमें जाय? तब भगवंतने फरमाया नहीं छठी था श्रेणिक अश्चर्य भर पुछता गया और भगवंत पांचवी चौथी, तासरी, [illegible] पहली भवनपति, व्यंतर, जोतषी, देवलोक ग्रावेक [illegible] का नाम फरमातेहि देवदुदबीका शब्द सुनाया तब श्रेणिकने पुछा महाराज! यह धुंदबी क्यों बजी? भगवंतने फरमाया की प्रसन्न चन्द्र राजऋषीको कैवल्ल ज्ञानकी प्राप्ती हुइ! यह सुण श्रेणिक राजा अति ही अश्चर्य चकित हो पुछने लगा महाराजजी यही गजबकी बात है की, अभी तो सातमा नर्क फरमातेथे और अभी कैवल ज्ञान प्राप्त हो गया इसका कारण क्या? भगवंत–तु मारे साथके एक सुभटने उन मुनीको देखके कहा की, यह म[illegible]

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च ग्रह्यते भगवद्गीता

अर्थ—श्री कृष्ण कहते हें की हें अर्जुन! मनको वश करना बहुतही मुशकिल हे. क्यों कि मन अती चपल हे+ परन्तु निरंतर अभ्याससे और वैराग्यसें मन वश में हो सक्ता हें-

किसीसे भी पुछ देखो की भाइ तुम मनको

बडा निर्दयी है. छोटसे बच्चेपे राजभर डाल आप साधू बन गया और बेचारे उस बच्चेको परचक्री सता रहा है. यह सुणतेहि राजऋषि क्रोधातुर हो उस परचक्रीके साथ मनोमय संग्राम करने लगे (उस वक्त तेने पुछना शुरु कियाथा) अनेक सैन्यका संहार कर शत्रुको मारने चक्र लेनेके लिये शिरपे हाथ डाला के (उस वक्त सातवी नर्क के दलीय भेले किये थे.) लंड मुंड मस्तक पाया! उसी वक्त चौंक गये भान आया के अरे! मेने साधू होके यह क्या जुल्म किया? यों पश्चाताप करने लगे. (उस वक्त संचित कर्म के दलिये क्षपने लगे) त्यों त्यों उच्च चढता गये और शुद्ध विचारमें एकाग्र होनेसे धन घातिक कर्म नष्ट हो गये तब केवल ज्ञान दर्शनकी प्राप्ती होगइ (शुद्ध ध्यान में इतनी प्रबलता है) यह सुण श्रेणिक राजा बडे खुशहो गये भगवंतको और उन राजऋषि वगैरे साधुवोंको नमस्कार कर निजस्थान गये.

+ 'अतिचंचल मतिसुक्ष्म दुर्दुलभ वेगवतया चेत '—हेमचंद्राचार्य अर्थात—यहमन् अतीहीचंचल होके अतीसुक्ष्म हैं इस लिये इसकी गतीको रोकना मुशकिल हैं

प्रथम प्रतिशाखा-"आत्मा"

सूत्र — "जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ; जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ. आचारांग अ ३ सूत्र २०५

अर्थ—जो एकको जाणेगा, वो सबको जाणेगा और जो सबको जाणेगा वोही एकको जाणेगा!*

वो एक पदार्थ कौनसा है? और कैसा है? की जिसको जाणने मे सर्वज्ञता प्राप्त होवे! उसका स्वरूप यों दर्शाते है.

वो "आत्मा" है. आत्माके ३ भेद किये हैं. १ बाहिर आत्मा २ अंतर आत्मा और ३ परमात्मा.

प्रथम पत्र—"बाहिर आत्मा"

१ बाहिर आत्मा=जो यह प्रत्यक्ष हाडका पिंजर रक्त मांसादी धातूओंसे भरा हुवा ... चांमडीसे ढका हुवा. मनुष्य या तिर्यंच (पशुओं)

* श्लोक — [illegible]

का सरीर; तथा अन्य अशुभ पुद्गलों (वस्तुओं) से बना, नर्क निवासी जीवोंका सरीर; और शुभ पुद्गलोंसे बनाहुवा, देव लोक निवासी जीवोंका सरीर, उसे बाहिर आत्माकहते हैं. अज्ञानी जीव उसेही आत्मा मान बेठे हैं, और अपने सरीर को हायलगा कहते हैं. मैं गोरा हूं. कालाहू, लम्बाहू, छोटा हूं, जाडाहूं पतलाहूं. मेरा छेदन भेदन होता है मेरे अंगोपांग दुःखते हैं, रखेमेरी आत्माका विनाश होवे, और वो इन्द्रीयोंके शब्दादी विषयों के पोषण में मजा मानतें हैं, मैं स्त्री हूं, पुरुष हूं, नपुंशक हूं इत्यादी विचारसें परस्पर भोगमें आनंद मानेतेंहें, हा हा करतेहें. मतलबकीजो सरीरको आत्मा मानें, सरीरके सुख दुःखसे अपना सुखदुःख मानें. सरीर की पुष्टाइसे हर्ष, और कष्टासे दुःख मानते हैं; वेहीबाहिर आत्माको आत्मा मानने वाले अज्ञानी जानना॰ शुद्ध ध्यान के ध्याता, इस अनादी भाव कों मिटानें देहा ध्यास छोडने, प्रणामोंकी निशुद्धी करने, विचार

* श्लोक—देहात्म बुद्धिजंपाप, नतद्गौवध कोटीभीः आत्मा अहंबुद्धिजं, पुण्य नभूतो नभविष्यति

अर्थ— सरीरहीको जो आत्मा मानते हैं इन्हे क्रोडो गाइयों के वध करनेवालेसेंभी अधिक पाप लगता है और मैं आत्माही हूं ऐसे विचारवालेको जित्ना पुण्य होता है वो पुण्य त्रिकालके पुण्यसेंभी अधिक्हे.

प्रथम प्रतिशाखा-"आत्मा"

सूत्र — "जे एगं जाणइ से सव्वं जाणेइ; जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ. आचारांग अ ३ सूत्र २०९

अर्थ—जो एकको जाणेगा, वो सबको जाणेगा और जो सबको जाणेगा वोही एकको जाणेगा!*

वो एक पदार्थ कौनसा है? और कैसा है? की जिसको जाणने से सर्वज्ञता प्राप्त होवे! उसका स्वरूप यों दर्शाते है.

वो "आत्मा" है. आत्माके ३ भेद किये हैं १ बाहिर आत्मा २ अंतर आत्मा और ३ परमात्मा

प्रथम पत्र—"बाहिर आत्मा"

१ बाहिर आत्मा=जो यह प्रतक्ष हाडका पिंजर रक्त मांसादी धातुओंसे भरा हुवा [illegible] चमडी करके ढका हुवा. मनुष्य या तिर्यंच (पशुओं)

*श्लोक—[illegible]

अर्थ—जिसने एक पदार्थ [illegible] पदार्थ [illegible]

जिसने एक पदार्थ [illegible]

[illegible]

का सरीर; तथा अन्य अशुभ पुद्गलों (वस्तुओं) से ब-
ना, नर्क निवासी जीवोंका सरीर; और शुभ पुद्गलोंसे
बनाहुवा, देव लोक निवासी जीवोंका सरीर, उसे बा
हिर आत्माकहते हैं. अज्ञानी जीव उसेही आत्मा मान
बेठे हैं. और अपने सरीर को हाथलगा कहते हैं. मैं-
गोरा हूं. कालाहूं, लम्बाहूं, छोटा हूं, जाडाहूं पतलाहूं.
मेरा छेदन भेदन होता है मेरे अंगोपांग दुःखते हैं, रखेमे
री आत्माका विनाश होवे, और वो इन्द्रीयोंके शब्दादी
विषयों के पोषण में मजा मानतें हें, मैं स्त्री हूं-पुरूप
हूं, नपुंशक हूं इत्यादी विचारसें पसर भोगमें आनंद
मानतेंहें. हा हा करतेहें. मतलबकीजो सरीरको आत्मा
मानें, सरीरके सुख दुःखसे अपना सुखदुःख मानें. सरीर
की पुष्टाइसे हर्ष. और कष्टासे दुःख मानते हैं; वेहीबा
हिर आत्माको आत्मा मानने वाले अज्ञानी जानना*
शुद्ध ध्यान के ध्याता, इस अनादी भाव कों मिटानें
देहा ध्यास छोडने, प्रणामोंकी विशुद्धी करने, विचार

---

* [illegible]
[illegible]

अर्थ — शरीरहीको जो आत्मा मानते हैं [illegible] कोई मारते [illegible]
[illegible] पाप लगता है और मैं आत्माही हूं
ऐसे विचार [illegible] बिना दुःख होता है वो दुःख [illegible]
[illegible]

करें की यह सरीर पुद्गलो के संयोग से निपजा हैं. श्री उत्तराध्ययनजी में फरमाया हैं की

गाथा— नो इंदिये गिझं अमुत्त भावा, अमुत्त भा- वा विय होइ निच्चो अझत्थ हेउ निययं सं बंधो, संसार हे उंच वयंति बंधं १९

अर्थ=जो मूर्ती पदार्थ हैं वोही इन्द्रियों सेंग्रहण किये जाते हैं. और जो पदार्थ इन्द्रियोंसे ग्रहण कि- या जाते हैं वो जड होते हैं और' चेतन्य तो अमूर्ती (अरूपी) हैं. उसकों इन्द्रियों ग्रहण नहीं कर सक्तीहैं इसालिये वो अजड अविन्यासी नित्यहैं, अनादी देहा ध्यासके कारण सें जड ओर चैत्यन्य सम्बंध से एकत्र रुपहो रहाहे, जैसे दूध ओर घृत. यह जो जडका ओं र चैतन्य का सवन्ध हे, सोही संसार का हेतूहैं. इस अनादी सवन्ध का निकंद करने, श्री आचारांग सूत्र मे फरमायाहैं "जेएगं णामे, से बहुणामें; जेबहुणामेंसे एगंणामे," अर्थात्‌जो एक मोह (ममत्व)को नमावे सो बहूतो कों नमावे, अर्थात सर्व कर्मोकों नमावे, ओर जो बहुत (सर्व)को नमावेगा सोही एक (ममत्व)को नमा वेगा ओर'जेएगं विगिंचमाणे पुढोगिंचइ पूढो विगिंचमा णे एगं विगिंचइ'अर्थात्‌ जो एग मोहकों खपाते हैं वोसब (कर्मों)को खपातें हे; ओर जोसर्वको खपते हे. वोही

एक को खपाते हे-क्षय करते हे. इत्यादी विचार से सरीरसे आत्म बुद्धिका त्याग कर. ममत्व उतार अंतर आत्माकी तर्फ लक्ष लगावे.

द्वितीय पत्र-"अंतरात्मा"

२ अंतर आत्मा=अंतर आत्मा में रमण करते हुये ध्यानी विचारतें हैं, में जिसे सम्वोधन करताहूं,सो फक्त लोकीक व्यवहार सें करता हूं. क्यों कि आत्मा तो निष्कलंक हें, इसे कौन संबोध सक्ता हें. आत्मा तो आत्ममय पदार्थ को ही ग्रहण करता हे. अन्यको नहीं, अन्यको तो अन्यही ग्रहण करते हें. ऐसा भेद विज्ञान (पुद्गल और चेतन्यकी भिन्नताका जिन्हे होवे. अंतर (निजात्म स्वरूप) की तर्फ लक्ष लगे. वो अंतरा त्मी. जेसे अन्धकार में स्थंभका मनुष्य भाष होता है. और अन्धकारके नाश होनेसे वो यथातथ्य स्थंभका स्थंभही दिखता हे. तब प्रथमका भ्रमे नाश होता है तैसेही भेद विज्ञान अनस्त मूर्यके प्रकाश होनेसे शरी- र और आत्माका यथार्थ भाष होता है

"अंतर आत्म [illegible]

१ जो [illegible]

का स्वभाव है; चेतन्यका नहीं. चैतन्य तो निर्वेदी, निर्विकारी है. तो फिर धीकारीक वस्तुओंको देख. विकारी क्यों होता है.

२ जो शत्रुता, मित्रता, के प्रणाम होतें है, सोही कर्म स्वभाव है. निश्चयमें तो "अप्पा मित्तममित्तं च" जो अकृतसे निवृते तो अपणी आत्मही मित्र है, नहीं तो शत्रुताका साधन तो होताही है. इस विचारसे शत्रु मित्र पर व अच्छी बुरी वस्तुपर सम प्रणामी बने. राग द्वेष न करे.

३ इतने दिन में तो बालककी तरह अनेक चेष्टा करना जो अन्दका प्रेग हुवा करताथा, न की चेतन्यका क्यों कि चेतन्य तो अनंत ज्ञानादी शक्तीका धारक है. वो किसी प्रकार चेष्टा (ख्याल तमाशा) करेइ नहीं.

४ इतने दिन अन्य पदार्थ सचे मालम पडतेथे, अब वोही स्वप्न और इन्द्र जाल जैसे मालम पडने लगे. फिर इसकी प्रतीत क्यां रही. और असत्य को सत्य माने सोही मिथ्यात्व.

५ जो परमात्माको अविन्यासी कहते है. वो मैंही हूं. फिर जंगम और स्थावर से मेरा विनाश हो ने का मेनही मोटा है. "मरे सो और, और में और"

इस विचार से निडर बने.

६ हा! हा! अश्चर्य की, जिन्ह कामोंसे, या कारणोंसे, अज्ञानीयों कर्म का बन्ध करते हैं. उन्ही कामोंसे ज्ञानी कर्म बन्ध तोड निर्मुक्त होते है. इस विचार से सबसे ममत्व घटावें.

७ इत्ने दिन संसारमें जो मै रूपोकी विचित्रता पाया, सो 'भेद विज्ञान' के अभावसेही पाया; अब वैसा नहीं बनूं.

८ यह जग तारक वाहण (झाज-स्टिमर) सब के सन्मुख से चले जाते हुयेभी, अनंत जीवों डूब रहे हैं. इसका एक मुख्य कारण, "भेद विज्ञानकी अज्ञानता ही है." अब मै तो उससे छूटा होवुं!

९ क्या मजा है! यह आत्मा आत्माके द्वारा ही पहचानी जाती हैं. इसे चशमें या दुर्बीन की कुछ जरूरही नहीं यो आत्मा देखे.

१० विशेष आश्चर्य तो यह हैं की—जो विषय मय पदार्थ अज्ञानियो को प्रिती उत्पन्न करने वाले होते हैं. वोही ज्ञानीयोंको अप्रिय दुःख दायक लगते हैं: और संयम तपादिक, अज्ञानीयों को अप्रिती दुःख उत्पन्न करने वाले भाष होते है. वोही ज्ञानीयों को सुखानंद दाता भाष होतें है.

११ वोही हूं में, वोही में हूं, ऐसी एकांत भावना कर्ता हुवा यह आत्मा उसी पदको प्राप्त होता है, "अप्पासो परमप्पा" अर्थात आत्मा है सोही परमात्मा है? * उसी पदको प्राप्त होता है. और इससे ज्यादा सद्बोध कोनसा.

१२ मेने मेरीही उपासना करनी सुरु करी, तो फिर मुजे अन्य उपासनाकी क्या जरूर, क्यों कि जैसे परमात्मा है, वैसाही में हूं.

१३ भेद विज्ञानी महात्माको दुकर तप, और महान उपसर्गसेभी किंचित मात्र क्षिन्न नहीं कर सक्ते हैं, चला नहीं सक्ते है.

१४ अंतर आत्माका ध्यान रागादि शत्रुके क्षयसेही होता है.

१५ जो भ्रम रहित हो, जीव और देहको अलग २ समजेगा, वोही कर्म बन्धन से छूट मोक्ष प्राप्त करेगा. रागादी शत्रु दूर हुये की आत्मा दिखी.

१६ अज्ञान और विभ्रमके दूर होनेसेही आत्म तत्व प्राप्त होता है.

१७ जिस कायाको प्राण प्यारी कर रक्खी थी, अज्ञान दूर होनेसे उसीही कायको तप संयमादी में

* अन्य मती भी कहते हैं—'आत्मायोनिर्पा परमात्मा'

गालने लगते है.

१८ आत्म ज्ञान विन कोरे तप करनेसे, दुःख मुक्त नहीं होता है.

१९ वाहिर आत्मा वाला, रुप धन, वल सुख, इत्यादी का अहों निश ध्यान करता है. और अंतर आत्मिक इस से विरक्त हैं.

२० अज्ञानी फक्त वाह्य त्यागसे सिद्धी मानते हैं, और ज्ञानी वाह्य अभ्यंतर दोनो उपाधीयों त्याग नेसे सिद्धी मानते हैं,

२१ अध्यात्म ज्ञानी व्यवहार साधने वचन और कायासे अन्यन्य कार्य करते भी मनसे एकांत अंतर आत्मामें ही लीन रहते हैं.

२२ आत्म साधन करती वक्त, जो उपसर्ग, व-दुःख होता है. उसे अध्यात्मी दुःख नहीं समजते हैं* वल्के सुखही समजते है, जैसे रोगी कटु औषधीके स्वादको न देखता गुणहीका गवेक्षी होता है.

---

*श्लोक- नैव छिन्दन्ति शास्त्राणि, नैनं दहतिपावकः
नचैनक्लेदयं तऽपा, नशोषयति मारुतः ॥१॥
अर्थ- इस आत्माको तिक्षण शस्त्र छेद सक्ता नहीं है, प्रचन्ड अग्नी जलासक्तानही है, पाणडासक्ता नहीं है औरवायु (पवन) सुकासक्ता नहीं है; तो फिर भय (डर) किसका

२३ ज्ञानीको आत्म साधन सिवाय अन्य कामकी फुरसतही नहीं मिलती.

२४ परमानन्द आत्मामें ही है. बाहिर क्या ढुंढते हो!

२५ इच्छा है सोही संसार है, इच्छा त्यागसे संसार सहज छुटता है.

२६ जेसे पहेरे हुये वस्त्र जीर्ण होते, बेरंगी होते या नष्ट होते सरीर जीर्ण, बेरंगी, और नष्ट नहीं होता है, तैसेही सरीर और जीव जानो.

२७ अज्ञानी, मंद बुद्धीके कारणसे पर वस्तुमें मज़ा मानते हैं, और ज्ञानी भ्रम नष्ट होनेसे अन्तर आत्मा मेंही अनन्द मानते हैं.

२८ स्थिर स्वभावीज मोक्ष पाते हैं, स्थिरता ही सम्यग दर्शनकी ऋद्धी हैं,

२९ लोकीक प्रेमसे वचनालाप, वचना लापसे चित्त विभ्रम चित विभ्रम सें विकलता विकलतासे चंचलता यों एक से एक दुर्गुणोकी वृधी जान, लोकीक प्रेम छोड,लोकोत्रसे लगावे.

३० जब ज्ञान होता है; तब जक्त बावला (गहले) सा दिखता है. और जब ध्यान होता है, तब वस्तुका यथार्थ स्वभाव भासने लगता है उससे जेसा

है. वैसाही दिखता है. अर्थात राग द्वेप नष्ट होजाता है.

३१ आत्मा आत्माके द्वारा ऐसा विचार करेकी मै आत्माही हूं. सरीरसे भिन्न हूं. ऐसा द्रढ निश्चय होने से फिर स्वपनेमेंभी सरीर भावको प्राप्त न हो, जिस से आत्म सिद्धी होगा.

३२ जाती और लिंगकी अहंता त्यागनेसेहीं सिद्धी होती है.

३३ जैसे वत्ती दीपकको प्राप्त हो दीपक रूप वनती है. तैसेही आत्मा सिद्धका अनुभव करनेसे सिद्ध रूप होती है.

३४ आत्माकों आराधने योग्य आत्माही हैं; अन्य नहीं. आत्मा आत्माका आराधन करनेसेही परमात्म वने है. जैसे काष्टसे काष्ट घसनेसे अग्नी होवे.

३५ अपन मर गये, ऐसा स्वपन आनेसे अपन मरते नहीं है, तैसेही जागृत अवस्थामेंभी, आप के मरनेसे आत्मा मरती नहीं है.

३६ ज्ञानी अवसर (वक्त), शक्ती, विभाग, अभ्यास समय, विनय, स्वसमय (स्वमत) परसमय, अभीप्राय,इत्यादी विचार कर इच्छा रहित हो प्रवृतते हैं.

३७ सरीर जैसा वाहिर असार है, वैसा अंदरही है.

३८ जहां ममत्व नहीं है. वोही मुक्ती मार्ग है.

३९ लोकका स्वरूप जाण, लोक सज्ञासे दूर रहना.

४० परमार्थ दर्शी, मोक्ष मार्ग शिवाय, अन्य स्थानमें रती (सुख) नहीं मानते है, वोही मोक्ष पाते हैं.

४१ *केवली भगवानको, न बन्ध है न मोक्ष हैं

४२ परमार्थी दर्शीको, कुछभी जोखम नहीं है.

४३ अज्ञानी सदा निद्रिस्थ है, परमार्थी सदा जाग्रत हैं.

४४ जो शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्शकी सुन्द रता असुन्दरतामें सम प्रणाम रखते है. वो ज्ञान ओर ब्रह्म (निर्विकल्प सुख) को जाण सके है, और वोही लोकालोक को जाणते है.

४५ कर्मको तोडने सेही, पवित्र आत्माके द. र्शन होते है.

४६ जो अपनी तर्फ देखता है, वोही सर्व तर्फ देखता है.

४७ जो क्रोधको छोडेंगे, वो मानको छोडेंगे, जो मानको छोडेंगे वो मायाको छोडेंगे, जो मायाको छोडेंगे, वे लोभको छोडेंगे, जो लोभको छोडेंगे, वे रागको छोडेंगे, जो रागको छोडेंगे वे द्वेषको छोडेंगे, जो द्वेषको छोडेंगे, वे मोहको छोडेंगे, जो मोहको

* आचारांग दश १६०

छोडेंगे, वे गर्भसे छूटेंगे, जो गर्भसे छूटेंगे, वे जन्मसे छूटेंगे, जो जन्मसे छूटेंगे, वे मरणसे छूटेंगे, जो मरण से छूटेंगे वे नर्क से छूटेंगे, जो नर्कसे छूटेंगे, वे तिर्यंचसे छूटेंगे, जो तिर्यंचसे छूटेंगे, वो सर्व दुःखसे छुट परम सुखी होवेंगे.

४८ आत्म ज्ञान विन. शास्त्र ज्ञान निकम्मा है.

४९ इन्द्रियों के सुखका त्यान कर, आत्म ज्ञान प्राप्त करते ऐसा नहीं जानना की, इन्द्रियोंके सुख छुटनेसे दुःखी वन जाता है, क्योंकि आत्म ज्ञानकी सिध्दी होते अमृत मयही संपूर्ण वन जाता है. और उस अमृतपान सें जालम जन्म मरणका दुःख दूर हो जाता है. जिससे परम सुखी वन जाता है.

५० हे आत्मन् आत्माके साथ निश्चय कर, मै अतिन्द्रिय हूं, अर्थात मेरे इन्द्रि नहीं हैं, तथा मै इन्द्रियोंके गोचर आवू ऐसा नहीं हूं. तथा इन्द्रियोका शव्दादी विपय है. सो आत्मामें नहीं है. इससे अतिन्द्रिय अर्थात् इंन्द्रियातित हूं. और अनिर्देश हूं. अर्थात् वचन द्वारा मेरा वर्णन नहीं हो सक्ता, इस लिये वचनातीत हूं. ऐसेही मै असुर्ती हूं. चैतन्य हूं. आनंदमय हूं. इत्यादी विचारसे. निज स्वरूपमें निश्चल होवे.

५१ हे आत्मन्, आत्माके साथ ऐसा विशुद्ध

निर्मळ अनुभव कर की यह आत्मा समस्त लोकके यथार्थ स्वरूप को प्रगट करनें वाला अद्वितिय सूर्य है. विश्वमें सामान्य अग्नीसे दीपकका प्रकाश अधिक गिनते हे, दीपकसे मशालका, मशालसे ग्यासका और ग्याससे विजलीका प्रकाश अधिक पडता है. इन कृतिम प्रकाशसे स्वभाविक चन्द्रमा का प्रकाश अधिक है, और चन्द्रके प्रकाशसे सूर्यका प्रकाश अधिक लगता है. परंतु आत्म ज्ञानके प्रकाश तुल्यतो कोटी सूर्य भी प्रकाश नहीं कर सके हैं, अन्य दीपकादिक के प्रकाशको वायू वगैरे घातिक वस्तुका और चंद्र सूर्य को राहू बद्दल वगैरे के अच्छादन होनेसे तथा अस्त होनेसे प्रकाशका नाश होता है. परंतु आत्म ज्योतीको मेरु पर्वतको हलाने वाला वायूभी नहीं बुज सक्ता है और न बद्दल या राहू, उसे अच्छादन (ढक्कन) दे सके हैं. आत्म जोती यथा रूप प्रकाशित होनेसे तीन लोकके सुक्ष्म बादर चराचर सर्व पदार्थ एक वक्त एक ही समय मात्रमें भाप होने लगते हैं, तव आत्मा परमानंदी वनता है. इत्यादी विचार में प्रवृते सो अंतर आत्मावाला जाणना. अंतर आत्माको प्राप्त हुवेही परमात्मा होते हैं.

———०२१०———

तृतीय पत्र-"परमात्मा"

३ "परमात्मा" सर्व कर्म रहित अनंत ज्ञानादी अष्ठ गुण सहित सिद्धी (मुक्ति) स्थानमें संस्थित अजरामर अविकार, सिद्ध परमात्मा है, वोही परमात्मा हैं.

पुष्पम-फलम्

यह तीनही आत्माका ध्यान, विशेपता से अप्रमत मुनी को होता है. क्यों कि अप्रमत पणाही ध्यानकी विशुद्धता, उत्कृष्टता करता है. उसके जोर से महामुनी आगे गुणस्थान रोहण सुखे २ कर, सर्व कर्मको क्षपाके सिद्धस्थान प्राप्त कर सक्के है.
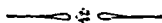
द्वितिय शाखा-"उपध्यान" चार.

श्लोक॥ पिण्ड़स्थंच पदस्थंच, रुपस्थं रुप वर्जितम्.
चतुर्धा ध्यान माम्नातं, भव्यरा जीव भास्करैः
ज्ञानार्णव अ० ३६

अर्थ— १ पिण्डस्य ध्यान. २ पदस्थ ध्यान. ३ रुपस्थध्यान. और ४ रुपातीत ध्यान. इन ४ ध्यानके ध्यानेसें भव्य जीवों, कैवल्य ज्ञान रूप भास्कर (सूर्य) को प्राप्त कर सक्के हैं. अब इनका अर्थ—

श्लोक — पदस्थं मंत्र वाक्यस्थं, पिण्डस्थं स्वात्म चिन्तम्
रूपस्थं सर्व चिद्रुपम्, रूपातीतं निरञ्जनम्
महद्रव्य संग्रह.

अर्थ— १ मूल मंत्राक्षरोका स्मरण करना, सो पदस्थ ध्यान.

२ स्व आत्मके पर्यायका विचार करना सो पिण्डस्थ ध्यान

३ चिद्रूप अर्हंत भगवंतका ध्यान करना सो रूपस्थ ध्यान.

और ४ निरंजन निराकार सिद्ध परमात्म का ध्यान करना सो रूपातीत ध्यान.

प्रथम पत्र-पदस्थ ध्यान.

१ "पदस्थ ध्यान"=मन्त्र (मनको त्रण करे ऐसे पद (वाक्य) सो इस जगतमें मतांतरों की भिन्नतासे इष्ट देवो विषय श्रधा में भी भिन्नता हो रही है इ सी सबब से भिन्न २ मतावलम्बीयो, भिन्न २ देवो के नामसे मंत्र रचना कर, उनका स्मरण करते है. जैसे—"ॐ नमः शिवाय" "ॐ नमो वासुदेवाय" वगैरे. तैसे जैन मतमें मानतिय, अनादी सिद्ध ... देव, पंच परमेष्टी है उनका स्मरण मतांतर ... स्मरण बहुत प्रकारसे किया जाता है ...

गाथा पणत्तीस सोलङ टप्पण, चउ दुग मेगंच ज-
वह ज्झाएह, परमेठी वाचयाणं, अण्णं च
गुरुवए सेण १ द्रव्य संग्रह.

अर्थात—पेंतीस (३५) सोले (१६) अठ (८) पांच (५) चार (४) दो (२) एक (१) इस प्रमाणे अक्षरों के स्मरण सें पंच प्रमेष्टी योंका जप-ध्यान हो सक्ता हें. और इस सिवाय अन्यभी तरह, मुन्याधिक अक्षरोंके साथ प्रमाणसे पंच प्रमेष्टी का ध्यान होता हें. सो गुरु गम्मसे धारण कर जाप करना.

३५ अक्षरका मूल मन्त्र.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
ण मो अ रि हं ता णं, ण मो सि द्धा णं, ण मो
१५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
आ य रि या णं, ण मो उ व ज्झा या णं, ण मो
२९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५
लो ए स व्व सा हू णं,

षोडस (१६) अक्षरी मन्त्र.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
*अ रि हं त, सि द्ध, आ चा र्य, उ पा ज्झा य,
१५ १६
सा हू, ७

* इसमें पंच प्रमेष्टीके नाम मात्र हैं.

'अठ (८) अक्षरी व पंचाक्षरी (५) मन्त्र

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ १ २ ३ ४ ५

अ रि हं त सि द्ध सा हू* ॥ अ, सि, आ, उ, सा,†

चार, दो, और एकाक्षरी मन्त्र.

१ २ ३ ४ १ २ १

सिद्ध साहू,‡ ॥ सिद्ध§ ॥ ॐ¶ ॥

---

* इसमें आरिहंत और सिद्ध दो मूल मंत्र के पद कायम रख, पींछे के तीन पद एक साहू शब्द में लिये हैं क्यों कि आचार्य. उपाध्याय, और साधु यह तीन साधू ही होते हैं.

† इसमें— 'अ' से अरिहन्त, 'सि' से सिद्ध. 'आ' से आचार्य. 'उ, से उपाध्याय. और 'सा, से साहू. यों एकेक अक्षरका जापहै

‡ इसमें 'आरिहंत' और 'सिद्ध' इन दोनो को सिद्ध पदमें किये. क्यों कि अरहन्त भी आगे सिद्ध होने वाले हैं. उन्हे सिद्ध कहनेमें कुछ हरकत नहीं, और आचार्यादि तीन पद साधु पदमें समाये सो तो पींछे कह दिया है

§ 'सिद्ध' पद छोड बाकीके चारही पदकी मुख्य इच्छा सिद्ध पद प्राप्त करनेकी हैं इस हेतूसे पांचही पदको एक सिद्ध कहनेमें कूछ हरकत नहीं है

¶ गाथा—'अरिहंता, असरीरा, आयरिया, उवज्झाय, मुणिणो पंचक्खर निप्पन्नो ॐ कारो पंच पर मिठि" अर्थ—अरिहंत की आदीमें 'अ' है. असरीर (सिद्ध) की आदीमें भी 'अ' है. और आचार्य के आदीमें भी 'आ' दीर्घ है. उपाध्याय की आदीमें 'उ' है और मुनी (साधु) की आदीमें 'म' है, यह पांच अक्षर ~~अ-अ~~-आ-उ-म्. व्याकर्ण सिद्ध. हेमचन्द्राचार्य कृत शाक्टायन के तीनो दीर्घ 'अ' मिल एक दीर्घ 'आ' बना; तब 'आउम' 'आ' कार और 'उ' कार मिलनेसे 'ओ' कार होता मकार बिन्दूरु होनेसे ओं (ॐ) कार सिद्ध हुवा.

यह पंच प्रमेष्टी के जाप स्मरण की संक्षेपमे रीत बताइ. और भी इस सिवाय, शास्त्र ग्रन्थमें स्मरण करने के मन्त्र कहे हैं. उसमे के कुछ यहां दर्शाये जाते हैं.

गाथा — मङ्गल शरणो पदानि, कुर्म्वं यस्तु संयमीं स्मरति. अविकल मेकाग्रधिया, सचा पवर्ग श्रियं श्रयाति.

अर्थात—मङ्गल, शरण, और उत्तम इनका जो स्मरण करते हैं, वे मुनीराज मोक्षरूप महा लक्ष्मीका आश्रय लेते है सो—

मन्त्र — चात्तारि मङ्गलं, अरहन्ता मङ्गलं, सिद्ध मङ्गलं, साहु मङ्गलं केवालि पण्णतो धम्मो मङ्गलं, चत्तारी-लोगुत्तमा-अरहन्त लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलि पण्णतो धम्मो लोगुत्तमा, चत्तारि सरणं पव्वज्जामी, अरहन्त सरणं पव्वज्जामी, सिद्ध सरणं पवज्जामी साहू सरणं पवज्जामी केवलि पणतो धम्म सरणं पव्वज्जामी.

सूत्र—चउवी सत्थ एणं दंसण विसोहिं जणयइ. उत्तरज्झयन.

अर्थ—चउवी सत्थ (चतुर्वीस जिनस्तवं) मंत्र. अर्थात्—चौवीस जिन (तिर्थंकर) की स्तुती (गुणग्रा-

म) करनेसे, दर्शन (सम्यक्त्व) की विशुद्धता, निर्मलता, होती हैं. वो चउवी सत्व. यह है.

मन्त्र लोग्गस्स उज्जोयगरे, धम्म तित्थयरे जिणे, अरिहंत केतइसं, चउवी संपि केवली.१ उसभ माजियंच वंदे संभव मभिनंदण च सुमइंच पउमप्पहं सुपासं, जिणंच चंदप्पहं वंदे,२ सुविहं च पुप्फदंतं शिअल सिज्जंच वासु पुज्जंच मिमल मणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ३ कुंथु अरंच मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमि जिणं च वंदामि रिठ नेमि पासंतह वद्धमाणंच ४ एवं मय अभिथ्थुया, विहुय रयमला, पहीणं जर मरणा, चउवि संपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसिथंतु ५ कितिय वंदिय माहिया जे ए लोग्गस्स उत्तमा सिद्धा. आरुग्गं वोहिलाभं सामाहिवर मुत्तमं दिंतु. ६ चंदे सुनिम्मल यरा, आइचेसु अहियं पयास यरा, सागर वर गंभीरा, सिद्धा सिद्धीं मम दिसंतु.

सूत्र—थय थुइ मगलेणं नाण दंसण चारिच वोहिलाभं जणयइ, नाण दंसण चरित्त वोहिलाभं संपणणं जीवे, अत किरियं कृप्पां विमाणो ववत्तियं आराहणे. आराहेइ,

अर्थ, थय थुइ [स्तुतीरूप]मंगल सो नमोत्थुण रूप मंत्र पढनेसे ज्ञानकी निर्मलता होय. बुद्धिकी वृद्धीहोय. दंशण की निर्मलता होय सम्यक्त्व शुद्ध होए. चारित्रके गुणकी वृद्धी होए. बोद्ध बीज काला-

भ होए और ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी शुद्धी होनेसे मोक्ष की प्राप्ती होती हैं; कदास पुण्य की वृद्धी हो जाय तो १२ देवलोक ९ ग्रेयवेक ५ अनुत्तर विमान इसमे महारिद्धिक देव होए.

मन्त्र—नमोत्थुणं, अरिहंताणं, भगवंताणं, आइगराणं, तित्थयगणं, सयं संबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससिहाणं पुरिसवर पुंडरियाणं, पुरिसवर गंध हत्थीणं, लोगुत्तमाणं, लोग नाहाणं, लोग हियाणं, लोग पइवाणं, लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं, चख्खूदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, बोही दयाणं, धम्म दयाणं, धम्म देसियाणं, धम्म नायगाणं, धम्म सारहीणं, धम्म वर चाउरंत चक्कवट्टीणं, दीवो ताणं सरण गइ पइट्टा. अप्पडी हय वरनाण दंसण धराणं, वियट्ट छउमाणं, जिणाणं जावयाणं, तिन्नाणं तार याणं, बुद्धाणं, बोहियाणं, मुत्ताणं, मोयगाणं, सव्वन्नुणं, सव्वदरिसिणं, सिव-मयल-मरुय-मणंत-मख्खय म-व्वाबाह, मपुणरावीति. सिद्धिगइ नाम हेयं ठाणं संपताणं नमो जिणाणं, जिय भयाणं. (यह थय थुइ मंगलं)

यह नवकार चउवीस्तव (लोगस्स) और नमोत्थुणं यह तीन स्मरण तो यहां बताये; और इन सिवाय जित्ने जिन भाषित सुत्रों की सज्झाय (मूल पाठका पढना) तथा और भी श्रीजिनस्तव. तथा मुनीस्तव.

वैराग्य आत्मज्ञान गर्भित. अध्यात्मिक, शांतादी रस से भरपूर. इत्यादी जो स्वध्याय परियट्टणा रूप ज्ञान फेरना सो सब पदस्थ ध्यान जाणना

अनुभव युक्त पदस्थध्यान ध्यानेसे जीव परमोत्कृष्ट रस में चडाहुवा महा निर्जरा करता है

द्वितीय पत्र पिण्डस्थध्यान

२ पिण्डस्थध्यान=पिंड=सरीर में. स्थरहीहुइजो आत्मा उसकी भिन्नता का चिंतवणा सो पिण्डस्थ ध्यान.

गर्भित पुद्गल पिण्डमें, अलख अमूर्ती देव.
फिरे सहज भव चक्र मे यह अनादी टेव.

अर्थात्–यह पिण्ड [सरीर] सप्त [७] धातूओं करके बना हुवा. महा अशुचीका भंडार, क्षिण २में पर्याय का पलटने वाला. मृगापुत्रके फरमान मुजब "वाही रोगाण आलए" अर्थात्–आधी [चिंता] व्याधी[रोग] उपाधी [दुःख] का घर, ऐसे सरीरमें अलख–जो लक्ष [अकल] में जिसका गुण न आवे. (समावे) ऐसे और अमूर्ती जो देखनेमें न आवे, ऐसे देव विराजमान हैं परन्तु अनादी कालसे जिनका फिरनेकादी स्वभाव

"–है" यह मुख्य ध्यानका 'बीज मंत्र' है.

देहाध्यासते व कर्म संयोग कर हो रहा है. जिससे संसार चक्रवालमें, अनंत परिभ्रमण कर रहा है. इस का मुख्य हेतू यह है की—

जो जो पुद्गल की दिशा, ते निजमाने हंस.
याही भरम विभाव ते, वडे कर्मको वंस.

जो जो जगत्में पुद्गली पदार्थ हैं, उनको अपने मान रहा है, और उनका स्वभाविक स्वभावमें प- लटा पडनेसे. अर्थात् पुद्गलोंका संयोग वियोग होनेंसे आपनाही संयोग वियोग समजता हें, मतलबकी अप- नी अनंत ज्ञानमय जो चैतन्य अवस्था हें, उसकों कर्म के नशेने छक हो भूलगया भ्रममें पडगया; और अपन स्वभाव को छोड विभाव में राच- माच रह्या हें, [illegible] सीसे कर्मों की वृधी होती हें और भव भ्रमण कर[illegible] पडता हें. कहा है—

कर्म संग जीव मुढ है पावे नाना रूप
कर्म रूप मलके टले. चैतन्य सिद्ध स्वरूप.

यह रूप कर्म की संगती काही स्वभाव [illegible] की चैतन्यका क्योंकि चैतन्य तो सिद्ध स्वरूपी [illegible] त्मा रूप हें. इसका भव भ्रमणमें पडनेका स्व[illegible] ही नहीं. जो होय तो सिद्ध भगवंत को भी [illegible] [illegible] कर्मों संयोगसे मूढ हो [illegible]

दिकयोनी में अनेक प्रकार का रूप धारन करता है. और जबकर्म रूप मेल दूर हुवा देहाध्यास छूटा की निजरूपको सिद्ध स्वरूप को प्राप्त होजाता हैं.

संसारी जीवों को अनादी कालसे, ज्ञानावरणियादी कर्मों का सम्बन्ध होने से, आत्मा की अनंत ज्ञानमय चैतन्य शक्ती लुप्त हुइहैं. इस लिये विभाव रूप हो रहाहैं. जैसे कीचड के संयोगसे पाणी की स्वच्छता नष्ट होती हैं, तैसे ही कर्म संयोगसे चैतन्य विभाव रूप हुवाहै. जब भवस्थिती परिपक्व होतीहैं तब सम्यक्त्वादी सामग्री प्राप्त होतीहैं. तब कर्म सम्बन्ध नष्ट हो शुद्ध चैतन्यता प्रगट होतीहै, उसीहीवक्त जीव सर्वज्ञाताको प्राप्त हो एक समयमें त्रिकाल के सर्व पदार्थ जानने देखने लगता हैं

सिद्धा जैसा जीवहै, जीव सोही सिद्ध होय.
कर्म मैलका आंतरा, बुझै विरला कोय.
कर्म पुद्गल रूप है, जीव रूप है ज्ञान.
दो मिलकर बहुरूप है, विछडे पद निर्वाण.

इस लिये यह जीव सिद्ध स्वरूपी हीहै, क्योंकि जीव ही सिद्ध पदको प्राप्तकर सक्ता है. अन्य नहीं. ये [illegible]जीवही है की, कर्म और जीव का मूल स्वभाव यह [illegible]ना चाहीये: कर्महै सो पुद्गल जानिये, पुद्गल मय

रुपी निर्जीव जड पदार्थहैं, और जीव ज्ञान स्वरुप अ-
रुपी चेतना वंत हैं. इन दोनोका अनादी सम्बन्ध के
सबबसेही देहाध्यासके प्रभावसेही भवांतरों में अनेक
तरहका कायारूप धारण करता है. ऐसे जानने वाले
जक्तमें थोडे है. जो यह जानेंगे. वोही कर्म सम्बध
तोड, निर्वाण प्रात करनेका उपाय करेंगे.

गाथा— जीवो उव ओगम ओ, अमुत्ति कत्ता सदेह
परिमाणो. भोत्ता संसारत्थो सिद्धो, सो विस्स
सेड्ढगइ. द्रव्य संग्रह.

'जीवा'=यह जीव शुद्ध निश्चयसे आदी मध्य
और अंत रहित स्व तथा परका प्रकाशक, उपाधी र-
हित शुद्ध ज्ञान रूप निश्चय प्राणसें जीता है. तो भी
अशुद्ध निश्चय नयसे, अनादी कर्म बन्धके वशसे, अ-
शुद्ध जो द्रव्य प्राण, और भाव प्राण उनसे जीता है.

१ सोंकालमें जीवके चार प्राण होते है, १ इन्द्रियोंके अगो
चर शुद्ध चैतन्य प्राण, उसके प्रति पक्षी क्षयोपशमी इन्द्रि प्राण.
२ अनंत विर्य रुप बलप्राण, उसका अनंत वा हिस्सा. मन 'बल'
वचन बल, कायाबल, प्राण है. ३ अनंत शुद्ध चैतन्य प्राण उससे
विपरीत आदी अंत सहित आयुप्राण है. और ४ श्वासोश्वासादि
खेद रहित शुद्ध चित प्राण उससे उलट श्वासोश्वास प्राण हैं
यह ४ द्रव्य प्राण और ४ भाव प्राणसे जो जीया है. और
जीवेगा वो व्यवहार नयसे जीव हैं.

दिकयोनी में अनेक प्रकार का रूप धारन करता हैं. और जबकर्म रूप मैल दूर हुवा देहाध्यास छूटा की निजरुपको सिद्ध स्वरूप को प्राप्त होजाता हैं.

संसारी जीवों को अनादी कालसे, ज्ञानावरणि यादी कर्मो का सम्बन्ध होने से, आत्मा की अनंत ज्ञानमय चैतन्य शक्ती लुप्त हुइहैं. इस लिये विभाव रूप हो रहाहैं. जैसे कीचड के संयोगसे पाणी की स्व च्छता नष्ट होती हैं, तैसे ही कर्म संयोगसे चैतन्य विभाव रुप हुवाहैं. जब भवस्थिती परिपक्व होतीहैं त ब सम्यक्त्वादी सामग्री प्राप्त होतीहैं. तब कर्म सम्बन्ध नष्ट हो शुद्ध चैतन्यता प्रगट होतीहै, उसीहीवक्त जी व सर्वज्ञाताको प्राप्त हो एक समयमें त्रिकाल के सर्व पदार्थ जानने देखने लगता हैं

सिद्धा जैसा जीव है, जीव सोही सिद्ध होए.
कर्म मैलका आंतरा, बूझे विरला कोए.
कर्म पुद्गल रूप है और रूप है ज्ञान
दो मिलके बहुरूप है बिछडे पद निर्वान.

इस लिये यह जीव सिद्ध स्वरूपी हींहै, क्योंकि जीव ही सिध्द पदको प्राप्तकर शक्ता हैं. अन्य नहीं. वे रहस्नीही हैं की, कर्म और जीव का मूल स्वभाव यह जानना चाहीये; कर्महैं सोपुद्गल जणितहैं, पुद्गल मय

रूपी निर्जीव जड पदार्थहैं, और जीव ज्ञान स्वरुप अ-रूपी चेतना वंत हैं. इन दोनोका अनादी सम्बन्ध के सबबसेही देहाध्यासके प्रभावसेही भवांतरों में अनेक तरहका कायारूप धारण करता है. ऐसे जानने वाले जक्तमें थोडें है. जो यह जानेंगे. वोही कर्म सम्बध तोड, निर्वाण प्राप्त करनेका उपाय करेंगे.

गाथा:— जीवो उव ओगम ओ, अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो. भोत्ता संसारत्यो सिद्धो, सो विस्स सेड्डगइ. द्रव्य संग्रह.

'जीवा'=यह जीव शुद्ध निश्चयसे आदी मध्य और अंत रहित स्व तथा परका प्रकाशक, उपाधी रहित शुद्ध ज्ञान रूप निश्चय प्राणसें जीता है. तो भी अशुद्ध निश्चय नयसे, अनादी कर्म वन्धके वशसे, अशुद्ध जो द्रव्य प्राण, और भाव प्राण उनसे जीता है.

---

१ त्रीकालमें जीवके चार प्राण होते है, १ इंद्रियोंके अगोचर शुद्ध चैतन्य प्राण, उसके प्रति पक्षी क्षयोपशमी इन्द्रि प्राण. २ अनंत विर्य रुप बलप्राण. उसका अनंत वा हिस्सा. मन 'बल' वचन बल, कायाबल, प्राण है. ३ अनंत शुद्ध चैतन्य प्राण उससे विपरीत आदी अंत सहित आयुप्राण है. और ४ श्वासोश्वासादि खेद रहित शुद्ध चित प्राण उससे उलट श्वासोश्वास प्राण हैं यह ४ द्रव्य प्राण और ४ भाव प्राणसे जो जीता है. और जीवेगा वो व्यवहार नयसे जीव है.

पिण्ड से आत्मा चैतन्य कों अलग करने. का ज्ञान युक्त तप संयम करो. कि जिससें कर्म रहीत शुद्ध, चैतन्य,* ज्ञान श्वरूप घन जाय. क्यों की ज्ञानादी रत्नों का भाजन चैतन्यही है, ज्यों चांदी खटाइ सें धोनेसें उज्वलता आतीहैं. तैसे चेन्तय उज्वलहो—

ज्ञानथकी जाणे सकल, दर्शन श्रधा रूप.
चारित्र थी आवत रूके, तपस्या क्षपन स्वरूप.

ज्ञान से चैतन्य की और कर्म की प्रणती पहचाने, दर्शन से उसेजिनोक्त आगम प्रमाणे सत्य श्रधे. चारित्रसे जीव और कर्मका अलग करनेके मार्ग लगे. और तप करके जीव और कर्म अलग करे यह उपाय.

जीव कर्म भिन्न २ करो, मनुष्य जन्मको पाय.
ज्ञानात्म वैराग्य से. धैर्य ध्यान जगाय.

मनुष्य जन्ममेंही होता है इस लिये हे मोक्षार्थीयों! यह इष्टार्थ सिद्धीका अवसर मनुष्य जन्मादी सामग्री प्राप्त हुइ है तो अब वैराग्य धैर्य युक्त धारण कर ज्ञान युक्त ध्यानस्त बन जीवको कर्मोसे अलग करे.!!

* जैसे स्फटिक रत्न स्वभावसेही निर्मल [illegible] होता है परंतु उसके नीचे अन्य रंगकी [illegible] [illegible] सिद्धन्त है, वैसेही आत्मा कर्मोदय बनावसेही भासता है [illegible] निर्मल.

यों जीव और कर्मकी भिन्नता जाणनेका, तथा उन्हे भिन्न २ करनेका उपाय संक्षेपमें कहा, औरभी ग्रंथकार कहते हैं.७

* पिंडस्थ ध्यानमें संस्थित होनेसे आत्माकी ज्ञान ज्योतीको प्रकाशित करनेका सरल उपाय एक ग्रन्थकार ऐसा कहते हैं की– शुभध्यानमें कहे मुजब, द्रव्यादी शुभ सामुग्री युक्त ध्यानस्त हो, अंतःकरण में विचारे बाहिर श्वास निकल ने की मै स्वस्थान छोड बाहिर आया, और पुनः अन्दर श्वास जाती वक्त विचारे की, मै अन्दर चला. यों विचारही विचारसे सिरस्थानसे कंठस्थान और कंठस्थानसे नाभीकमलस्थान पे जा विराजमान होवे. और वहां स्थिर हो अन्दरको द्रष्टीको खुली कर देखने ऐसा भाषा होगा की मै नाभी कमल पेही संस्थित हूं, यों जब अपनी आत्माका सुक्ष्म स्वरूपका भान होवे. तब उस सुक्ष्म स्वरूपकी द्रष्टी खुली कर नाभीके आजु बाजु चारही तर्फ अवलोकन करे, यों धैर्य और द्रढ निश्चयके साथ अवलोकन करनेसे जो अन्धकार देखाय तो, उसी वक्त द्रढ निश्चयसे कल्पना करे, की इस अन्धकारका शिघ्र नाश होवो, और अनंत प्रकाशी सूर्य मंडलका मेरे हृदयमें प्रकाश होवो. यों कहता हुवा सुक्ष्म रूपसेही आकाशकी तर्फ (उंचा) अवलोकन करे, के उसी वक्त सूर्य जैसा प्रकाश अंतःकरण में दिखने लगेगा. यों हमेशा अभ्यास रखनेसे अंतर आत्माकी ज्ञान ज्योतीमें दिनो दिन विशुद्धता की अधिकता होती है. और अतरिक गुप्त वस्तुओं जाणनेमें आने लगती है और अनेक गुप्त शक्तीयों प्रगट होती है.

पिन्डस्थ ध्यानमें ९ तत्वके विचार करनेसे भी ज्ञान ज्योती प्रकाश होता है, ऐसा भी एक ग्रन्थकार लिखते हैं. सो ध्यानस्त

ऐसेही पिण्डस्थ ध्यानमें "सप्त भंगीसे आत्म-तत्व" विचारे. १ प्रत्येक पदार्थ अपने २ द्रव्य चतुष्टय*

हो, दृढता पूर्वक पहले पृथवी तत्वका विचार करता गोलाकार पृथवी के मध्य क्षीर सागर और उसके मध्यमें जंबुद्विपका कमल ठरावे मेरु पर्वत को किरणिका ठेहरा उसमें सिंहासनकी कल्पना कर उसपे आप बेठे. फिर दूसरा अग्नी तत्वका विचार करता. हृदयमें १६ पंखडीके कमलपे 'अ' स्वरसे लगा १६ मा अः स्वरकी स्थापन कर मध्यमें 'र्हं' बीज स्थापे, फिर विचार करे की इसमे धुम्र निकलने लगा, और महाज्वला प्रगट हो कमल को भस्म कर भक्षके अभावसे अग्नी शांत हुइ फिर ३ वायूका विचार करे के महा वायु प्रगट हो मेरुको कम्पाने लगा. और पहलेकी भस्म उडा ले गया जिससे वो जगा साफ होगइ. फिर ४ पाणी तत्व विचारे की आकाश मै गर्जारवहो बुंद पडने लगा और महामेघ बर्षके उस स्थानको अत्यत स्वच्छ कर दीया. और मेघ भगगया. फिर ५ मा आकाश तत्व विचारेकी अब मेरी आत्मा सप्त धातू मय पिंड राहित, पूर्ण चन्द्रके समान प्रकाशित निर्मल सर्वज्ञ देवतुल्य हुइ. यह दृढतासे निश्चयात्मक बननेसे शुबेहू बनाव दृष्टी आता है.

* अपने २ द्रव्य चतुष्टयसे सर्व पदार्थ सत्य है. जैसे आत्मा ज्ञानादी गुणका भाजन (आधार) ही है. परन्तु ज्ञानादी गुणोंमें जो समय २ में फेरफार होता है सो पर्यायोंका होता है, न की स्वभा वोंका: १ आत्माके असंख्यात प्रदेशोंमें जो ज्ञानादी गुण रहे है सो स्व क्षेत्र है. ३ पर्यायोंमें जो उत्पात व्यय क्षिण २ में होता है, सो स्व काल है और ४ आत्माके गुणोंका और पर्यायोंका जो कार्य धर्म है सो स्वभाव है.

(द्रव्य क्षेत्र काल भव) की अपेक्षा से असाति रूपहैं. जैसे आत्मा में ज्ञानादी गुण का सदा आस्तीत्व होता हैं. इस लिये * स्यात् आस्ति होय. २ और वोही पदार्थ अन्य (पर) द्रव्य चतुष्टय की अपेक्षा से नास्ति रूप हैं. जैसे आत्मा जडता (अचेतन्यता) रहित हैं, इसलिये स्यात् नास्ति होय. ३ सर्व पदार्थ अपनी २ अपेक्षा सें अस्ति रूप हैं. और परकी अपेक्षासे नास्ति रुप हैं. जैसे आत्मा में चैतन्यता की अस्ति और जडता की नास्ति;इस लिये एक ही समय में स्यात् आस्ति नास्ति दोनो होय. ४ पदार्थ का स्वरूप एकांतता से जैसा का वैसा कहा नहीं जाय, क्योंकि जो आस्ति कहेतो नास्तिका और नास्ति कहे तो आस्ति का अभाव आवे. इसलिये एक ही समय में दोनो भाव प्रकाशे नहीं जाय; केवळ ज्ञानी एक समयेंम वरोक्त दोनों भावकों जाणतो शक्के हैं. परन्तु वाणी द्वारा वागर नहीं शक्केंहैं. तो अन्य की क्या कहना; इसलिये स्यात् अवक्तव्यं, ५ एकही समयेंम आत्मा में सर्वस्व पर्यायों का सद्भाव आस्तित्व हैं और पर पर्यायों का सद्भाव नास्तित्व हैं. और दोनो भाव

* स्याद् या स्यात् शब्दका अर्थ 'होना' अर्थात् हां! देखनी होय ऐसा होता हैं.

एकही वक्त कहें नहीं जाय; अस्तिक है तो नास्तिका आभाव आवें, मृशा लगे, इसलिये स्याद आस्ति अवक्तव्य होय ६ ओर इसही तराह जो नास्ति कहे तो आस्तिक अभाव आवे इसलिये स्यात् नास्ति अवक्त होय. ७ आस्ति के कहने से नास्ति का अभाव, नास्तिके कहने से आस्तिका अभाव, और पदार्थ एकही काल में आस्ति नास्ति दोनो तरह हैं परन्तु कहेजाय नहीं क्यों की वाक्या तो कर्म वृती हे इसलिये स्यत् आस्ति नास्ति अवक्तव्य होय यह आस्ति नास्ति अश्रिय स्यात् वाद मत से आत्मास्वरूप दर्शाया.

एसेही नित्य, अनित्य; सत्य, असत्य; वगैरे अनेक रीतीसे आत्म स्वरूपके विचारमें जो निमग्न हो पूद्गल पिण्ड से आत्माकी भिन्नता लखे, निश्चय आत्मिक वने.

यह सब पिण्डस्थ ध्यानमें चिंतवन करनेका

मनहर—पाणी हारी कुंभरु, नटवर-वृतमें, कामीको-कन्ता,
सती-पती चढाइ; गौ-वच्छ, वालक-मात, लोभी-धन,
चकवी-सूर्य, पपैया-मेहाइ; कोकिल-अम्ब, नेसायर-चन्द्र ज्यों, हंसो-दधी, मधू-मालती, ताइ, भयवंत-सरण,
आंपकी-औषधी, 'अमोल' निजात्म त्यों नित्य ध्याद.१

मुख्य हेतु, सर्व वस्तुओंमे मन रमण करता है उससे निवार, एक आत्माके तर्फ लगानेके लियेही है. आत्माके तर्फ मन लगनेसे अन्य पुद्गलोंको ग्रहण नहीं करता हैं, जिससे नवीन कर्मका बन्ध नहीं होता है. ज्यूंने कर्म क्षिण २ में अलग हो आत्म ज्योती पूर्ण प्रकाश पाती है. तब सर्व कार्य सिद्ध होते हैं.

ऐसे पिण्डस्थ ध्यानका संक्षेपमें विचार इत्ना! ही है की, ज्ञानादी अनंत पर्याय का पिण्ड एकमें आत्मा हूं. और वर्णादी अनंत पर्यायका पिण्ड, कर्म तथा उससे उत्पन्न हुवा सरीर है. इस लिये दोनो के स्वभाव भिन्न भिन्न होनेसे दोनो अलग २ हैं. ऐसा निश्चय होयसो पिण्डस्थ ध्यान. इस ध्यानसे भेद विज्ञान प्राप्त होता है. जिससें आत्म स्वभावमें, अत्यंत स्थिरता भाव युक्त, क्षांत, दांत, आदी गुण स्वभाविक जाग्रत होनेसे, सर्व भयसे निवृत्ती होती है. उन्हे महा भयंकर स्थानमें, क्षुद्र प्राणीयोंके समोह में या प्राणांतिक उपसर्गके प्रसंगमेभी किंचितई क्षोभ प्राप्त नहीं होता है, अखंडित ध्यानकी एकाग्रता से वो स्वल्प कालमें इष्टार्थ साधते हैं.

तृतीय पत्र "रूपस्थध्यान"

३ "रूपस्थध्यान"=रूपी परत्माके गुणमें स्थिर होना' सो रूपस्थध्यान, अर्हंत पाहुडमें कहा है-

जे जाणइ अरिहंते, दव्व गुण पज्जवेहिय;
ते जाणइ नियऽप्पा, मोह खलु जाइय लयं.

अर्थात्-जो अर्हंत भगवंतका स्वरूप, द्रव्य, गुण, पर्याय, करके जाणेगा, वोही आत्माके स्वरूप को जाणेगा. और जो आत्माको पहचानेगा वोही मोह कर्मका नाश करेगा.

अर्हंत, अरिहंत, और अरूहंत यों ३ शब्द हैं. १ देविन्द्र नरेंद्रादिक के पूज्य, व अतिशयादी ऋद्धी युक्त सो अर्हंत. २ कर्म व राग द्वेषरूप शत्रुके नाश करे उन्हे, अरिहंत कहते है, और ३ जन्मांकुर, व रोगादी दुःख के अंकुरके नाश करने वालेको अरुहंत कहते है.

श्री अर्हंत भगवंत, अनंत-ज्ञान-दर्शन-चारित्र, और अनंत तप, यह अनंत चतुष्टय कर युक्त है, सं-मव सरणके मध्यमें, अशोक वृक्षके नीचे, मणी रत्नो जडित सिंहासणके उपर, चार अंगुल अधर, छत्र, च-मर, प्रभामंडल की विभूती युक्त द्वादश (१२) जात

की प्रपदा से प्रवरे, दिव्य ध्वनी प्रकाश करते हैं, जिसका अवाज, भाद्रव के मेघके गर्जारवकी तरह, चार २ कोश में, चारही तर्फ पसरता है, जिसे श्रवण कर, अच्युतेंद्र, सक्रेंद्र, धरणेंद्र, नरेंद्र, (चक्रवर्ती) और बृहस्पति जैसे विद्यामें प्रचूर, षड शास्त्र के परगामी, महा तेजस्वी, वक्तृत्वकला के धारक, महा प्रवीण प्रभूकी दिव्य ध्वनी श्रवण कर, चमत्कार पाते हैं. की हा हा ! क्या अतुल्य शक्ती ? क्या विद्या सागर, एकेक वाक्य की क्या शुद्धता मधुरता सरलता इत्यादी गुणानुराग में अनुरक्तहो, हा हा कर अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं. जैसे क्षुधातुर मिष्टान भोजनकों और त्रषातुर सितोदक को ग्रहण करता हैं. तैसे ही श्रोतगण जिनेश्वर के एकेक शब्द को अत्यंत प्रेमातुरता से ग्रहण कर, हृदय को शांत करते हैं:परम वैराग्य कों प्राप्त होते हैं, वाणी श्रवण करते सर्व काम को भूल एकाग्रता लगाते हैं.

और भी भगवंत की सूर्त, मनहर ,शांत, गंभीर, महा तेजस्वी एक हजार आठ उत्तमोत्तम लक्षणों से विभुषित. देदिप्य – झलझाट करती, सर्वोत्तम अत्यंत प्यारी मुद्रा के दर्शनमें लुब्ध होतेहैं. और हृदयमें कहतेहैं की, हा हा, क्या यह लहर संपदा,

तृतीय पत्र "रूपस्थध्यान"

३ "रूपस्थध्यान"=रूपी परत्माके गुणमें स्थिर होना' सो रूपस्थध्यान, अर्हंत पाहुडमें कहा है–

> जे जाणइ अरिहंते, दव्व गुण पज्जवेहिय;
> ते जाणइ नियऽप्पा, मोह खलु जाइय लयं. ...

अर्थात्–जो अर्हंत भगवंतका स्वरूप, द्रव्य, गुण, पर्याय, करके जाणेगा, वोही आत्माके स्वरूप को जाणेगा. और जो आत्माको पहचानेंगा वोही मोह कर्मका नाश करेगा.

अर्हंत, अरिहंत. और अरूहंत यों ३ शब्द हैं. १ देविन्द्र नरेंद्रादिक के पूज्य, व अतिशयादी ऋद्धी युक्त सो अर्हंत. २ कर्म व राग द्वेपरूप शत्रुके नाश करे उन्हे, अरिहंत कहते है, और ३ जन्मांकुर, व रोगादी दुःख के अंकुरके नाश करने वालेको अरुहंत कहते है.

श्री अर्हंत भगवंत, अनंत-ज्ञान-दर्शन-चारित्र, और अनंत तप, यह अनंत चतुष्टय कर युक्त है, स-मव सरणके मध्यमें, अशोक वृक्षके नीचे, मणी रत्नो जडित सिंहासणके उपर, चार अंगुल अधर, छत्र, च-मर, प्रभामंडल की विभूती युक्त द्वादश (१२) जात

की प्रपदा से प्रवरे, दिव्य ध्वनी प्रकाश करते हैं, जिसका अवाज, भाद्रव के मेघके गर्जारवकी तरह, चार २ कोश में, चारही तर्फ पसरता है, जिसे श्रवण कर, अचुतेंद्र, सकेंद्र, धरणेंद्र, नरेंद्र, (चक्रवर्ती) और वृश्पति जैसे विद्यामें प्रचूर, षड शास्त्र के परगामी, महा तेजस्वी, बहुत्वकला के धारक, महा प्रवीण प्रभूकी दिव्य ध्वनी श्रवण कर, चमत्कार पाते हैं. की हा हा! क्या अतुल्य शक्ती? क्या विद्या सागर, एकेक वाक्य की क्या शुद्धता मधुरता सरलता इत्यादी गुणानुराग में अनुरक्तहो, हा हा कर अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होतें हैं. जैसे क्षुधातुर मिष्टान भोजनकों और तृषातुर सितोदक को ग्रहण करता हैं. तैसे ही श्रोतागण जिनेश्वर के एकेक शब्द को अत्यंत प्रेमातुरता से ग्रहण कर, हृदय को शांत करते है;परम वैराग्य कों प्राप्त होते हैं, वाणी श्रवण करते सर्व काम को भूल एकाग्रता लगाते हैं.

और भी भगवंत की सूर्त, मनहर ,शांत, गंभीर, महा तेजस्वी एक हजार आठ उत्तमोत्तम लक्षणों से विभुषित. देदिप्य – झलझाट करती, सर्वोत्तम अत्यंत प्यारी मुद्रा के दर्शनमें लुब्ध होतेंहैं. और हृदयमें कहतेंहैं की, हा हा, क्या यह स्वरुप संपदा,

और क्या यह अपुर्व वैराग्यदिशा. निकामी अक्रोधी. आमानी, अमायी, अलोभी, अरागी, अद्वेषी, निर्वीकारी, निर्अंहकारी महा दयाल, महा मयाल, महह्मल, महा रक्षपाल, असरण सरण, अतरण तरण, भव दुःख वारण, जन्म सुधारण, जक्त उधारण, अचिंत्य, अतुल्य शक्तीके धारक, त्रिदुःख वारक, अक्षोभ, अनंत, नेल युक्त, पर्म निर्यामक, पर्म वैद्य, पर्म गारूडी, पर्म ज्योती, पर्म ज्ञाज, पर्मशांत, पर्म कांत, पर्म दांत पर्म महंत, पर्म इष्ट, पर्म मिष्ट, पर्म जेष्ठ, पर्म श्रेष्ट, पर्म पंडित, धर्म मंडित, मिथ्या खंडित, पर्म उपयोगी, अत्म गुण भोगी, पर्म योगी, महा त्यागी, महा वैरागी, अचित्य, अगम्य, महारम्य, अनंत दानलब्धी लाभलब्धी, भोग लब्धी, उपभोगलब्धी, और वलवीर्यलब्धी के धरण हार, क्षयिक सम्यक्त्व' यथा ख्यात चारित्र, केवल ज्ञान, केवल दर्शण, युक्त अष्टादश (१८) दोष रहित, चौतीस अतिशय, पैंतीस वाणी गुण सहित, पर्म शुक्ल लेशी, पर्म सुक्लध्यानी, अद्वेवत भावी, परम कल्याण रूप, परम शांत रूप, परम पवित्र, विचित्र, दाता-भुक्ता, सर्वज्ञ सर्व दर्शी, सिद्ध, बुद्ध, हितेषी, महारूपी, निरामय, (निरोग) महाचन्द्र, महासूर्य, महा सागर, योगिंद्र, मुनिंद्र, देवाधिदेव, अचल,

विमल, अकलंक, अवंक, त्रिलोकतात, त्रिलोकमात त्रिलोकभ्रात, त्रिलोकइश्वर, त्रिलोकपूज्य, परम प्रतापी, परमात्म, शुद्धात्म, अनन्द कन्द, ध्वन्द निकन्द, लोकालोक, प्रकासिक, मिथ्या तिम्र विनाशिक, सत्य स्वरूपी, सकल सुखदायी, स्याद्वाद शैली युक्त, महा देशना फरमाते है की, अहो भव्य! बूजो २ (चेतो २) मोह निद्रा नजो, जागो, जरा ज्ञान द्रष्टी, कर देखो, यह महान् पुन्योदयसे, अत्युत्तम मनुष्य जन्मादी सामग्री, तुमारे को प्राप्त हुइ है, उसका लाभ व्यर्थ मत गमावो. ज्ञानादी त्री रत्नोसे भरा हुवा अक्षय खजाना तुमारे पास है, उसे संभालो, उसीके रक्षक बनो, इसे लूटने वाले, मोह, मद, विषय, कषाय, रूप ठगारे तुमारे. पीछे लगे है, उनके फंदसे बचो, इनके प्रसंगसे अनंत भव भ्रमणकी श्रेणियों में, जो जो वित सही है. उसे यादकर पुनः उस दुःख सागरमें पडनेसे डरो. और बचनेका उपाय करनेकी येही वक्त हैं. जो यह हाथसे छूट गइ तो पीछी हाथ लगनी महा मुशकिल है. जो इस वक्त को व्यर्थ गमा देवोगे तो फिर बहुतही पश्चाताप करोगे. यह सच समजो. और प्राप्त हुये दुर्लभ्य लाभ को मत गमावो. बनी वक्तमें लाभ लेना होय सो लेलो. मानो! मानो!! और त्रिकाल मायाजाल

को तोड, जगतका फंद छोड, चलो हमारे साथ, हो-वो हुंशार, हम अपना शाश्वत अविछल मोक्ष नगरमें परमानन्द परम सुख मय शाश्वत स्थान है; वहां जाते हैं. आवो जो तुमारे को आना होय तो; वोही तुमारा घर है, वहां गये पिछे, पुनरावर्तिनही करना पडता है, अनंत अक्षय अव्याबाध सुखमें, अनंत काल वांही रहना होगा. चेतो! चेतो!! चेतो!!! इत्यादी अर्हंत भगवंतका परमोत्कृष्ट धर्मोपदेश श्रवण कर फरसना कर, भूत कालमें अनंत जीव मोक्ष* गये, वृतमान कालमें संख्याते जीव मोक्ष जाते है, और भविष्य कालमें अनंत जीव मोक्ष जायंगे, इस लिये हे आत्म अहो! मेरी प्यारी आत्मा! तूं महा भाग्योदयसे श्री जिनेश्वर भगवान का मार्ग पाया हैं, उनके यथा तथ्य गुणकी पहचान हुइ हैं. तो उन्ह जैसा होनेके लिये उनके गुणोंमे ळव लगा, उन्हीके हुकम प्रमाणे चरः उन्हने किये वोही कृत्य यथा योग्य कर, उन्ही रूप

---

* अविवहार रासीमिसे ६ महीने और ८ समयमें १०८ जीव निकलके नियम कर विवहार रासीमें आते हैं ज्यादा भी नहीं तैसे कमीभी नहीं और इतनेही जीव विवहार रासीमेंसे निकल मोक्ष जाते हैं तो भी तीनही कालमें निगोदके एक शरीरमें के जीवोंका एक अंश भी कमी (खाली) नहीं होता है ऐसा सुद्रष्ट तरंगणी दिगम्बर ग्रन्थ में लिखा है.

वन. तन्मय हो लवलीन होजा, जैसे स्वपन अवस्थामें द्रष्ट वस्तुकें ध्यानमें लीन हो, उसही रुप आप वन जाता है. अपनी मूल स्थिती भूल जाता है; वो तो मोह दिशा है. परंतु वैसेही ज्ञान दिशामें लव लीन हो अर्हंत भगवानके गुणोंमे तन्मय वन, के जिसके प्रशादसे तेरी अनंत आत्म शक्ती प्रगटे और तूही अर्हंत वने.

चतुर्थ पत्र "रुपातीतध्यान"

४ 'रूपातीत ध्यान'=रूपसे अतीत=रहित (अरूपी) ऐसे सिद्ध प्रमात्माका ध्यान-चिंतवन करना सो रूपातीतध्यान.

गाथा — जारिस्स सिद्ध सहावो, तारी सहावो सव्व जीवाणं
तम्हा सिद्धंत रुइ, कायव्वा, भव्व जीवेही.
सिद्ध पाहुड.

अर्थात्—जैसा सिद्ध भगवंतकी आत्माका स्वरूप हैं, वैसाही सव जीवोंकी आत्माका स्वरूप है, इस लिये भव्य जीवोंको सिद्ध स्वरूप में रुची करना अर्थात सिद्ध स्वरूपका ध्यान करना.

गाथा — जं संठाणं तुइहं, भवं चयं तस्स चारिम समयंमी
आसिय पए संघणं, तं संठाण तहिं तस्स..२

दिहवाह न्संवा, जं चरिम भवे हवेज्ज सयणं,
तत्तो ती भाग हीणं,सिद्धाणो गाहण भणिया.४

उववाइसूत्र

अर्थात्—मनुष्य जन्मके चर्म (छेले) समयमे, जिस आकारसे यहां सरीर रहता हैं; उनके आयुष्य पूर्ण हुये वाद जिवके निजात्म प्रदेश जिस आकारसे उस सरीर के लम्बाइ पणें तृतीयांस हीन (तीसरा भाग कम, सिद्ध क्षेत्र लोकके अग्रभागमें वो प्रदेश जाके जमते हे. उसेही सिद्ध भगतंकी अवगहना कही जाती हैं.*

---

* नाशीकादी स्थानमें जो छिद्र (खाली जगा है वो भरानेसे घनाकार (निबड) प्रदेश रह जाते हे. इसी सबबसे तृतियांस अवघेणा कम हो जाती है सिद्धकी अवघेणा जघन्य १ हाथ ४ अंगुल मध्यम ४ हाथ १६ अगुळ, उत्कृष्ट ३३३ धनुश्य ३२ अंगुल.

प्रश्न—अरुपी और अवघेणा कैसे?

समाधान—(१) अरुपीको अरुपीही दृष्टांतसे सिद्धी करें तो जैसे अकाश अरुपी है तो भी कहा है. लोकालोक (लोकका आकाश) सादीसांत (आदी और अंत सहित) तथा घटाकाश मठाकाश, वगैरे तो आकाश कूछ पदार्थ हैं. तभी आदी अंत होता है, तैसेही सिद्ध की अवघेणा जाणना. फरक इत्नाही की आकाश तो अरुपी अचेतन्य है, और सिद्ध अरुपी चैतन्य हैं. (२) किसी विद्वानसे पूछा जाय की, आप जितनी विद्या पढे हो वो हमे हस्तामल (हाथमें आवले के फलकी) माफिक बताओ; परंतु

अब वो जीव द्रव्य कैसा हैं, सो सूत्रसे कहे हैं.
"मति तत्थण गाहिता, ओए अप्पति हाणस्स खेयन्ने"

अर्थात्—सिद्ध भगवंत के रूपका, या गुणका वर्णव करने 'सव्व सरा नियट्टंता" अर्थात अव्यक्तव्य हैं. कोइभी शब्दमे वरणव करनेकी शक्ती नहीं है,

---

वो बता सक्ता नही है. तैसेही सिद्ध भगवंतको भी "ज्ञानं स्वरूप ममलं प्रवदन्ति संतः" अर्थात् संतः पुरुष निर्मल ज्ञानरूप बताते हैं. (३) और जो रुपी पदार्थ का द्रष्टांत देवें तो मट्टीकी मुशमें मेणका पटला' पीतलादी धातूको रस डाल भूषणादी बणाते है वो भूषण उसमेसे निकाले पछि मूशमे मेण (मॉम) का भाप मात्र आकार रहता है. तैसही सिद्द भगवंतका अरुपी आकारकी अवघेणा हैं. (४) कांचमें दिखता हूवा प्रतिबिंब फक्त भाप मात्र हैं. तैसे सिद्धकी अवघेणा. (५) जोती स्वरूपी कहे जाते है. उसका मतलब यह है की जैसे कोटडीमें एक दीवा किया उसका प्रकाश उसमे समाजाता है, और बहुत दीवे कीये तोभी उनका प्रकाश उसही कोटडीमें समाजाता है. परन्तु वो प्रकाश क्षेत्र रोकता नहीं है. (जमीन जाडा होती नहीं है) ऐसेही अनंत सिद्ध मोक्ष मे हैं. और अनंतही हो गये तोभी बिलकूल जागा रोकाती नहीं है. एक दीवेका प्रकाश जित्ने स्थलमे फैला है. वोही उसकी अवघेना. तैसे सिद्ध की अवघेणा जाणना. (६) सिद्ध भगवंत छद्मस्त की अपेक्षासे अरुपी हैं. (दिखते नहीं है.) परंतु केवल ज्ञानी तो देख शक्ते हैं. जो केवली देखते हैं. वोही जीव द्रव्यके आत्म प्रदेश है, और उसीकी अवघेणा समजना. इत्यादी द्रष्टांतसे सिद्ध की अवघेणा समजना चाहीये.

क्यों कि वहां तक कल्पना विचारना दोडही नहीं श क्ती है. बडे २ ब्रम्हवेता सुर गुरू बृस्पति सर्व शास्त्रों के पार गामीयों की भी बुद्धी हाल तक वहां न पहोंची, तो अब क्यो पहोंचेंगी, जो विशेष ही दोड करी तो इत्ना कह शक्तेहैं, की वहां एकला जीव कर्म कलंक व सर्व संग राहित, तत् सत् चिदात्म, अपने ही प्रदेश युक्त विराज मान हैं वोसंपूर्ण ज्ञान मयें ही हैं.

और भी वो जीव कैसे हैं सो सूत्र से कहते हैं

सूत्र— ण दीहे, ण हस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरंसे, ण परिमण्डले, ण किण्हे, न णीले, ण लोहीए, ण हलिदे. ण सुकिल्ले, ण सुरहिगंधे, ण दुरहि गंधे, ण तित्ते, ण कडुए, ण कसाते, ण अंबिले, ण महुरे, ण क्कखडे, ण मउए, ण गुरुए, ण लहुए, ण सिए, ण उण्हे, ण णिद्धे, ण लुक्खे, ण काउ, ण रुहे, ण संगे, ण इत्थि, ण पुरिसे, ण अन्नहा, परिण्णे सण्णे उवमा ण विज्जति, अरूवी सत्ता अप्पयस्स पयंणत्थि आचारांग सूत्र.

अर्थात्—सिद्ध अवस्थाके विषय रहे हुये जीव नहीं लम्बे, नहीं ठिगणे हे, नहीं लड्डू जेसे गोल हैं, नहीं तीखुण, नहीं चोखुण, नहीं चूडी जेसे मंडलाकार, नहीं काले, नहीं हरे, नहीं लाल, नहीं पीले,

नहीं श्वेत, नहीं सुगन्धी, नहीं दुर्गन्धी, नहीं मिरच जैसे तीखे, नहीं कडुवे, नहीं कसयले, नहीं खट्टे, नहीं मीठे, नहीं कठिण, नहीं नरम (कोमल) नहीं भारी (वजनदार) नहीं हलके, नहीं ठन्डे, नहीं उष्ण (गरम) नहीं स्निगन्ध (चीकणे) नहीं लुखे इत्यादी किसी भी प्रकार के नहीं हैं. अब उनको जन्मना भी नहीं, मरना भी नहीं, किसीका संग भी नहीं; नहीं है वो स्त्री, नहीं है पुरूष, नहीं है नपुशक, परन्तु सर्व पदार्थके जाण पिरिज्ञाता = संपूर्ण पणे जाणते हुये, सदा स्थिरभूत त्रिमाराजनहै, उनको ओपमा दी जाय ऐसा पदार्थ एकही जक्त में नहींहैं, क्योंकि वो तो अरूपीहैं, और ओपमा देने लायक व वचनसें कहे जावें वो पदार्थ रूपी हैं, इस लिये अरूपी को रूपी की ओपमा छाजती नहीं हैं, और उनकी भी अवस्था किसी प्रकारके विशेषण देने लायक हैही नहीं; इस लिये ही कहा जाता के की, उनको जानने के लिये, वताने के लिये, कोइभी शब्द शक्तीवंत नहीं हैं. फक्त व्यक्ती रूपही गुणोचार न कर सक्तेहैं.

गाथा—जहा सव्व काम गुणियं, पुरिसो भोचूण भोयण कोइ
तण्हा छुहा विमुक्को, अच्छेज जहा अमियोतत्ती १८

इय सव्व कालतित्ते,आउलं निव्वाण मुवगया सिद्धा
सासय मव्वा वाहय, वट्टइ सुही सुहं पत्तो. १९

उववाइ सूत्र

अर्थात — यथा द्रष्टांत कोइ पुण्यवन्त, श्रीमंत सर्व प्रकार के सुख की समग्री युक्त वो इच्छित — रा गणी यादी श्रवण कर, नाटकादी अवलोकन कर, पु. ष्पादी सूंघकर, षड रस भोजन इछित भोगवकर, औ र इछित सर्व सुखों का भोगोपभोग ले कर त्रप्त हो, निश्चिंत्त सुख सेजा मे अनन्द के साथ बेठा हैं, सर्व कामना रहित संतुष्ट हुवाहैं, किसी भी तरह की जि- से इच्छा न रही हैं. तेसेही सिद्ध भगवन्त सिद्ध स्था- न में सर्व काम भोग से त्रप्त, निरिछित हो; अतुल्य अनोपम, अमिश्र, शाश्वत, अव्याबाध, निरामय, अपा र, सदा सुख से त्रप्त हुये की माफिक, सदा विराज मानहै. उनको कदापी कोइभी काल में, किसी भी प्रकार की, किंचित मात्र इच्छा उत्पन्न होती ही नहीं हैं, ऐसे पर्मानन्द परमसुख में अनंत काल संस्थित र- हते हैं.

ऐसे २ अनेक सिद्ध परमात्माके गुण, रटन मनन निध्यासन, एकाग्रतासे लवलीन हो ध्यान करे, उस व क अन्य कल्पना को किंचित मात्र अपने हृदय में

प्रवेशही नहीं करनेदे, जिधर द्रष्ट करे, उधर वोही वो द्रष्ट गत होए. ऐसा लव लीन हुवा जीव द्रडाभ्यास से, उसही स्वरूप को, ज्ञान द्रष्टी कर देखने लगे, तब सिद्ध स्वरूपकी और अपने श्वरूप की तुल्यता करे, की इनमे और मेरेमें क्याफरक हैं. कुछ नहीं, जो रूप यह हे वोही यह हे. मेरा निजश्वरूप ही परमात्मा जैसा हैं. सर्वज्ञ सर्व शक्ती वान निष्कलङ्क, निराबाध चैतन्य मात्र सिद्ध बुद्ध प्रमात्मा में ही हूं. ऐसे भेद रहित बुद्धि की निश्चलता स्थिरता होय, अपको आप सरीर रहित या कर्म कलंक रहित शुद्ध चित्त, अनन्द मय जानने लगे. ऐकांतताको प्राप्त होवे फिर द्वितिय पन बिलकुल रहे नहीं. उस समय ध्याता और ध्येय. का एकही रूप बन जाता हैं.

ऐसे जिनके सर्व विकल्प दूर हो गये हैं. रागादी दोषोंका क्षय हो गया हैं, जानने योग्य सर्व पदार्थको यथा तथ्य जानने लगे. सर्व प्रपंचोसे विमुक्त हो गये. मोक्ष स्वरूप होगये. सर्व लोकका नाथपणा जिनकी आत्मामें भाष होने लगा, ऐसे परम पुरुषको रूपातीत ध्यानके ध्याता कहीए.

इस ध्यानके प्रभावसे, अनादी जक्कड बन्ध जो कर्म का बन्ध हे, उसे क्षिण मात्रमे छेद, भेद, तक्षि-

ण केवल ज्ञान और केवल दर्शनको संपादन कर, नि-श्चय से मोक्ष सुख पावे. (यह ध्यान आगे कहेंगे उस सुक्लध्यान के पेट में है.)

ऐसे शुद्ध ध्यानके प्रभावसे ध्याता पुरुषकी आत्मा निर्मल होते अष्टऋद्धी आठ प्रकारकी आत्म शक्ती प्रगट होती है सो–

१ "ज्ञान ऋद्धि" के १८ भेद– १ केवल ज्ञान, २ मन पर्यव ज्ञान, ३ अवधी ज्ञान, ४ चउदं पूर्वी, ५ दश पूर्वी, ६* अष्टांग निमित, ७ 'बीजबुद्धी'=शुद्ध क्षेत्रमें योग्य वृष्टीसे धान्यकी वृधी होय. त्यों सहजा नंदी आत्मसे ज्ञानकी वृधी होय- ८ 'कोष्टक बुद्धि'= ज्यों कोठारमें वस्तु विणशे नहीं, त्यों ज्ञान विणशे नहीं. तथा राजाका भंडारी भंडारमेंसे वक्तोवक्त यथा योग्य

* निमित के ८ अंग–१ अंतरिक्ष=आकाशमें चन्द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र बादल आदी देखके, २ भूम=पृथ्वी कम्पनसे (आदीमें पृथ्वी गत निधान जाने). ३ अंग=मनुष्यादीके अंग फरूकनसे, ४ स्वर दुर्गादी पक्षीके शब्दसे, ५ लक्षण=मनुष्य पशु के लक्षण देख, ६ व्यंजन तिल मसादी व्यंजन देख, ७ उत्पात=रक्त दिशादी देख, ८ स्वप्न–स्वप्नसे, इन आठ कामोंसे होने हुये शुभाशुभ हो नब पार्व परंतु बताये नहीं.

माल देवे त्यों ज्ञान देवे, ९ § पदानुसारणी=एक पद के अनुसारसे सर्व ग्रन्थ समज जाय. १० सभिन्न श्रुत *=सुक्ष्म शब्दभी सुणले, तथा एक वक्तमें अनेक शब्द सुणे, ११ दुरास्वाद=भिन्न २ स्वादको एकही वक्त में जाणले, तथा दूर रहा हुवा रसको स्वादले, १२–१६ † श्रवण, दर्शन, घ्राण, स्वाद, स्पर्श, इन ५ ही इन्द्री की तिव्र शक्ती होवे, १७ प्रत्येक बुद्ध=उपदेशविन अन्य संयोगसे वैराग्य आवे, १८ वादीत्व शक्ती इन्द्रादी देवका भी चरचामें पराजय करें.

२ 'क्रिया ऋद्धि' के ९ भेद–१ जलचर=पाणी पें चले पर डुबे नहीं, २ अग्नी चरण=अग्नीपे चले पर जले नहीं, ३–६ पुफचरक=फुलपे, पतचरण–पत्तेपे, बीजचरण–बीजपे, और तंतु चरण=मकडीके जालेके तंतूपे चले पर वो बिलकुल दबे नहीं, ७ श्रेणी चरण पक्षीके तरह उडे, ८ जंघा चरण=जंघाके हाथ लगानेसे और ९ विद्याचर–विद्याके प्रभावसे क्षिण मात्रमें अ-

§ पदानु सारणी के तीन भेद–प्रती सारी पहले पद मिला-वे, अनुसारी–छेले पद मिलावे, उभयसारी–बिचके पद मिला ग्रन्थ पूर्ण करे

* १२ जोजन तकका शब्द सुणले.

† पंच इन्द्रीके विषयको ९ जोजनके अंतरसेही पेछान ले..

नेक योजन चले जाय.

३ 'वेक्रय ऋद्धिके' ११ भेद–१ अणिमा–सुक्ष्म सरीर बनावे. २ महिमा–चक्रवृतीकी ऋद्धि बनावे. ३ लघिमा–हवा के जेसा हळका सरीर करे, ४ गरिमा–वज्र जेसा भारी सरीर करे, ५ प्राप्ती–पृथवीपे रहे मेरुचूलकाका स्पर्श करले. ६ प्राकाम्य–पाणीपे पृथवीकी तरह चले, और पाणी में डुबे. जेसे पृथवीमें डुबे, ७ ईशत्व तीर्थंकरकी तरह समवसरणादी ऋद्धि बनावे, ८ वशत्व–सबको प्यारा लगे, ९ अप्रतिघात–पर्वतके अन्दर से भेदके निकल जाय. १० अन्तर्धान=अद्रश (गुप्त) हो जाय, और ११ कामरूप–इच्छित रूप बनावे.

४ तप ऋद्धि के ७ भेद–१ उग्रतप–एक उपवास का पारणा कर दो उपवास करे दो के पारणे तीन उपवास यों जावजीव लग चडाता जया सो उग्रतप, और जीवनपर्यंत आहार छोड तप करे सो उग्रोग्र तप, तथा एकांत्र उपवास करे उसमें* अंतराय आ जाय तो बेले २ पारणा करे, यों चडाते जाय सो 'अवस्थितोग्रतप' २ 'दीप्ततप' तप करके सरीर तो दुर्बळ

* पारणामें अंतराय नहीं पडे. तथा अगर पारणेमें उपवासमें अंतराय आजाय तो फिर बेले २ पारणा करे, फिर अंतराय आवे तो तेले २ करे यों आगे आगे बढाते जाय.

हो जाय, परंतु सरीरसे सुगन्ध आवे. कान्ती वडे. ३ 'तप्ततवे' ज्यों तपे लोहेपे पडा हुवा पाणी सुख जाय तैसे तिव्रक्षूधा लगने से थोडा अहार करे जिससे लघु नीत वडीनीत की वाधा न होवे, और देवतासे भी ज्यादा सरीरमें वल आवे. तथा अनेक लब्धीओं प्राप्त होवे. ४ 'महातप' मास क्षमण जावत् छमासी तप करे, क्षिणंतर रहित श्रुतज्ञान में तल्लीन बने रहे, जिससे परम श्रुत, अवधी, मन पर्यव ज्ञानकी प्राप्ती होवे; ५ 'घोरतप' महा वेदना उत्पन्न हुये भी किंचित ही कायरता न करे, औषध न लेवे, ग्रहण किया तप न छोडे, उग्रह (वीकट) अभिग्रह धारण करे, सरीरकी संभाल न करे, ममत्व रहित विचरे, ६ घोर पराक्रम, स्वशक्ती तप संयमके अतीशयसे जगत् त्रयको भयभ्रंत कर सके, समुद्र शोक शके और पृथवी उलटी कर शकें इत्यादी महाशक्तीवंत होवे. ७ 'घोरगुण ब्रम्हचारी' नववाड विशुद्ध नव कोटी युक्त शुद्ध शील वृतादीके प्रसाद से त्रण जगत्के महारोगको उपशमा के शांती वरता सके, सर्व भये निवार सके, व्यंतरभय, जंगम, स्थावर विष, वगैरे उपसर्ग उनपे किंचितही असर पराभव न कर सके, यह रहे वहां मार मारी दुर्भिक्षादी उपद्रव न होवे. इत्यादी महा प्रभाव वंत होवे.

५ 'वल ऋद्धि' के ३ भेद १ मन वलीये-राग द्वेष सकल्प विकल्प परिणाम रहित मन रहे, २ वचन वलीये-अन्तर महुर्तमें द्वादशांगी का अभ्यास करे, बहुत काळ पढते भी श्रम पैदा न होवे, ३ 'काया वलीये'-मास वर्ष पर्यंत कायुत्सर्ग करे तो भी थके नहीं ऐसे महाशक्तिवंत.

६ 'औषध ऋद्धि' के ८ भेद १ आमोसही-चरण रज पग(धूल) धूलके स्पर्श्य से, २ खेलोसही-श्लेषम थूक आदी स्पर्श्य से, ३ जलोसही-सरीरके पसीने के स्पर्श्य से, ४ मलोसही-कर्ण चक्षु नाशीकादी सरीरके मैलके स्पर्श्य से ५ विपोसही-भिष्ट मूत्रके स्पर्श्य से और ६ सव्वोसही-सर्व स्पर्श्यमे (इन ६ का स्पर्श्य रोगीके होनेसे उसका)सर्व रोग नाश होवे, ७ असीविष-विष अमृत रूप प्रगमें तथा वचन श्रवण मात्रसे सर्व विष विरला जाय. ८ 'द्रष्टी विष'-तथा द्रष्टी मात्रसे विष अमृत मय हो जाय और कोप कर देखे तो अमृत विषमय होजाय, महा विकारी निर्विकारी बने ऐसे महा शक्तीवंत.

७ 'रस ऋद्धि' के ६ भेद-१ अस्सी विषा'-कोप वंत वचन मात्र से और २ द्रष्टि विषा'- द्रष्टी मात्र से दुसरे के प्राण नाश करशके.३ खीरासवी नि

रस अहार हस्त स्पर्श से क्षीर जैसा होजाय, तथा वचन मंत्र से निर्बल को पुष्ट बनादे. ४ महुरासवी-कटु अहार स्पर्श से मधूर होजाय, तथा वचन मधुर मध (सेहत) जैसे प्रगमे, (सप्पिरासवी) लुक्खा अहार स्पर्श से घृतसे संस्कारा जैसा होजाय, तथा वचन से रोग गमाशके, ६ अमइरासवी-विष स्पर्श से अमृत जैसा होजाय तथा वचन से जेहर उतार शके.

८ 'क्षेत्र ऋद्धि' के २ भेद=१ अखीण माणसी अल्प अहार स्पर्श से अखूट हो जाय. चक्रवृतीकी शैन्यभी जीम जाय तो खुटे नहीं, २ अखीण महालय. स्पर्श मात्रसे भोजन वस्त्र पात्र सर्व अखूट होय.

ये सर्व १८+२+११+७+३+८+६+२=६४ भेद लब्धी-ऋद्धिके हुये.

महातप और शुद्ध-ध्यानके प्रभावे, ऐसी २ लब्धीयों आत्म शक्तीयों, मुनीराजके प्रगट होती है, परंतु वे कदापी इनके फलकी इच्छा नहीं करते है, तो फोडना-करना तो कहा रहा!

श्लोक-अहो अनन्त वीर्यो अय, मात्मा विश्वप्रकाशकः
त्रैलोक्यं चलायत्ते, ध्यान शक्ति प्रभावतः

अर्थ-अहो! सम्पूर्ण विश्व (जगत्) को प्रका-

शिल करने वाली आत्मा। तेंरी शक्तीका कोण वरणन कर शके है? तूं अनंत अपार शक्तीवंत है. जो तूं सचे मनसे ध्यानमे तनमय हो कदापी अपना प्राक्रम अज मावे, तो एक क्षिणमात्रमें अधो मध्य उर्ध तीनही लोकको हला शकी है!! यह तो द्रव गुण कहे, और भावे गुणतो अनंत अक्षय मोक्ष सुखकी प्राप्तीका करनेवाला शुद्ध ध्यान है!

परम पूज्य श्रीकहानजी ऋषिजी महाराज
की सम्प्रदायके बाल ब्रह्मचारी मुनी
श्री अमोलख ऋषिजी रचित
ध्यान कल्पतरू ग्रन्थका ४ था
ध्यान नामे उपशाखा
समाप्त.

चतुर्थशाखा-"शुक्लध्यान."

"सुक्के झाणे चउविहे चउ प्पडोयारे पन्नंते तंज्जहा

अर्थात= सुक्ल ध्यान के चार पाये, चार लक्षण, चार आलंबन, और चार अनुप्रेक्षा यो१६ भेद भगवंतने फरमाये हैं, वो जैसे है वैसे कहते हैं.

धर्म ध्यान की योग्यता से, शुद्द ध्यान ध्याते, मुनी, अधिक गुणोंको प्राप्त होतें हैं. अत्यंत शुद्धता को प्राप्त होते हैं; वह धीर, वीर मुनीश्वर शुक्ल ध्यान को ध्याते हैं.

शुक्ल ध्यानीके गुण.

शुक्ल ध्यानकी योग्यता जिनको प्राप्त होती है. उनकी आत्मामें स्वभाविकता से सद्गुणोंका उद्भव होता है वह गुण 'सागार धर्मामृत' ग्रन्थकी टीकामें इस तरह कहा है-

ार का सकल्प विकल्प (चलविचल) पणा नहीं रहा,
्कांत न्याय मार्गके तर्फ लग गया. सुरांगना और
ुरेन्द्रकी ऋद्धि भी उनके चित्तको क्षोभ उपजा नहीं
शक्ती है, ध्यान से चला नहीं शक्ती है. तथा इस
लोकमें पूजा श्लाघा, और परलोकमें देवादिककी ऋ-
द्धि की वांछा न होवे, मेरु समान प्रणाम की धारा
स्थिरी भूत हुइ है. ३ योगातीत-अर्थात मन वचन
और कायाके योग्यका निरुंधन किया, मनको आत्म
ध्यानमें रखा वचनविन मतलब न उचारे और काया
का हलन चलन विन प्रयोगन नहीं होवे, 'ठाण ठिय'
एक स्थान स्थिरी भूत करे, ४ कषायातीत-क्रोधादी
कषाय की लाय (अग्न) को बुझाके शांत शीतल ब-
न गये हैं. अपमानादी मरणांतक जैसे घोर उपसर्ग
होने सेभी कदापि कम्पित होना तो दूर रहा, परन्तु
मनमेंभी दुभाव न लावे. ५* क्रियातीत-अर्थात का-

*१३ दो क्रिया-१ मतलबसे कर्म करेसो अर्था दंड क्रिया. २ विना मतलब करे सो अनर्था दंड क्रिया. ३ जीव घात करे सो हिंसा दंड. ४ अचित कर्म हो जाय सो अकस्मात दंड. ५ भरमसे घात करे सो द्रष्टी विपरियासीया दंड. ६ झूट बोले सो मोपवती दंड. ७ चोरी करे सो अदत्त दान दंड. ८ अशुभ ध्यान ध्यावे सो अध्यात्मिक ९ अभिमान करे सो मानवति. १० मित्रपे द्वेश करे सो मित्र दोषवति. ११ कपट करे सो मायावति

यिकादिक २५ कियासे उनकी निवृती हुइ हे. मनदी योगसे सर्व वृती वनने से बाह्याभ्यांतर किया आनी सर्वथा बन्द होनेसे निष्क्रिय बने हें. ६ द्रढ संहन. ७ शुद्ध चरित्र, जिनोक्त क्रिया करने वाले. विशुध अधवशायी, ८ शोच विकलता रहित. ९ निष्कंप-अडोल वृती. इन गुणो युक्त होवे, वे शुक्ल ध्यान कर सकते हैं. ऐसे गुणवाले शुक्ल ध्यान ध्याते हे. जिसका वरणन आगे चार विभाग करके कहते हैं.

प्रथम प्रति शाखा-"शुक्लध्यानस्य पायः"

सूत्र—पुहत वीयक्के सवीयारी, एगत्त वीयक्के अवीयारी,
सुहुम किरिय अप्पडिवाइ, समुच्छिन किरिए अणियट्टि

अर्थ—१ पृथक्त्व-वितर्क, २ एकत्व-वितर्क, ३ सुक्ष्म किया, अप्रतिपाति, और ४ व्युछन्न किया निर्वृत्ती. यह शुक्लध्यानके ४ पाये. जैसे मकानकी मजबुतीके लिये पाये (नीम) की मजबूती-पक्काइ करते हे. तेसेही शुक्ल ध्यानी ध्यानकी स्थिरता रूप चार प्रकारके विचार करते हे.

---

१२ और बाळच करे सो लोभवति (इन १२ क्रियासे निवृते वत)
१३ मी इरियावही सुक्ष्म क्रिया केवळ ज्ञानीकी- सुयगडांग द्विती.

प्रथम पत्र-"पृथक्त्व वितर्क"

१पृथक्त्व वितर्क *—जीवाजीव की पर्याय का प्रथक२(अलग२) विचार करे. आर्थात श्रुतज्ञान (शास्त्रोकरीत) से पहले जीव की पर्याय का विचार करते, अजीव की पर्याय में प्रवेश करे; और फिर अजीव की पर्याय का विचार करते, जीव की पर्यायमें प्रवेश करे, नय, निक्षेपे, प्रमाण, स्वभाव, विभाव इत्यादी रीतसे भिन्न २ करके चिंतवन करे तथा आत्मा द्रव्सें धर्मास्ती का पृथक पणा करे, द्रव्य गुण पर्यायका भी पृथक पणा करे, आत्मा के सामान्य और विशेष गुणका पृथक पणा करे, एक पर्याय के भी द्रव्य गुण पर्याय का पृथक पणा चिंतवे, और आत्मा के असंख्य प्रदेशों मे से एक प्रदेश को भी व्यंजन अर्थ योग से भिन्न पणा द्रव्य गुण पर्याय विचारे! योंविविध रूप से एकेक वस्तु का विचार करते उसमें प्रवेश कर, वीतर्क अनेक प्रकार के तर्क वीतर्क

---

* पृथक-विविध प्रकार, वितर्क-श्रुत ज्ञाने विचार. अर्थात्— व्यंजन संक्रम सो अभिधान, इनसे हुवा २ अर्थ संक्रम [illegible] बोध और वो नगन. ३ योग संक्रम [illegible] [illegible] संक्रम इस पायेमें होते है.

यिकादिक २५ क्रियासे उनकी निवृती हुइ है. मनदी योगसे सर्व वृती बनने से बाह्याभ्यांतर किया आनी सर्वथा बन्द होनेसे निष्क्रिय बने हैं. ६ द्रढ संहन. ७ शुद्ध चरित्र, जिनोक्त क्रिया करने वाले. विशुध अध्यवशायी, ८ शौच विकलता रहित. ९ निष्कंप-अडोल वृती. इन गुणो युक्त होवे, वे शुक्ल ध्यान कर सकते हैं. ऐसे गुणवाले शुक्ल ध्यान ध्याते है. जिसका वरणन आगे चार विभाग करके कहते हैं.

प्रथम प्रति शाखा-"शुक्लध्यानस्य पायः"

सूत्र—पुहत वीयक्केस बीयारी, एगत्त वीयक्के अवीयारी,
सुहुम किरिय अप्पडिवाइ,समुच्छिन किरिए भणियट्टि

अर्थ—१ पृथक्त्व-वितर्क, २ एकत्व-वितर्क, ३ सुक्ष्म किया, अप्रतिपाति, और ४ व्युछन्न क्रिया निर्वृती. यह शुक्लध्यानके ४ पाये. जैसे मकानकी मजबुतीके लिये पाये (नीम) की मजबूती-पक्काइ करते है. तेसेही शुक्ल ध्यानी ध्यानकी स्थिरता रूप चार प्रकारके विचार करते है.

१२ और बाह्यचक्रे सो टोभवति (इन १२ क्रियासे निवृत्त बने)
१३ मी इरियही सुक्ष्म किया केवल ज्ञानीकी. सुयगडांग द्विंतेप.

प्रथम पत्र-"पृथक्त्व वितर्क"

१पृथक्त्व वितर्क ॐ=जीवाजीव की पर्याय का प्रथक२(अलग२) विचार करे. आर्थात श्रुतज्ञान (शास्त्रोक्तरीत) से पहले जीव की पर्याय का विचार करते, अजीव की पर्याय में प्रवेश करे; और फिर अजीव की पर्याय का विचार करते, जीव की पर्यायमें प्रवेश करे, नय, निक्षेपे, प्रमाण, स्वभाव, विभाव इत्यादी रीतसे भिन्न २ करके चिंतवन करे तथा आत्मा द्रवेसे धर्मास्ती का पृथक पणा करे, द्रव्य गुण पर्यायका भी पृथक पणा करे, आत्मा के सामान्य और विशेष गुणका पृथक पणा करे, एक पर्याय के भी द्रव्य गुण पर्याय का पृथक पणा चिंतवे, और आत्मा के असख्य प्रदेशों मे से एक प्रदेश कों भी व्यंजन अर्थ योग से भिन्न पणा द्रव्य गुण पर्याय विचारे! यों विविध रूप से एकेक वस्तु का विचार करते उसमें प्रवेश कर, वीतर्क अनेक प्रकार के तर्क वीतर्क

ॐ पृथक-विविध प्रकार, वितर्क-श्रुत ज्ञान विचार. अर्थात- व्यंजन संक्रम जो अभिधान, उसने हुवा २ अर्थ [illegible] और बोध और वीचार. २ योग संक्रम [illegible] [illegible] [illegible] संक्रम इस पायेमें होते हैं.

उपजावें, और उसका अपनेही मनसे समाधान करते जाय ऐसे उसमे तल्लीन बन. फिर अपनी आत्मा की तर्फ लक्ष पहुंचावे, की यह प्रत्यक्ष दिखता पुद्गल पिण्ड, और अन्दर रही आत्मा की चैतन्यता. दोनो अलग २ दिखतीहैं प्रत्यक्ष भाष होते हैं. परन्तु अनादी काल की एकत्रताके कारण से, वस्तुमें एक रूप दिखतेहैं, तो भी निज २ गुणमें दोनो अलग२ हैं. जैसे क्षीर नीर (दुध पाणी) मिलनेसे एक रूप हो जाता है. तोभी दूध दूध के स्वभावमें है. और पाणी पाणी के स्वभावमें हैं. जो एकत्र होगये तो दोनोके [illegible] के प्रभाव से अलग २ कैसे हो जाते है. [illegible] देह (सरीर) और जीव, तथा कर्म और [illegible] रूप दिखते हैं. परन्तु चैतन्य का चैतन्य गुण, और जडका जड गुण, निज २ [illegible]
मुजे दोनो की पृथकताका [illegible]
एकत्व वृतीका त्याग कर [illegible]
रता होवें, द्वादशांग वाणी के [illegible]
गोता खावे. यह ध्यान चउदे पूर्वके [illegible]
ता हैं यह ध्यान मन वचन काय [illegible]
से होता हैं यह ध्यान ध्याती वक्त योगो का [illegible]
होता ही रहता है एक योगसे दूसरे में और [illegible]

तीसरे में यो योगों का पटला होताही रहताहें. विचा
र पटलनेसे ही, पृथक वितर्क ध्यान इसका नाम हें.
८, ९, १०, ११, इन गुण स्थानमें मुनीको होता हें.
इस ध्यानसे चित शांत होजाताहें, आत्मा अभ्यंत्र द्र
ष्टीको प्राप्त होता हें, इन्द्रियों निर्वीकार होती हें, औ
र मोह का क्षय तथा उपसम होता हें.

द्वितीय पत्र-"एकत्व वितर्क"

२एकत्व वितर्क-इस का विचार पहले पाये से
उलट हें, अर्थात पहले पाये में पृथकर (अलगर)वी-
तर्क तर्को कही, और इसमें एकत्व ऐक्यता रूप वित
र्क तर्को हें. यह विचार स्वभावीक होता हें, इ-
स पाये वाले ध्यानीयों का विचार पटता नही हें, ए
क द्रव्य कों व एक पर्याय को व एक अणुमात्र कों,
चिन्तवते, उसीमें एकाग्रता लगावे, मेरू परे स्थिरी
भूत हो जावें. वह ध्यान फक्त १२में गुण स्थान में
होता हें, इस ध्यान में संलग्न हुये पीछे, क्षिणमात्र में
मोह कर्म की प्रकृतियों का नाश करे; उसही के सा-
थ ज्ञान वरणिय, दर्शना वर्णिय, और अन्तराय, यह
तीनही कर्म प्रलय होजाते हें. अर्थात चारही घन घाती
कर्म क्षपाते हें, (यहां तेरमा गुण स्थान प्राप्त हो

और दूसरे पाये से आगे बढते हैं.)के उसी वक्त केव
ल ज्ञान और केवल्य दर्शनकी प्राप्ती होती हैं [केवल
ज्ञान की महिमा] यह केवल ज्ञान अपूर्व है अर्थात
पहेल कधीही प्राप्त नहीं हुवा, अवलही पायेहै. केवल
ज्ञानी सर्वज्ञसर्व दर्शी होते हैं. सर्व लोका लोक, बा-
ह्याभ्यतर सुक्ष्मबादर, सर्व पदार्थ हस्तामल की तर-
ह जानते देखते हैं. त्रिकाल के होनव को एकही स-
मय मात्र मे देखलेते हैं, अनंत दान लब्धी भोग ल-
ब्धी उपभोगलब्धी. लाभलब्धी, और बल वीर्य (शक्ती)
लब्धी की प्राप्ती होती है. उसी वक्त, देविन्द्र मुनिन्द्र
(आचार्य) उनको नमस्कार करते हैं. [और जो उनो
ने पहले के तीसरे भवमें. तीर्थंकर गोत्र की उपारज
ना करी होय तो] उसीवक्त समव सरण की रचना
होती हैं. उनके मध्य भाग में३४ अतिशय करके वि-
राजमान होते हैं. और३५गुण युक्त वाणी का प्रका
श करते हैं उन वाणी रूप सूर्य का उदय होने से,
मिथ्यात्व तिमिर (अन्धकार) का तत्क्षिण नाश होता हैं
और भव्य जन रूप कमलो का वन पर फुलित होता
है. उनके सदुपदेश श्रवण से, हलु कर्मी जीव सुपन्थ ल
गके भव भ्रमणरूप या संचित पापरूप कचरेको जला
के भस्म करते हैं और मोक्ष के सन्मुख हो मोक्ष को

करते हैं. ऐसा परमोपकार का कर्ता केवल ज्ञान
केवल ज्ञानीही तीसरे पायको प्राप्त होते है.

तृतीय पत्र-"सुक्ष्म क्रिया."

३ सुक्ष्म क्रिया-अप्रतिपाति यह तेरमें गुणस्था
नमें प्रवतमे केवल ज्ञानीयों को होता हैं, सुक्ष-थोडी
क्रिया-कर्म की रज रहें, अर्थात् जैसे भुंजा हुवा अना-
ज खानेसे पेट तो भरा जाता है. परंतु वाया हुवा
उगता नहीं हैं, तैसेही अघातीये कर्म की सत्तासें च-
लनादी क्रिया कर सके हैं, परंतु वो कर्म भवांकुर उ
त्पन्न नहीं कर सके है. आयुष्य है वहांतक है. और
उनके योगसे सुक्ष्म इर्यां वही क्रिया लगती है, अर्थात्
मन वचन कायाके शुभ योगकी प्रवृती होते, अहार,
विहार, निहारादी करतें सुक्ष्म जीवोंकी विराधना होने
से क्रिया लगे, उसे पहले समय बन्धे, दूसरे समय वेदे.
और तीसरे समय निर्जरे, (दूर करे) जैसे कांचपे लगी
हुइ रज, हवासे दूर होय; त्यों क्रिया दूर हो जाती हैं.
और अप्रतिपाति कहीये, आया हुवा ज्ञान पीछा जाता
नहीं हैं; अर्थात्, मति आदी चार ज्ञान तो प्रणामों
की वृधीसे वडते हैं, और हीनतासे चले भी जाते हैं,
... केवल ज्ञान आया हुवा पीछा जाता नहीं है, औ

संपूर्णता है. इस लिये हानी वृधीभी नहीं होती है.

चतुर्थ पत्र–"समुछिन्न क्रिया."

४ समुछिन्न क्रिया-अनिवृती=यह चोथा पाया चउदमें (छेले) गुणस्थान में होता है. चउदमें गुणस्था नका नाम अयोगी केवली है, अर्थात्–जो मन, वचन, कायाके योग रहित हो जाते है. जिससे 'समुछिन्न क्रिय' अर्थात्–सर्व क्रिया नष्ट हो जाती है. जहां योग और लेश्या नहीं वहां क्रिया का कामही नहीं रहता है; वो अक्रिय होते हैं और 'अनिवृती' सो शैलेसी (मेरु पर्वत जैसी स्थिर) अवस्थाको प्राप्त होते है, जिससे वो शुक्ल [illegible] हानी है, अ[illegible] प्राप्त हो जाती है [illegible] न-ही है. [illegible] का-यम रहे [illegible] पाया.

द्वितीय [illegible] "लक्षण"

[illegible] कहा.

[illegible] पश्चा-

न) भगवंतने फरमाये सो कहते है. १ विवक्त=निवृत्ती भाव, २ विउत्सर्ग=सर्व सङ्ग परित्याग, ३ अवस्थित= स्थिरी भूत, और ४ असोह=मोह ममत्व रहित.

प्रथम पत्र "विवक्त"

१ विवक्त शुक्लध्यानीका सदा यह विचार रहता हे

गाथा—एगो में सासउ अप्पा, नाण दंसण संजउ
सेसामें वाहिग भावा, सव्वे संजोग लरकणा.

अर्थ—मै एक हूं. मेरा दूसरा कोइ नहीं है. मै दूसरे किसीका नहीं हूं. अर्थात मुजे किसीभी द्रव्यने उत्पन्न नहीं किया. जीव द्रव्य अनादी अनंत है. इस को उत्पन्न करनेकी या नाश करनेकी शक्ती, किस भी अन्य द्रव्यमें नहीं है. तैसेही यह कधी उत्पन्न नहीं हुवा, क्यों कि अनादी है. और कधी नाश नहीं होनेका, क्यों कि अवीन्यासी और अनंत हूं. लियेही कहा है की "सासउ अप्पा" अर्थात् अ शाश्वती हें, जो उपजाता है, उसका नाशभी है, आत्मा उत्पन्न नहीं हुइ, इसी लिये इस क भी नहीं है. आत्म शाश्वती है. आत्मा-असंग भंग है, अरंग है, सदा एकही चैतन्यता गुण कर्ता है. पर सङ्ग की इसे कुछ जरूरही नहीं

त्मा का निज गुण ज्ञान और दर्शन है. वो अनादी अनंत है. यह ज्ञान और दर्शन कहने रूप दो है. परन्तु सद्भत्व से एकही है. क्यों कि इकेला ज्ञान कोइ स्थान विशेष काल ठहर शक्ता नहीं है, ज्ञानके साथ ही दर्शन उत्पन्न होता है. ज्ञानका अर्थ जानना, और दर्शनका अर्थ श्रधना, ऐसा होना है, येही जीवके लक्षण हैं. इन सिवाय और जो कुछ है.* सुक्ष्म (अद्रष्य) पदार्थ, व बादर (द्रश्य) पदार्थ यह सब चैतन्य द्रव्य से स्वभावमें और गुणमें अलग है क्यों कि "सव संजोग लक्खणं" अर्थात यह पुद्गल है, इससे इनमें संजोगिक विजोगिक स्वभाव सहजही हैं, यह इधर उधर से आके मिलभी जाते हैं. और विछडभी जाते हैं. इनका क्या भरोसा ! ऐसा जान शुक्ल ध्यानी स्वभावसे निवृती भावको प्राप्त होते हैं. अन्य प्रवृतीको आत्म स्वभावमे प्रवेश करनेका अवकाश ही नहीं मि-

*सुक्ष्म (अद्रष्य [illegible] [illegible] जो टुकडे हुये पीछे आपसमें नही मिले [illegible] जो टुकडे (अ [illegible] हुये पीछे [illegible] सुक्ष्म [illegible] परन्तु ग्रहण [illegible] बादली वगैरे [illegible] सुगन्ध [illegible] सुक्ष्म [illegible]

लता है. क्यों कि वो पुद्गलीक स्वभावसे स्वभावेही अलग है.

द्वितिय पत्र-"विउत्सर्ग".

२ विउत्सर्ग-शुक्लध्यानी सदा सर्व सङ्गके त्यागी स्वभावसे ही होते हैं. श्री कपिल केवलीजीने फरमाया है-

गाथा-विजहितु पुव्व संजोगं, नासिणेह कहि विकुवेज्जा;
अतिणेह सिणेह करेहिं, दोस पदोसेहिं मुचए भिख्ख
सव्व गंथ कलहंच, विप्प जहे तहा विहं भिख्खू
सव्वेसु काम जाएसु पास माणो न लिप्पई ताइ ४

अर्थ-सर्व ग्रन्थ-अर्थात् वह्य संजोग पूर्वात मात पितादिका पश्चात स्वशुर पक्षका; और अभ्यंतर राग द्वेष का तथा कषाय रूप प्रणतीका यह दोनो महा क्लेशका कारण भाप (मालम) हुवा, जिससे विप्प जहितु दोनो प्रकारके सम्बन्ध से स्वभाविकही ममत्व दूर हो गया, सम्बन्ध छूट गया. और शब्दादी सर्व काम, तथा गंधादी सर्व भोग पाश (बन्धन) जैसे मालम हो नेसे, उनसे स्वभाविकही अलित हुये, राग द्वेष रहित हुये, (पुव्व संजोग) यह पुर्व अनादी अनंत परिभ्रमण कराने वाले सम्बन्धसे पीछा कदापि कोइभी प्रकारसे

सम्बन्ध नहीं करे, और (असिणेह सिणेह करेहिं) अर्थात अस्नेहीयोंमें वीतराग से स्नेह करे, की जो कदापि क्लेश और बन्धन का कर्ता नहीं होता है, सदा बाह्याभ्यंतर शांती और सुखी का दाता है. ऐसा सम्बन्ध स्वभाविक होनेसे सर्वथा राग द्वेष की प्रणती रहित हुये, उससे ज्ञानादी त्रि रत्नकी ज्योती स्वभाविक ही प्रदिप्त हुइ. अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप रूप चतुष्टय मुक्त हुये.

तृतीय पत्र 'अवस्थित'

३अवस्थित [illegible] अनंत चतुष्टय की प्राप्ती से सर्वज्ञ [illegible] निरपेक्षी बने. अनंत शक्ती प्रगटी जिससे [illegible] मुक्त, "मेरू इव धीरा" अर्थात् ज्यों [illegible] राग से भी मेरू पर्वत चलायमान नहीं होता [illegible] महान प्राणांतिक कष्ट प्राप्त हुये भी प्रणामो [illegible] कदापि चलविचल नहीं होते हैं सदा [illegible]

श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के दूसरे अध्याय में कहा है—

गाथा—[illegible]

[illegible]

अर्थात्--कषाय नष्ट होने से श्रमण हुये, स्वयं आत्मा का सधने से संयती हुये, रागादी रिपुके नष्ट होने से दमित हुये, ऐसे ऋषीराज माहाराज धीराज किसीभी कर्मोदय के योग से कोइ किसी प्रकार का दुःख दे, प्राणांत होवें ऐसा उपसर्ग करे, तब वो यह विचार करें की, मेरी आत्मा अनुपसर्ग है. अखंड अविन्यासी हैं"

"नैवंछिदन्ति शस्त्राणी नैवंदहंति पावकं" यह आत्मा शस्त्रसे छेद भेद जाती नहीं हैं. अग्नीमे जले नहीं, पाणी में गले नहीं. इस लिये मुजे किसी भी प्रकार का उपसर्ग कोइ भी उपजाने स्मर्थ नहीं हैं, "नत्थी जीवस्स नासत्ती" जीवका नाश कदापी हेही नहीं, इस लिये में अम्मर हूं. यह मनुष्य पशु या देव जिसका नाश कर ने प्रवृत हुये हैं, वो तो नाशिवंतकाही नाश करते हैं. आज कल या किसी भी अगामिक काल में, इसका नाश जरूर ही होगा. मै ने क्रोडोयत्न किये तो रहे नहीं, ऐसा निश्चय जिनकी आत्मा में होने से उन को किसी भी प्रकार की बाधा पीडा दुःख मालुम पडताही नहीं हैं.यथा द्रष्टान्त जैसे गज सुकुमल मुनिश्वर के सिर (मस्तक) पे खीरे (अग्नीके अंङ्गारे) रखन्गे. जिस से तडर करती खोपरी जले

चतुर्थ पत्र-"अमोह"

४ अमोह-अर्थात् शुक्लध्यानी स्वभाव सेही मोह रहित निर्मोही होते है. "मोह बन्धति कर्माणी, निर्मोहो वीमुच्यते" अर्थात्-मोह कर्म बन्ध करता है और निर्मोहपणा कर्म के बन्धन से छुडाता है, ऐसा निश्चय होनेसे शुक्लध्यानी के निर्मोही अवस्था स्वभाव सेही प्राप्त हो जाती है, मोह उत्पन्न करने जैसा कोइ भी पदार्थ उनको भाप नहीं होता है.

उत्तराध्येयनजी सुत्रमें चितमुनीश्वरने कहा है.

गाथा-सव्वं विलं वियं गीयं, सव्वं नट्टं वीडं वियं;
सव्वं आभरण भारा, सव्वे काम दुहा वहा.

अर्थात्="सर्व गीत-गायन है सो विलाप जैसे हैं," क्यों कि विलाप शब्दका और गीत शब्दका उत्पन्न होनेका और समाप्त होनेका स्थान एकही है. [मुख और कान] और दोनोही राग द्वेषकी प्रणतीसे पूर्ण है, गायन भी प्रेम का दर्शक और उदासी का दर्शक दोनो तरहका होता है. तैसेही रुदनभी प्रेम दर्शक और उदासी दर्शक दोनो तरहका होता है, यह भाव मोह गांधे जीवके मानने उपर है. गीतों मोह मद से भरे हुये, कर्म वीकार से उद्भवे हुये, चितको

सुवर्ण रत्नके भूपणों से लदे हुये फिरते हर्प मानतेहे. वितरागी पुरूप यथार्थ द्रष्टी से देखते हुये विभुपित पे और नग्न पे स्वभाव से ही रागद्वेप रहित मध्यस्थ भवमें रहते हैं. और जित्ने जक्में दुःख है, वे सब काम भोग से ही उत्पन्न होते हैं और जो काम भोग का अर्थि हैं वोही अनंत दुःख मय संसार भार को वहाता है-उठाता हैं, काम भोग की अभीलापा वालाही दुःख पाताहैं यह सर्व तमाशा प्रत्यक्ष जगत् में दिख रहा हैं, ऐसा जाण ज्ञानी महात्मा स्वभा से ही सर्व अभीलापा रहित हो शांतवनें हैं, सर्वथा मोहका नाश होने सें वितरागी वने हैं.
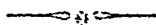
तृतीयप्रतिशाखा शुक्लध्यानस्य आलम्बन

सूत्र-सुक्कस्सणं झाणस्स चत्तारी आलंवणा पन्नंते तंज्हा! खंती, मुत्ती, अज्जव, मद्दव.

अर्थ-शुक्लध्यान ध्याता को चार प्रकारका आधार हैं.

१ क्षमका, २ निर्लोभताका, ३ सरलताका, और ४ नम्रताका.

प्रथम पत्र-'क्षमा'

क्षमा श्रमण क्षमा स्वभावमें, स्वभावसे रमण करते अन्यकी तर्फसे. पर पुद्गलोंसे. या स्व प्रणतीकी विप्रीतता से, जो चितको क्षोभ उपजे, ऐसे पुद्गलोंका सम्बन्ध मिलनेसे निजात्म के, या पर आत्मके, ज्ञान दर्शन चारित्र रूप पर्यायकी, संकल्प विकल्पता कर घात करे नहीं, करावे नहीं, करनेको अच्छा जाने नहीं अपने क्षमा रूप अमुल्य गुणका कदापि नाश होने देवे नहीं, शुभाशुभ संयोगोंमे चित वृतीको स्थिर रक्खे, और पुद्गलोंके स्वभावकी तर्फ द्रष्टी रखके विचारे की जैसा २ जिस २ वक्त, जिन २ पुद्गलोंका जिस२ तरह प्रणती में प्रगमनेका द्रव्यादिक संयोग होता है, वो उसी वक्त प्रगमे विन कभी रहताही नहीं है. यह जगतका अनादी स्वभाव है शुद्ध यानीकी इस स्वभाव से प्रणति स्वभाविक विरुद्ध होनेसे वो स्वभाव उनमें नहीं प्रणमता है [illegible] अनेक प्र[illegible] वक्तसे श्रमण कर्ता हुइ चितवृती [illegible] कर स्वभाव न ही कर शक्ता है जगतका जो कार्य है सो तो, अनादी से चला आता है और अनन्त काल तक चलाही करेगा. मन, वचन कायाके शुभाशुभ पुद्गलोंका चक्कर भ्रमताही रहता है मिथ्या भ्रमसे भ्रमित जीव, दुर्विचार दुरुच्चार और दुराचार द्वारा करना कराना

और अनुमोदना कर ज्यों चीगटा घडा उडती हुइ रज-
को अकर्षण करता है, और मलीन होता है. तेसेही वो
उन पुद्गलोंको अकर्पण कर मलीन होते है; जिससे नि-
ज स्वभावका अच्छादन हो, पर स्वभावमें रमण कर,
विभाको प्राप्त होते है. और ज्ञानी कांचके घडेकी त-
रह निर्लेप या लुक्खे (चिकास रहित) होनेसे वो ज-
गत्में भ्रमते हुये पुद्गल उनके आत्मापे ठेहर नहीं स-
क्ते हें. क्यों कि वो मनादी त्रियोगकी अशुभ पृवृत्तीसें
स्वभावेही अलग रहे. निजात्मिक ज्ञानादी गुणमें रमण
करते है, मतलब की, इस जगत् मे अनेक जीव
बोलते है, और अनेक जीव सुणते हें. उसपे अपन
ध्यान नहीं देते हैं, तो वो पुद्गल अपनको राग द्वेपके
उत्पन्न कर्ता नहीं होतें है, और उन्ही शब्द को आपन
अपनी तर्फ खेंचे की यह गाली मुजेही दी की, तुर्त वो
पुद्गल अपनी आत्मा में प्रणम, अपन को द्वेपी बना
देते हें. अब अपन जरा दीर्घ विचार सें देखें तो, अ-
पनी निंदा कोइ करताही नहीं हें; क्योंकि, निंदा हो-
य ऐसा अपना निजात्मा का स्वभाव ही नहीं हें; आ-
त्मा तो ज्ञानादी अनंत गुणो का सागर है, और ज्ञा-
नादी गुणों की कोइ निंदा करताही नहीं हें, निंदा
तो विपय, कपायादी प्रकृत्ती यों की होती है,

शुक्लध्यानी ने स्वभावसे जडा मूलसे उच्छेदन कर, संतोपमें संस्थित हुये हैं. ज्ञानी ज्ञानसे प्रत्यक्ष जानते हैं की इस जक्तमें कोइभी ऐसा पदार्थ नहीं है, की जिसकी मालकी अपने जीवने नहीं करी, वा उनका भोगोपभोग नहीं किया, अर्थात् सब पुद्गलकी मालकी अनंत वक्त कर आया है, और सब पुद्गलोंका भोगभी अनंत वक्त ले आया है. अश्चर्य यह है कि, एक वक्त अहार करके निहार करी हुइ वस्तुको देखते ही, घृणा, दुर्गच्छा उत्पन्न होती है, और जिन वस्तुओंका अनंत वक्त अहार कर निहार कर आया उन्होंकाही पीछा भोगोपभोग करने बहुतसे जीव तरस रहे है, तडफ रहे है, उनकी तृष्णामे व्याकुल हो रहें है, तृप्ती आइहीं नहीं है, तो अब क्या विना संतोप किये कदापी तृप्ती आवेगी? हा हा! क्या जब्बर मोहकी छटा! के जीवों बिलकूल बे विचार बन रहेहै, और इस वृतमान कालके सरीर के पुद्गल, तथा पहले धारन किये हुये, सब सरीरके पुद्गल जित्ने जगत्में जीव है, उन सबका भक्ष बना है. सब ने अहार कर के निहार कर दिया है. तैसेही सब जीवोंके धारण किये सरीरके पुद्गलोंका, आपन भी अनंत वक्त भक्षण कर लिया, जगत् की सब ऋद्धिके मालक अपन बने, और जगत्के जीवके

दास अपन बने, अनंत पर्याय रूप इस संसारमें अपन प्रणम आये, और सर्व संसार पर्याय अपन में प्रणमी, सर्व खाद्य खाये, सर्व पेय पीये, सर्व भोग भोगवे, परन्तु गरज कुछ नहीं सरी, आखीर वैसेके वै से. इस लिये मै न किसका हुवा, न मेरा कोइ हुवा, न मुजे कोइने खाया, और न मैंने किसीको खाया. पुद्गलही पुद्गलका भक्षण करता है, और छोडता है. और वो भाव पुद्गलोंमें ही प्रगमते हैं. तेसेही निर्गमते है, मुजे उससे जरूरही क्या, मै चैतन्य, यह पुद्गल, ज्यों नाटकिया नाना तरह का रूप धारण कर प्रेक्षक को खुश करने अनेक चरित्र करता है. रोता हैं, हंसता है, वगैरे, परंतु प्रेक्षक को उसके झगडे देख सुख दुःख अनुभवनेकी क्या जरूरत है, तैसेही यह जगत रूप नाटकका मैं प्रेक्षक हूं. इसका विचित्रता देख मुजे उसके विचारसे लीन हो, दुःखी बननेकी कुछ जरूरत नहीं है. यह भाव या इससे भी अत्युत्तम भाव शुद्ध ध्यानीके हृदय में स्वभावसेही प्रवृतते है, जिससे सहजही सर्व सङ्गके परित्यागी हो सिद्ध तुल्य सदा निर्छिन भावमें त्रमपणें आत्म स्वभावमें रमण करते है.

——✽——

तृतीय पत्र-"आर्यव"

२ अज्जव-आर्जव-सरलता गुक्त. प्रवृतनेका स्वभाव, शुक्लध्यानीका स्वभाविकही होता है. सुयगडांग सूत्र में फरमाया है. की 'अज्जुधमं गइ तचं, अर्थात् आर्य सरल-आत्माही धर्म मार्गमें गति प्रवृती कर शकी है, ज्ञानी समजते हैं, की वक्र आत्माका धणी, अन्यको ठगने जाते अपही ठगाता है, और एक वक्त ठगाया हुवा, प्राणी कर्मानुयोगसे भवांतरोकी श्रेणीयोंमें अनंत वक्त ठगाता है, सर्व पुद्गल परतणी सें प्रणमे हुवे पदार्थ कुटिलता से भरे हुये हैं. सकर्मि आत्मा उनमें प्रणाम प्रवृताती हुइ, उनमेंसे पुद्गलोंका अकर्षण कर उस रूप बनती हैं उसे 'मायाशल्य' कहते है, मयाशल्य मिथ्या दर्शनका मूल है, मायाशल्यसे आत्माके ज्ञानादी गुणका अच्छादन होता है. ढांकता है, 'शल्य' काँटे को कहते है, जैसा सरीरके अन्दर रहा हुवा काँटा तन्दुरुस्तीकी हरकत करता है, तैसें मायारूप शल्य (काँटा) जिनके ह्रदय से नहीं निकला हैं, उनके ध्यानमें दुरस्ती न रहती है, जैसे सीधे म्यान में वांकी तरवार प्रवेश नहीं करती हैं, तैसेही वक्र प्रकातिका धणीके न्हदयमें शुक्लध्यान प्रवेश नहीं

दास अपन बने, अनंत पर्याय रूप इस संसारमें अपन प्रगम आये, और सर्व संसार पर्याय अपन में प्रणमी, सर्व खाद्य खाये. सर्व पेय पीये, सर्व भोग भोगवे, परन्तु गरज कुछ नहीं सरी, आखीर वैसेके वैसे. इस लिये मै न किसका हुवा, न मेरा कोइ हुवा, न मुजे कोइने खाया, और न मैंने किसीको खाया. पुद्गलही पुद्गलका ग्रहण करता है, और छोडता है. और वो भाव पुद्गलोंमें ही प्रगमते है. तैसेही निर्गमते है मुज इसमें करना क्या, मै चैतन्य, यह पुद्गल, ज्यों नाटकिया नाना तरह का रूप धारण कर प्रेक्षक का [illegible] नर्तन करता है रोता है, हंसता है और परन्तु प्रेक्षक को उसके झगडे देख सुख दुःख [illegible] तैसेही यह जगत रूप नाटक [illegible] इसकी विचित्रता देख मुजे [illegible] अनन्तही कुछ ज- [illegible] उसमें भी अन्युत्तम भाव [illegible] प्रवर्त्त है, जिस- [illegible] सिद्ध तुल्य सदा [illegible] रमण करते है.

तृतीय पत्र-"आर्यव"

२ अजव-आर्जव-सरलता गुक्त. प्रवृतनेका स्वभाव, शुक्लध्यानीका स्वभाविकही होता है. सुयगडांग सूत्र में फरमाया है. की 'अज्जुधमं गइ तचं, अर्थात् आर्य सरल-आत्माही धर्म मार्गमें गति प्रवृती कर शक्ती है, ज्ञानी समःते हैं, की वक्र आत्माका धणी, अन्यको ठगने जाते अपही ठगाता है, और एक दक्ष ठगाया हुवा, प्राणी कर्मानुयोगसे भवांतरोकी श्रेणीयोंमें अनंत वक्त ठगाता है, सर्व पुद्गल परतणी सें प्रणमे हुवे पदार्थ कुटिलता से भरे हुवे हैं. सकर्मि आत्मा उनमें प्रणाम प्रवृतार्ती हुइ, उनमेंसे पुद्गलोंका अकर्षण कर उस रूप बनती हैं उसे 'मायाशल्य' कहते हैं, मयाशल्य मिथ्या दर्शनका मूल है, मायाशल्यसे आत्माके ज्ञानादी गुणका अच्छादन होता है. ठांकता है, 'शल्य' काँटे को कहते हे, जैसा सरीरके अन्दर रहा हुवा काँटा तन्दुरुस्तीकी हरकत करता हैं, तैसें मायारूप शल्य (काँटा) जिनके हृदय से नहीं निकला हैं, उनके ध्याननें दुरस्ती न रहती है, जैसे सीधे म्यान में बांकी तरवार प्रवेश नहीं करती हैं, तैसेही वक्र प्रकृतिका धणीके ऱ्हदयमें शुक्लध्यान प्रवेश नहीं

कोइ पण्डित कहें. तो वो चिडता हैं. निरधन को श्री मंत कहने से वो बुरा मानता हैं, कहता है क्या हमारी मस्करी करते हो. बस तैसेही ज्ञानी के कोइ गुण ग्राम करे तो वो योंही विचार ते हैं, यह संपूर्ण गुण तो मेरी अत्मा में हैही नहीं, तो मुजे उन वचन को सुण अभिमान करने की क्या जरुर हैं. यह मेरी परसंस्या नहीं करता हैं, परन्तु मुजे उपदेश करता है, की, सत्य सील, दया, क्षमा, दी गुण तुम स्विकारो! शुक्ल ध्यानी सर्वो त्तम गुण संपन्न हो के भी, उन्हे गुण का गर्व किंचित मात्र कदापी नहीं होता है, इस लिये वो सदा निर्भिमानी रहते हैं. तथा विचारना चाहीये की, जो गुण ग्राम करते हैं, वो तो गुण के करते हैं, और उसका अभीमान गुणों को तो होताही नहीं हैं, फिर वीच में मुजे करने की क्या जरुर हैं, संसार में सुनतें हैं की, अमुक ने अमुक अच्छी वस्तु की सरावणा (परसंस्या) करी जिस्स सें यह त्रिगड गइ (निजर लग गइ) बस तैसेही गुणानुवाद करने से तूं फुलायगा तो तेरेइ गुणों का खरावा होगा. ऐसा जान के खरावा क्यों करना.

औरभी जो सद्गुणोंकी प्राती हुइ है, वोआत्म सुधारा करने हुइ है, और उसीसे वीगाडा करना यह

केसी जब्बर भूल. इत्यादी निश्चय शुक्लध्यानी पुरुषों को स्वभाविक होनेसे सदा स्वभाविक उनकी आत्मा निर्भिमानी, नम्र भूत हुइ है.

इन चार बस्तुओंका आलम्बन शुक्लध्यानीको सहज स्वभाविक होनेसे अखंड अप्रति पाती ध्यानमें रहते है.

चतुर्थप्रतिशाखा "शुक्लध्यानस्य अनुप्रेक्षा"

सुक्कमण झाणस्स. चत्तारी अणुपेहा, पन्नंता तज्जाहा अवाय णुपेहा, असुभाणुपेहा, अणंतवित्तीयाणुप्पेहा, वीप्परीणामाणुप्पेहा.

अर्थात्—शुक्लध्यान ध्यानाकी ४ अनुप्रेक्षा विचारना १ अपायानुप्रेक्षा=दुःखसे निवर्तनेका विचार. २ अशुभानुप्रेक्षा=अशुभ प्रकृती आदिसे निवर्तनेका विचार. ३ अनंत वृत्तानुप्रेक्षा=अनंत प्रवृतीसे निवर्तनेका विचार और ४ विप्रामाणानुप्रेक्षा=विप्रित प्रणाम से निवर्तनेका विचार यह ४ प्रकारका विचार शुक्लध्यानीको स्वभाविक होता है.
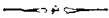
प्रथम पत्र "अपयानुप्रेक्षा"

१ अपयानुप्रेक्षा—संसारमें परिभ्रमण करते हुये जीवको मिथ्यात्व २ अव्रत, ३ प्रमाद, ४ कषाय और ५ योग यह अनंत विटंबना देने वाले है. १ श्री वीत-राग दिशा निजात्मके अनुभवमें जो विप्रीत रुची उसमें अभीनिवेश (अग्रह) उत्पन्न करनेवाला तथा बाह्य वि-षय में, पर सम्बन्धी शुद्ध आत्म तत्व सें लगाके, सं-पूर्ण द्रव्योंमें जो विप्रीत अग्रह करे, सो मिथ्यात्व. २ अभ्यंतर मे आत्म प्रमात्मा के स्वरूपकी भावनासे उ-त्पन्न हुवा, जो परम सुख रूप अमृत समान भोजन प्रासन करनेकी रुची होए उसे पलटावे. तथा बाह्य विषय में वृतादी धारन नहीं करने रूप जो प्रवृती सो अव्रत. ३ अभ्यंतर में प्रमाद रहित जो शुद्ध आत्मा है उसके अनुभवसे चलाने रुप जो प्रणती, तथा बाह्य विषय मे जो मूल और उत्तर गुणमे अतीचार उत्पन्न करने वाला जो है, सो प्रमाद ४ अभ्यंतर मे परम उपशम मूर्ती केवल ज्ञानादी अनंत गुण स्वभावसेही धारन करने वाला, निजात्म परमात्मके स्वरूपको क्षो-भ के करने वाले, तथा बाह्यमें विषयके सम्बन्धसे क्रु-रता आदी आवेश रूप जो क्रोधादी है, सो कषाय.

बीगाडते हैं, ऐसेही कर्म सम्बन्ध भी जाना जाता है, व्यवहार में कर्म के कर्ता पुद्गलहैं. जैसे त्रीयोग रहित शुद्ध आत्मा की जो भावना हैं, उस सें वे मुख होके, उपचरित असद्भुत व्यवहार से ज्ञाना वर्णियादी द्रव्य कर्मोंका, तथा उदारिक, वेक्रय, और अहारिक यह तीन सरीर, अहार, सरीर, इन्द्र, शाश्वोश्वास, मन. और भाषा, यह पर्याय, इत्यादी योग्य से जो पुद्गल पिण्ड नो कर्म है, उनकी तथा उसी प्रकार से, उप चरित असम्भूत बाह्य विषय, घटपटादी का भी येही कर्ताहैं. यह तो व्यवहार की व्याख्या कही. अब निश्चय अपेक्षा से चैतन्य कर्मका कर्ताहैं, तो इसतरह की-रागादि विकल्प रूप उदासी सें रहित, और क्रिया रहित, ऐसे जीव ने जो रागादी उत्पन्न करने वाले कर्मों का उपारजन किया, उन कर्मो का उदय होनें से, आक्रिय निर्मल आत्मा ज्ञानी नहीं होता हुवा, भाव कर्म का या राग द्वेष का,कर्ता होता हैं. और जब यह जीव, तीनो योग्यके व्यवहार रहित, शुद्ध तत्वज्ञ एक स्वभाव में परिणमता हैं, तब अनंत ज्ञानादी सुख का, शुद्ध भावों का छद्मस्त अवस्था में भावना रूप विविक्षित, एक देश शुद्ध निश्चय से कर्ता होता हैं, और मुक्त अवस्था में तो, निश्चय से अनंत ज्ञानादी शुद्ध भावों

मात्म स्वभावका जो सम्यक श्रधान ज्ञान और क्रिया उससे उत्पन्न अविन्यासी अनन्द रूप एक लक्षणका धारक सुखमृतको भोगवता हे.

सारांश—जो स्वभावसे उत्पन्न हुये सुखामृत के भोजनकी अप्राप्ती से, आत्मा इन्द्रिय जनित सुखको भोगवता हुवा, संसारमें परिभ्रमण करता है; और स्व स्वभाव उन्पन्न हुये, इन्द्रियोंके अगोचर सुख है, सो ग्रहण करने योग्य है शुक्लध्यानके ध्याता उन्हे स्वभाव सेही ग्रहण करते हे, जिससे संसार रूप वृक्ष शुभाशुभ कटु मधु, उच्चता-नीचता, रूप फलोंका दाता पुद्गल प्रणतीसे प्रणमा हुवा जो स्वभाव है उसका सहजही त्याग हों जाता हे. शुद्ध आत्मानंद चैतन्य मय स्व भावमें सदा रमण करते हे.

तृतीय पत्र-"अनंतवृतीयानुप्रेक्षा"

३ अनंत वृतीयानु प्रेक्षा—अनंत संसार मे परिभ्रमण करनेकी जो प्रवृती हे. उससे निवृतनेका स्वभाविक ही विचार होवे, की इस संसार में अनंत पुद्गल प्रावृतन किये, वो ८ प्रकारसे होता है, १ द्रव्यसे बादर पुद्गल प्रवृतन सो उदारिक वैक्रय, तेजस, कारमाण मन, वचन, और श्वाश्वोश्वास यह ७ तरह के हे,

में यो स्तोकका काल पुरा करे. ऐसे अनुक्रमे सब काल जन्म मरण कर स्पर्शे. ७ भावसे वादर पुद्गल प्रावर्तन सो ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श. इन २० ही बोलके सर्व पुद्गलोंको स्पर्शे, ८ भावसे सुक्ष्म पुद्गल प्रावृत सो पहले एक गुणे काल वर्णके जगत् में जित्ने पुद्गल हैं, उन सबको स्पर्शे, फिर दुगणे कालेकों यों त्री गुणों जावत असंख्यात गुणे काले वर्ण के पुद्गल स्पर्शे यो सर्व काले वर्णके पुद्गल स्पर्शे पीछे, हरे वर्णके पुद्गल कालेकी तराह, अनुक्रमें स्पर्शे इसी तरह २० ही तरहके पुद्गलको अनुक्रमें स्पर्शे.

यह ८तरह पुद्गल प्रावर्तन करे उसे एक पुद्गल प्रावृतन कहना, ऐसे अनंत पुद्गल प्रावर्तन एकेक जीव संसार में करते हैं;और अपने जीव ने भी कियेहैं. ऐसी भव भ्रमणा में भ्रमण करते २अनंतानंत पुण्योदय होने से, मनुष्य जन्म से लगा शुक्लध्यानारूढ होने जित्ने अत्युत्तम समग्रीयों प्राप्ती हुइहै. यह उन्ह पुद्गलों के प्रावृतन से निर्मुक्त कर, अखंडित, अचल, निरामय, मोक्षके सुख देने वाली है. ऐसा निश्चय शुक्लध्यानी कों स्वभावसेही होता हैं. और अनंत जीव अनंत पुद्गलो का प्रावृतन करते विभाव रूप विचित्रता कों प्राप्त होतें है वो प्रतिछाया उनकी शुद्ध आत्मामें

क्तीसें प्रगमते हैं. जिससे प्रणामोंमें सकल्प विकल्प हो इन वस्तुओंमें प्रेमद्वेष उत्पन्न होता है. जिसपे प्रेम उत्पन्न होता है, और जिसपे द्वेष उत्पन्न होता है वह दोनो वस्तुओं उनही पुद्गलों के प्रमाणु ओंकी प्रण-मी है. घर, धन, स्त्री, स्वजन, वस्त्र, भुषण, मिष्टान्न, विष, मलीनता वगैरे सर्व वस्तुओं यही पुद्गलोंसे प्रणमी है. क्षिण २ मे इनका रूपांतर हुवाही रहता है, और उस उस प्रमाणें जीवोंकी प्रणतीमें फेर होता है, प्रणतीमें राग द्वेप रूप चमक्के भाव उत्पन्न होनेसे, उन्ह पुद्गलोंको अकर्पण कर गुरू (भारी) बनता है, और उस भारी पणनेके योग्यसे उच्च जो मोंक्ष गति है उसे प्राप्त नहीं होताहै, यह संसारमें रूलनेका मुख्य कारण अनादी अनंत है, यह सब पुद्गलोंकी प्रणतीं स्वभावका गुण है, उसमे चैतन्य लीनता (लुब्धता) धारण कर दुःखी हुवा, विप्रयास पाया. ऐसा निश्चयात्म ज्ञान शुक्लध्यानी कों होताहैं, जिस से सर्व पुद्गलों उपर सें राग द्वेप निर्वृत होनें से, ज्ञानादी गुण प्रगट होते हैं, जिल से निजगुण की पहचान हुइ, की मेरे आत्म गुण, अखंड है, अविनाशीहैं, स्दाएकही रूपमें रहने वाले चेतनीक गुण युक्त हैं, अगरू लघुहै, न वो कधी आके लगे, न वो कधी विछडे, आनादी से निज